जुलाई १९७६

मांतर
च्छी साहित्य-१

क:
लेश, डॉ. जयंत खत्री,
भाई पांधी,
ा भाटिया,
ष्या शंकर अजाणी,
ु केशवाणी, वनु पांधी,
ाज पाठक,
ुरी शाह,
ंद्र मेहता, आदि

देश के दिन:
जल पुष्कल

मन्यु अनत के
ावाहिक उपन्यास
ल पसीना' की
ी किस्त

भी स्थायी स्तंभ.



पेश है वेट लॉस कोर्स

१०,२० बल्कि ३० किलो तक वज़न घटा लीजिये !

पुरुषो, महिलाओ क्या आप जानते हैं कि आपका ठीक-ठीक वज़न क्या होना चाहिए? नीचे एक आदर्श तालिका दी जा रही है। इसमें अपनी ऊँचाई के अनुसार वज़न देखकर अपने वास्तविक वज़न से तुलना कीजिये।

ये वज़न २५ वर्ष और इससे अधिक की उम्र के पुरुषों और महिलाओं के औसत वज़न हैं।

पुरुष ऊँचाई	पुरुष वज़न	महिला ऊँचाई	महिला वज़न
१६० सें.मी.	५६ किलो	१४५ सें.मी.	४२.२ किलो
१६२.५ सें.मी.	५७.३ किलो	१४७.५ सें.मी.	४३.६ किलो
१६५ सें.मी.	५९ किलो	१५० सें.मी.	४४.९ किलो
१६७.५ सें.मी.	६०.१ किलो	१५२.५ सें.मी.	४६.८ किलो
१७० सें.मी.	६२.७ किलो	१५५ सें.मी.	४८.२ किलो
१७२.५ सें.मी.	६४.५ किलो	१५७.५ सें.मी.	४९.५ किलो
१७५ सें.मी.	६५.५ किलो	१६० सें.मी.	५०.८ किलो
१७७.५ सें.मी.	६८.२ किलो	१६२.५ सें.मी.	५१.३ किलो
१८० सें.मी.	७०.४ किलो	१६५ सें.मी.	५४.४ किलो
१८२.५ सें.मी.	७२.३ किलो	१६७.५ सें.मी.	५६ किलो

अगर ऊँचाई के अनुपात में आपका वज़न ज़्यादा है तो आप अपना फ़ाल्तू वज़न बड़ी जल्दी घटा सकते सकती हैं।

लीजिये पेश है वेट लॉस कोर्स

आपको एक नयी आकृति देने में मदद करता है—उचित भागों में आपका वज़न घटता है। आपका वज़न आपकी ऊँचाई के साथ मेल रखने के लिए ही इसकी बनावट रखी गयी है।

वेट लॉस प्लान एक वैज्ञानिक १० मिनट का निरंतर समतोल कोर्स है। इस कोर्स के अनुसार व्यायाम करने से रस-प्रक्रिया और श्वसन व्यवस्था की गति तेज़ हो जाती है जिससे शरीर की फ़ाल्तू चर्बी जलकर ख़त्म हो जाती है और फ़ाल्तू पानी बह जाता है। परिणामस्वरूप आपके शरीर की आकृति सुधरती है और उसमें निखार आ जाता है।

यह बिल्कुल सच है कि इस 'वेट लॉस कोर्स' के शुरू करने के कुछ ही हफ़्तों के अंदर ही आपका शरीर नयी आकृति प्राप्त करने लगेगा, बेडौल उभार और दूसरे गायब हो जायेंगे और आपकी त्वचा तरो-ताज़ा और कोमल हो जायेगी।

'वेट लॉस प्लान' की इतनी सफलता के ५ मुख्य कारण :

१. इसकी वज़न घटाने की क्रिया उन भागों पर केन्द्रित रहती है जहां चर्बी ज़्यादा होती है जैसे कमर, कूल्हे और पेट।

२. इसका उपयोग बिल्कुल आसान है। जब कभी भी आपको समय मिले, चाहे आप टी.वी. देख रहे/रही हों, दर्जी के हिसाब के साथ जोड़ दीजिये और कमरे के फ़र्श पर एकदम सीधी लेट जाइये। दिन में दो बार।

३. खाने पर कठोर प्रतिबंध नहीं। हम खाने का एक चार्ट साथ देते हैं जिसे विशेषज्ञों ने विशेष रूप से तैयार किया है।

४. सुरक्षित है और समय बचाता है: न तनाव न थकावट। करने में आसान। आपकी थकान दूर करता है और ताज़गी देता है।

५. यात्रा: साथ में ले जाइये। यात्रा के दिनों इस कोर्स की निरंतरता के कारण ही शीघ्र परिणाम प्राप्त होते हैं। वज़न में हल्का होने के कारण इसे आप अपने साथ कहीं भी ले जा सकते हैं।

शीघ्र परिणाम जांचिए
मुफ़्त
नापने का फ़ीता ७ दिन के अंदर कूपन भेजने पर !

दो प्रमुख कारण शायद जिनके कारण आपका वज़न ज़रूरत से ज़्यादा बढ़ जाता है:

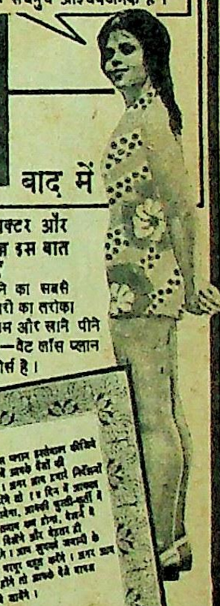
अब भारत में यह वेट लॉस कोर्स उपलब्ध है जो अमेरिका में ५,००,००० की संख्या में बिक चुका है। केवल हमसे मिलता है—इस जैसी और कोई चीज़ नहीं !

"I lost 7 lbs. and 5¾ inches off

श्रीमती शहनाज़ बाटलीवाला



"वेट लॉस प्लान का पालन करके मैंने अपना वज़न ३० किलो घटा लिया। अब ज़रा मुझे देखिए। यह जिस प्रकार काम करता है वह सचमुच आश्चर्यजनक है।



वेट लॉस से अतिरिक्त लाभ : आपका चेहरा तरो-ताज़ा दिखाई देता है। खिंचाव के निशान और झुर्रियां साफ़ हो जाती हैं, शरीर का लटकाव सीधा हो जाता है, दोहरी ठोड़ी गायब हो जाती है, यहां तक कि सूजी हुई नसें (जो मुटापे के कारण उभर आती हैं) भी सुधरने लगती हैं।

अधिकतर डाक्टर और वज़न विशेषज्ञ इस बात से सहमत हैं कि वज़न घटाने का सबसे ज़्यादा समझदारी का तरीका नियमित व्यायाम और खाने पीने में सावधानी है—वेट लॉस प्लान ऐसा ही एक कोर्स है।

यह आसान, तेज़ रफ़्तार और प्रभावकारी है !

यह चार्ट औसत वेट लॉस दर्शाता है।

नाम	वज़न में कमी किलो	नाप में कमी सें.मी.	समय
एस.एस.	१० किलो	१४ सें.मी.	१४ दिन
पी.सी.	१४.५ किलो	१८ सें.मी.	२४ दिन
पी.के.	६ किलो	९.३ सें.मी.	१४ दिन
एन.एस.	९.७ किलो	१३.१ सें.मी.	२१ दिन
एच.जी.	४.४ किलो	८ सें.मी.	१४ दिन

गारंटी

हमारा वेट लॉस प्लान इस्तेमाल कीजिये ... १४ दिन में आपको ... गारंटी देते हैं। अगर आप हमारे निर्देशों का पालन करेंगे तो १४ दिन में आपका वज़न घट जायेगा ... आप सुन्दर लगेंगी ... अगर आप ... संतुष्ट न होंगे तो आपके पैसे वापस लौटा दिये जायेंगे।

यह कूपन आपके बाज़ुओं, गर्दन, कमर, रानों, कूल्हों, नितम्ब और पिंडलियों पर से तेज़ी के साथ वज़न कम करने में आपकी मदद करेगा। अगर आप अपना वज़न घटाने में सचमुच रुचि रखते हैं तो यह कूपन काटकर आज ही डाक से भेज दीजिये !

पेश है वेट लॉस

वेट लॉस कोर्स (कृपया आपका पता अंग्रेज़ी में लिखिये)
३४ मित्तल चैम्बर्स, नरीमान प्वाइंट, बम्बई ४०० ०२१.
SA/7/76
कृपया मुझे रु. ६४/- में वेट लॉस कोर्स शीघ्र भेजिए।
☐ वीपीपी ☐ चैक ☐ मनी आर्डर ☑ किसी एक जगह निशान लगाइये।
मैं वी.पी.पी. से ऑर्डर कर रहा हूँ। मैं पोस्टमनको पैसे देनेकी गारंटी देता हूँ।
For M.O. please write your address and the products name.
PLEASE send the M.O. receipt along with the order.

नाम ______ उम्र ______
पता ______
डाकघर ______ पिनकोड ______

चैक, मनीआर्डर 'रॉस-मुरारका इंडिया प्राइवेट लिमिटेड' के नाम से भेजिए।

Headstart WL-524-HN.



उत्साह भरा जीवन
नेस्कैफे® के ताज़ा और स्फूर्तिदायक स्वाद से
NESCAFE
instant coffee
Made from finest 100% pure coffee
नेस्कैफे®
एकमात्र इन्स्टैन्ट कॉफी
जो १००%
शुद्ध कॉफी से बनी है
दुनिया भर में सबसे ज्यादा बिकने वाली
इन्स्टैन्ट कॉफी
NSC-3/76 HIN

सारिका के वार्षिक ग्राहकों के लिए विशेष छूट

'सारिका' के प्रत्येक अंक का मूल्य एक रुपया है. किंतु वर्ष भर के लिए वार्षिक शुल्क मात्र दस रुपये है. यानी साल भर में दो अंक मुफ्त. यदि आप दो साल के लिए ग्राहक बनते हैं, तो शुल्क केवल उन्नीस रुपये है यानी दो वर्षों में पांच अंक मुफ्त. हां, तीन वर्ष के लिए शुल्क केवल सत्ताईस रुपये है.

आपके लिए सारिका की विशेष दरें इस प्रकार हैः
एक वर्ष—१० रुपये
दो वर्ष—१९ रुपये
तीन वर्ष–२७ रुपये
विदेश में समुद्री डाक से एक वर्ष—२२ रुपये

कृपया यह कूपन जरूरी राशि के चेक/ड्राफ्ट/मनी-आर्डर के साथ-साथ आज ही भेज दें—

सर्कुलेशन मैनेजर
सारिका, टाइम्स आफ इंडिया बिल्डिंग, बम्बई-४०० ००१
कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/दो वर्षों/तीन वर्षों के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. १० रुपये/१९ रुपये/२७ रुपये चेक/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा भेजे जा रहे हैं.

नाम ----------------

पता ----------------

हस्ताक्षर ------------

समांतर कच्छी साहित्य–२

कच्छ का तपता रेगिस्तान, रेगिस्तान में हहराते रेत के बवंडर, दूसरी ओर पछाड़ें खाता समुद्र और उन सबसे जूझता हुआ वहां का आदमी...भूख और प्यास की छटपटाती संस्कृति और इन सबके बीच कभी न हार मानने वाली आशा और जिजीविषा...यही सब आप जुलाई '७६ अंक में पढ़ रहे हैं और इसी की अगली कड़ी है अगस्त '७६ अंक—समांतर कच्छी साहित्य — २

इस अंक के लेखक—

सुकानी, वीनेश अंताणी, अशोक हर्ष, भगवान खत्री, मूलराज रूपारेल, हीरालाल फोफलिया, नानालाल जोशी, धीरेंद्र मेहता, भानु माकड़, गौतम शर्मा, नानालाल वसा, यशोदा पलाण और कीर्ति खत्री आदि.

साथ ही–

अभिमन्यु अनत के धारावाहिक उपन्यास–

'लाल पसीना' की तीसरी किस्त

तथा सभी स्थायी स्तंभ

सारिका

अगस्त, १९७६



सारिका

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका

जुलाई, १९७६

वर्ष : १७; पूर्णांक : १८३

समांतर कच्छी साहित्य - १

कहानियां

लोककथाएं और लघुकथाएं

विशिष्ट लेख

गर्दिश के दिन

धारावाहिक उपन्यास : दूसरी किस्त

स्थायी स्तंभ

विशिष्ट रिपोर्ट

आमुख तथा कच्छी कहानियों की सज्जा : महिम पांधी.

संपादक : कमलेश्वर

- मुख्य उप-संपादक : आनंदप्रकाश सिंह
- उप-संपादक : अवधनारायण मुद्गल, सुदीप
- कार्यालय-सहयोगी : श्रीनाथ पांडेय, देवचंद्र झा, भिकाजी शिर्के



महिम पांधी ने इस अंक की सभी कच्छी कहानियों और आवरण की सज्जा की है. इनकी पारदर्शियों और चित्रों का कहानियों से सीधा संबंध नहीं है, ये चित्र स्वयं में एक कहानी हैं और कच्छ के जनजीवन की झांकी प्रस्तुत करते हैं.

महिम पांधी का जन्म १५ मार्च, १९४६ में कच्छ में हुआ. इन्होंने गुजराती साहित्य के साथ बी. ए. किया. फोटोग्राफी और चित्रकला की ओर इनकी विशेष रुचि है. साथ ही कहानियां और लेख भी लिखते हैं. आजकल गुजराती साप्ताहिक 'युव दर्शन' के सह संपादक हैं.

पाठकीय

अप्रैल अंक

'गर्दिश के दिन'

इस स्तंभ के अंतर्गत प्रकाशित श्रवणकुमार के आत्मकथ्य ने अनेक पाठकों को उद्वेलित किया, उन्हें यह प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान करने वाला लगा, किंतु **सुरेश सरल** (जबलपुर) के मतानुसार, "श्रवण कुमार के गर्दिश के दिन आम भारतीय लेखकों के गर्दिश के दिन हैं." उनका प्रश्न है : "जो अभी भी गर्दिश में हैं, उनकी तरफ आप या वे लेखक, जो गर्दिश के दिनों से पार पा चुके हैं, कब देखेंगे ?" और यह सुझाव : "जो गर्दिश से उबर चुके हैं, उनकी सुनिए, पर जो आज भी गर्दिश में हैं, उन्हें भी देखते चलिए." ☐

श्रीमती अनु कोतवाल (जम्मू तवी) की राय में "बड़े-बड़े लेखकों की यह आत्म-रचनाएं टूटे-फूटे मनुष्य का आत्मबल बढ़ाती हैं." ☐

श्रीशंकर शुक्ल, (मझखोरिया, उन्नाव, उ. प्र.) को यह रचना पढ़ कर 'तिलमिलाहट हुई कि एक मान्यता प्राप्त लेखक बनने तक व्यक्ति को कितने-कितने पापड़ बेलने पड़ते हैं." ☐

शिवप्रसाद भारती (बांदा, उ. प्र.) के विचार से यह आत्म-कथ्य "साहित्यकार को मार्गदर्शन कराता है. उनके सच्चे साहित्य सेवी जीवन को यदि मील का पत्थर कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी. ☐

अप्रैल अंक की कहानियां

यह नवलेखन विशेषांक था. अधिकांश पाठकों ने **'कहर आषाढ़ का' 'कलम हुए हाथ' 'फरिश्ते की मौत, दरिंदे 'टुकड़ा टुकड़ा मौत'** छायाएं, पसंद कीं. **'बुतखाना', 'कमीना' 'मुखौटे', 'किस्सा एक बीमा कंपनी के एजेंट का,'** भी पसंद की गयीं. ☐

और, टीकमगढ़ (म. प्र.) के **रामखिलावन सेन** का यह मत : "सारिका हम मजदूरों की प्रिय पत्रिका है. हमारे कारखाने के सभी मजदूर भाई इसे चाव से पढ़ते हैं और हर माह इसकी प्रतीक्षा में रहते हैं. . .अप्रैल अंक की कहानियां एक से बढ़ कर एक हैं.**'फरिश्ते की मौत'** अविश्वसनीय होते हुए भी मर्म को छूती है. काश, सब प्रशासक इतने संवेदनशील दयावान होते, और सब पत्रकार सही बात नहीं लिख पाने पर पत्रकारिता छोड़ सकते !" ☐

मई अंक

दुष्यंत कुमार स्मृति अंक ने पाठकों को भाव विभोर कर दिया. **ओमप्रकाश उपाध्याय** (मंडलेश्वर, म. प्र.) को मुखपृष्ठ का चित्र "युगल और दुष्यंत का हाथ टहनी पर बरबस ही 'यहां दरख्तों के साये में धूप लगती है' की याद दिलाता है." आप आगे लिखते हैं : वह कवि था (हृदय से) किंतु उससे अधिक वह अकवि था (शरीर से). तभी तो 'कैसे-कैसे मंजर सामने आने लगे हैं, गाते-गाते लोग चिल्लाने लगे हैं. . . साफगोई और बेबाक बयानी जैसी दुर्लभ विशेषताओं का वह बेताज बादशाह था.

हरगोविंद 'चेतक' (बंबई) की राय में "दुष्यंत विशेषांक उतना ही वजनदार है, जैसे कोई शेर बार-बार पढ़ने को जी होता है!"

अवधेश अमन (लखीसराय, बिहार) यह "अंक मिलते ही, एक ही बैठक में, दुष्यंत कुमार की पूरी जिंदगी की किताब" पढ़ गये. "कम से कम एक बार मैं मिल लेता उससे ! यह तमन्ना तो मेरे भीतर उसी दिन से पल रही थी, जिस दिन उसकी गजल 'यहां दरख्तों के साये में धूप' 'धर्मयुग' में छपी थी. लेकिन सख्त अफसोस है मुझे—"आज सिर्फ उसकी कुछ गजलें मेरे पास रह गयी हैं, खुद को चिढ़ाने के लिए."

डा. ओ. पी. अरोड़ा (नयी दिल्ली) का मत है कि "'सारिका' जीवन के बहुत नजदीक आ गयी है. अब उसमें पी-एच. डी. की कहानियों के बजाय आम आदमी की कहानियां हैं ! 'सारिका' को इसी सुख-दुख भरे जीवन के पास ही रखें."

एक गुमनाम पाठक का पत्र

काश ! दुष्यंत को पहले पढ़ा होता! कम-से-कम उस महान इनसान का शुक्रिया तो अदा करते.

एक दिन जरूर आयेगा जब हम सब उनकी नज्म को मशाल बनायेंगे.

आपका
एक पाठक जो पुस्तकें खरीदने की हैसियत नहीं रखता और 'सारिका' जैसी पत्रिकाओं द्वारा ही मन की मशाल जलाये रखना चाहता है.

गांव वालों की किताब

परीक्षा की तैयारी हेतु गांव आया, तो मेरी अप्रैल अंक की प्रति गांव वालों के हाथ लग गयी, और कई दिन तक मुझे फिर पढ़ने को न मिल सकी. 'सारिका' पूरे गांव में आज चर्चा का विषय बन गयी है. ग्रामीण परिवेश की कहानियां भी होने से इन लोगों को 'सारिका' में अपनापन लगा, और मुझसे पिछले अंक भी मांग कर पढ़ रहे हैं, और 'गांव वालों की किताब' के नाम से पूछते हैं.

—मुकुट विद्यार्थी (नगला बरी, इटावा, उ. प्र.)

घनश्याम अग्रवाल (अकोला) लिखते हैं: "दुष्यंत के बारे में लिखने के लिए मुझे पूरी एक जिंदगी चाहिए और उसी के साथ-साथ चाहिए'—संपादक के उक्त शब्द बड़े मार्मिक और भोले लगे. 'सारिका' दुष्यंत कुमार स्मृति अंक निकाल कर हमें दुष्यंत कुमार के कृतित्व एवं व्यक्तित्व के एकदम करीब ले आयी. बधाई."

उज्जैन (म. प्र.) से **मनोहर बैरागी** का कहना है: "इस अंक के जरिये आपने दुष्यंत जी के चाहने वालों पर इतना बड़ा अहसान किया है कि धन्यवाद के लिए सारे शब्द छोटे मालूम पड़ते हैं."

बंबई के **डा. विष्णु भटनागर** लिखते हैं: "एकल कला प्रदर्शनियां बहुत देखीं, मगर सचित्र व्यक्ति-साहित्य - अंक केवल एक याद रहगा— 'सारिका' का यह अंक. आपकी मरे मन से श्रद्धांजलि निजी नहीं, पूरे साहित्य और जन-समुदाय की हार्दिक व्यथा है. . .इस अंक में दी गयी पठनीय सामग्री और जलील कुरैशी व नवल जायसवाल के सुंदर छायाचित्रों ने दुष्यंत को पुनरुज्जीवित कर दिया. है, अमर कर दिया है."

इटारसी के छात्र **पंकज कुमार शुक्ला** के मत के अनुसार, "यह लिखना कि 'वह एक साहित्यकार बन कर आया था और एक आदमी बनकर चला गया, सटीक तो है ही, दुष्यंत जी की जिंदादिली, आम आदमी के लिए आम आदमी हो कर अपनी बात कहने और संवेदनशीलता के संबंध में बहुत कुछ कह देता है.

जो दुष्यंत कविता को चौंकाने या आतंकित करने के लिए प्रयोग नहीं करते थे, उन्होंने क्या अंत में, अंदर तक नहीं चौंकाया? वास्तव में ऐसा लगता है कि—

न हाथ थाम सके, न पकड़ सके दामन,
बड़े करीब से उठ कर चला गया कोई."

□

यह अंक

प्राकृत और अपभ्रंश या कह लीजिए कि डिंगल साहित्य का कच्छी-साहित्य पर विशेष प्रभाव रहा है. कच्छी का प्रारंभिक साहित्य संत, चारण और भाट कवियों की देन है. उसमें या तो दार्शनिक तत्व हैं या वीरगाथा के तत्व हैं. कच्छी में अन्य भारतीय भाषाओं की अपेक्षा वीरगाथा और लोककथा की परंपरा ज्यादा लंबे समय तक रही है. इसका कारण कच्छ की दुर्गम भौगोलिक स्थिति है. तीन ओर हहराते समुद्र और एक ओर तपते रेगिस्तान ने कच्छ को देश के अन्य भागों से लगभग अलग रखा है.

कच्छी की अपनी कोई लिपि नहीं है. इसलिए इसने नजदीक होने के कारण गुजराती लिपि को ही स्वीकार लिया है. आज कच्छ के लेखक गुजराती में ही अपनी अभिव्यक्ति को साकार करते हैं फिर भी उनके लेखन में अपनी बोली और जमीन की महक रहती है. यही महक उनके लेखन की सार्थक उपलब्धि है.

बीसवीं सदी के प्रारंभ में कच्छी साहित्य ने लोककथाओं की लीक को छोड़ा और पांचवां दशक समाप्त होते-होते वह वक्त की धारा से जुड़ गया.

सबसे पहले 'बकुलेश' ने यथार्थवादी प्रगतिशील कहानियां लिखीं. इस धारा से इनके दो साथी और आ जुड़े—डॉ. जयंत खत्री और मनुभाई पांधी.

'सारिका' के दो अंक (जुलाई और अगस्त) कच्छी कहानियों के अंक हैं. इन अंकों में उन सभी (वयोवृद्ध-युवा) कथाकारों की कहानियों का प्रतिनिधित्व है जो अपने वक्त से जुड़े हुए हैं, जिनकी मानसिकता आम आदमी की तकलीफों को भोगती और स्वर देती है.

इन अंकों के माध्यम से आप जान सकेंगे कि आज कच्छी कथाकारों की 'सोच' क्या है, उनकी दृष्टि के आयाम क्या हैं और वे कच्छ के संपूर्ण परिवेश को किस वैचारिक स्तर पर देखते, परखते और स्वीकारते हैं? आज के कच्छ का लोक-मानस शेष भारतीय लोक-मानस से कितना अलग या कितना जुड़ा हुआ है? □

कच्छी साहित्य एवं कच्छी साहित्यकार

● मनुभाई पांधी

भारत का पश्चिमोत्तर कोना, पाकिस्तान की सीमा पर स्थित कच्छ, सदियों तक देशी रियासत रहने के पश्चात, भारत में विलीन हो, स्वतंत्र भारत का ही एक अंग बन गया है.

तीन तरफ असीम अरब सागर एवं एक तरफ दुर्गम रण से घिरे हुए इस प्रदेश ने सदियों से अपने आस-पास के प्रदेश, सिंध, मारवाड़, सौराष्ट्र से भौगोलिक पार्थक्य सहा है. यातायात के साधनों की दुर्लमता के कारण भारत के अन्य प्रदेशों से भूमि-मार्ग से भी अधिक संपर्क स्थापित नहीं कर सका है. इससे भारत की बहुत-सी सहज बातों के प्रभाव से कच्छ अछूता रहा है.

इसके लोक-साहित्य में, इसकी गीति-कथाओं में, कहावतों में एवं चुटकुलों में इसकी गहरी कटाक्ष-शक्ति का तथा सुभाषित आदि में चुभता मार्मिक, अल्पाक्षरी वाक्पटु लावण्य है.

प्राय: पर्वतीय पथरीली भूमि, अल्प वृष्टि, बारंबार के अकाल, बारहों मास जल से पूरित रहने वाली नदियों के अभाव तथा रण की उड़ती वालुका राशि के कारण कच्छ की कृषि आकर्षक एवं लाभदायक व्यवसाय नहीं बन सकी है. इसलिए कच्छी लोगों ने आजीविका के लिए सागर का सीना रौंदा है एवं सर्वत्र समुद्र-यात्री के नाम से विश्व के अन्य देशों के साथ संपर्क स्थापित किया और उन देशों के साथ आचार-विचार का आदान-प्रदान किया है. इस तरह भौगोलिक परिस्थिति ने कच्छ के सामाजिक-जीवन, संस्कार-संस्कृति को भारत तथा गुजरात का एक अंग होने के बावजूद पृथक व्यक्तित्व उपहार-स्वरूप दिया है और उसे शीर्षस्थ कच्छीपन मिला है. कच्छी कला, कारीगरी उद्योग, वेशभूषा, रंग-चयन, लोकनृत्य, लोकगीत, बोली, साहित्य सभी में इस शीर्ष स्थान को सहेजा है.

पंद्रह लाख कच्छ वासी, कच्छी बोली बोलते हैं. कच्छी की कोई निजी लिपि नहीं है. किंतु इसकी बोली में इसका जिजी माधुर्य एवं विशेषता है. कच्छ में बसते छह लाख एवं प्रवासी नौ लाख कच्छी अपने सामाजिक व्यवहार कच्छी बोल कर ही करते हैं और गुजराती अथवा देवनागरी लिपि में साहित्य सर्जना करते हैं. साहित्यिक प्रवृत्ति कच्छी और गुजराती दोनों ही भाषाओं में होती रही है. मूल अपभ्रंश-प्राकृत से उद्भूत सिंधी, पंजाबी एवं गुजराती भाषा से प्रभावित हो कच्छी बोली का निर्माण हुआ. कच्छी में इसे 'बावाणी बोली' पितृभाषा कहते हैं. इस भाषा में स्त्रीलिंग एवं पुलिंग दो जातियां हैं, इनसे इतर अन्य कोई जाति नहीं है.

पूर्वकालीन कच्छी सायहित्य भाट, चारण, संतो तथा फकीरों द्वारा सुरक्षित रहा था. उनके गीत, दोहे, काफियां, भजन तथा लोककथाएं, कहावतें जन-समुदाय के लिए मार्ग-प्रदर्शक का कार्य करती थीं. लोक जीवन में घुल-मिल गया उच्च-कोटि का यह साहित्य प्राय: पद्य में रचा एवं गाया गया है. इसमें प्रेम, शौर्य, आत्मोत्सर्ग की यशस्वी गाथाओं के महाकाव्य रचे गये हैं. वे तत्कालीन इतिहास एवं लोक-जीवन को प्रकाशित करते हैं. कच्छ के संत मेकण, दादा, मामई, माकरशा, शाह लतीफ , गौस मुहम्मद, रतन बाई आदि ने अपने कच्छी साहित्य द्वारा ऊंच-नीच की दीवार को हटा कर , खेत-खलिहान तथा झोपड़ों के श्रमजीवियों के श्रम सीकर में उसका प्रकाश फैलाया है. वे भजन, काफियों वेदांत एवं सूफी के भक्तिमय ज्ञानोदय का उत्कृष्ट उदाहरण हैं. शाह अब्दुल लतीफ , जेसल, तोरल, माण साहब, रवि साहब, खीम साहब, त्रीकम साहब और मोरार साहब के साहित्य की गांव-गांव में गहरी जड़ें फैली हुई हैं. कच्छी साहित्य में कच्छी काफियों का स्थान अद्वितीय है. इसकी ३६ विशिष्ट कोटियां हैं और उन सभी को शास्त्रीय कहा जा सकता है, उनमें लयबद्धता है. कच्छी काफियों में करीम, देवायत, उमर सुहाब आदि कवि अग्रगण्य हैं.

संत मेकण दादा, सहाराव देशलजी के गुरु थे. उस समय में वे नारी स्वातंत्र्य के उग्र समर्थक थे और निम्न स्तर के लोगों के हित के लिए इन्होंने कार्य किये हैं. इनके भजन, पद और साखियां कच्छी लोकों में बहुत गायी जाती हैं.

अठारहवीं सदी के मध्यभाग में यह प्रवाह परिवर्तित हुआ. राव लखपत जी ने, भारत में सर्व प्रथम कवि शाला ब्रजभाषा पाठशाला स्थापित की जिसने दो सौ वर्षों तक कच्छ , सौराष्ट्र गुजरात, राजस्थान के कवियों को राज्य की सहायता से शिक्षा दी. इससे पद्य अब शास्त्रोक्त नियमबद्धता से, भिन्न-भिन्न छंदों एवं रागों में रची जाने लगी. यहीं शिक्षा पा कर गुजरात के विख्यात कवि दलपत राय ने **'पिंगल'** रचा. इस शाला ने अनेक कवियों का निर्माण किया है. चारण कवियों ने भी कच्छी साहित्य को समृद्ध किया है. कच्छी कवियों ने गुजराती एवं हिंदी में भी अपनी अनेक रचनाओं का सृजन किया है.

उसके उपरांत गुजराती साहित्य में श्रेष्ठ एवं प्रामाणिक ग्रंथ **'रण पिंगल'** की रचना श्री रणछोड़ भाई 'उदयराम ने कच्छ में ही की थी. और उसका प्रकाशन भी वहीं हुआ था.

मगन भाट, हम्मीरजी, केशवजी, देवीदास जी, रणमलजी गढ़वी, इलु बारोट, लघाणी, धुंला बारोट एवं पात्रो इनमें प्रमुख हैं.

पात्रो कवि ने तो उस असय में 'एवसड' काव्य की रचना की थी जो लोकों की जबान पर अभी भी मौजूद है.

उनके बाद के कवियों में 'खेंगा बावनी' के रचयिता कवि राघव, केशव, स्वामी त्रिविक्रमानंद सरस्वती, साजन भगत आदि ने उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में कच्छी साहित्य को विकास के पथ पर आगे बढ़ाया. संत कवि निरंजन ने कच्छी में कच्छ को राष्ट्रगीत **'मुंजी मातृभूमि के नमन'** प्रदान किया एवं वह गीत प्रत्येक कच्छी के हृदय में बस गया. 'टीपे मिंज महेशमणा मायो' (बिंदु में सिंधु समाया) जैसे साहित्य के अमर काव्यों को उन्होंने ही रचा है, जिनके अनेक भाषाओं में भाषानुवाद हुए हैं. लालजी नान जी कवि ने पौने सौ के लगभग कच्छी नाटकों की रचना की, जिनका सफल मंचन भी हुआ. चमन ने उर्दू एवं कच्छी भाषा में **'दीवाने चमन'** एवं **'बहारे चमन'** नामक दो ग्रंथों में उत्कृष्ट गजल साहित्य दिया है. कवि दुलेराय काराणी ने कच्छी भाषा को माधुर्य प्रदान किया.

कच्छ के हाजी मुहम्मद अलारखिया ने गुजरात एवं गुजराती भाषा का प्रथम सचित्र मासिक पत्र 'बीसवीं सदी' प्रकाशित किया. उसके माध्यम से अनेक लेखक एवं कलाकार प्रकाश में आये. गुजराती भाषा में कच्छ में से समाचार पत्रों का निकलना प्रारंभ हो चुका था. गुजरात को अनेक ऐतिहासिक उपन्यास नाराणजी विसनजी ठक्करे ने दिये.

कच्छी बोली है, किंतु उसकी निजी लिपि नहीं है इसलिए गुजराती लिपि का उपयोग करने वाले गुजराती लेखक गुजराती एवं कच्छी दोनों ही भाषा बोलने, लिखने, समझने एवं पढ़ने के समान अधिकारी हैं. गुजराती पाठकों की संख्या अधिक होने के कारण कच्छी लेखकों ने अपनी रचनाएं गुजराती में ही लिखनी आरंभ कर दीं.

सन् ३० से पूर्व आदर्शवाद एवं प्रेम भावना की मिथ्या आंखमिचौनी प्रधान विषयवस्तु से पूर्ण गुजराती कथा साहित्य की भरमार थी. तत्कालीन कच्छी प्रगतिशील लेखक 'बकुलेश' अपनी नवीन कहानियों के द्वारा लोकचर्चा के विषय बन गये. विश्व साहित्य के अध्येता 'बकुलेश' ने गुजराती कहानियों में दलित-पीड़ित मनुष्यों का सच्चा स्वरूप उपस्थित किया. वे यथार्थवाद के कट्टर समर्थक थे, उनके कारण गुजराती कहानियां भारत के अन्य प्रांतों के कथा-साहित्य में सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकीं.

'बकुलेश' के पश्चात डा. जयंत खत्री की कृतियों ने गुजराती कथाओं को भारतीय एवं पाश्चात्य कथाओं की श्रृंखला में उच्च स्थान प्राप्त कराया.

गुजराती कहानी-साहित्य की सर्जना में उसके रचनात्मक स्वरूप को यथार्थ किंतु कलात्मक मोड़ देने वाले गुजराती के श्रेष्ठ कथाकार के रूप में इस कच्छी लेखक ने स्थान प्राप्त किया. **'लोहो नुं टीपु' 'खराब पोर'** एवं **धाड़** जैसी श्रेष्ठ कहानियां इन्होंने रची हैं.

बकुलेश एवं खत्री के निकटस्थ मित्र डा. मनुभाई पांधी ने मानव मन एवं संसार के व्यवहार का सूक्ष्म निरीक्षण करने वाली, वातावरण एवं पात्रों को सजीव करती **बेकाबू, 'वेदना'** एवं **'अश्रु भूरियों फिणांश'** जैसी श्रेष्ठ यथार्थ का दर्शन कराने वाली कहानियां दी हैं. प्रगतिशील विचार शक्तियों को उनका प्रोत्साहन मिला है.

कच्छी सपूत श्री 'सुकानी' ने श्रेष्ठ सागर-कथाएं दी हैं. **'देवों घायल'** जैसे गुजराती साहित्य में अमर सागर उपन्यास भी दिये हैं.

उपरोक्त पीढ़ी के द्वारा उत्पन्न किये हुए नवीन कथा प्रवाह को नयी पीढ़ी के लेखक अशोक हर्ष, अनील कोठारी, वनु पांधी, बीनु केशवाणी, गौतम शर्मा, नाना लाल जोशी, धीरेंद्र मेहता, हीरालाल फोर्फलिया, रसिक मेहता आदि कच्छी लेखकों ने अपनी श्रेष्ठ कृतियों द्वारा अग्रसर किया. इस नवीन प्रवाह ने परंपरा के नवीन मानदंड की रचना की. उन लेखकों की कलम में मानव हृदय की संवेदना को कलात्मक रूप से गुंफित करने की शक्ति है. श्री वनु पांधी ने इस प्रवाह में कलात्मक योगदान दिया और उस योगदान के द्वारा नवीन श्रृंखला का सृजन किया. **'सेठ'** एवं 'सुकान' जैसे श्रेष्ठ सागर - उपन्यास वनु पांधी की महत्त्वपूर्ण देन है.

अनील कोठारी ने **'गंदा नाला'** आदि उपन्यास लिखे हैं. गौतम शर्मा ने **घेन घुंटेल दर्दो** आदि अनेक उपन्यास एवं कहानियों दी हैं. रसिक मेहता ने लगभग पचास उपन्यास रचे हैं. विनु केशवाणी का **'आठ दिवस'** उपन्यास मौलिक जासूसी उपन्यास होने के साथ-साथ उच्च कोटि की साहित्यिक कृति बन गया है. कितने ही छोटे-बड़े कच्छी साहित्यकारों ने कच्छी साहित्य-सृजन में हाथ बंटाया है. श्रीमती सरोज बेन पाठक ने कथा एवं उपन्यास साहित्य में नवीन सीमा का निर्माण किया है. ऐतिहासिक उपन्यास में असीम योगदान श्री प्रीतम लाल कवि, श्री मूलराज रूपारेल, श्री दुलेराय काराणी श्री उमियाशंकर अजाणी का है.

कवि गौतम शर्मा, प्रीतम लाल कवि, जगदीश ओझा आदि कवियों ने नवीन प्रयोग कर नवीन धारा को प्रवाहित किया है.

नवीन मोड़ पर स्थित यह साहित्य अब एबसर्ड एवं एब्स्ट्रेट प्रयोगों की तरफ आगे बढ़ रहा है. उसमें भी वीनेश अंताणी उभर कर, आने वाले कल की कथा आज गुजरात को दे रहे हैं. **'नगरवासी'** एवं **'एकांत द्वीप'** उनके नवीन सफल उपन्यास हैं.

कच्छ में आकाशवाणी केंद्र होने के कारण कच्छी भाषा को उसमें स्थान मिला है. कच्छी भाषा में नाटक, वार्तालाप, गद्य-पद्य होने के कारण नवीन प्रवाह सजीव हुआ है, परंतु कच्छी लेखकों की प्रगतिशील अभिव्यक्ति तो गुजराती भाषा के द्वारा ही होती रहेगी एवं गुजराती साहित्य को समृद्ध करने में कच्छी लेखकों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है एवं रहेगा.

पर, मात्र इतनी उपलब्धियों से उन्हें संतोष नहीं है. वे हिंदी के माध्यम से हिंदी भाषी जगत के समक्ष उपस्थित हो सकें, ऐसे प्रतिभाशाली लेखकों का आगमन हिंदी में हो, ऐसे प्रयास होने चाहिए और 'सारिका' के माध्यम से हो रहे हैं. . . □□□

भरी दोपहर

• डॉ. जयंत खत्री

उस भरी दोपहर को, जब आकाश से अंगारे झर रहे थे, एक स्त्री अपने झोपड़े के दरवाजे पर खड़ी क्षितिज की ओर नजर ठहराये हुए थी.

जेठ की उस दोपहर में ऐसी लू फुंक रही थी कि मिट्टी की दीवारों और घास की छत वाले उस झोपड़े की छाया में भी बदन झुलसा जा रहा था. जेठ महीने के शैतानी बगूले चारों दिशाओं में उठ-उठ कर डोल रहे थे. सामने रण का लंबा फैलाव था जिसमें भटकते गोल-गोल घूमते बगूले, आकाश तक पहुंच रहे थे.

दोपहर जब जवान नहीं हुई थी, तभी से वह स्त्री क्षितिज की चौकसी पर तैनात थी. सपाट रण पर घूम रही उसकी बेधक दृष्टि एक पल के लिए भी असावधान नहीं हुई थी. उसकी आंखों पर थकान का भार था. दरवाजे पर बुत की तरह स्थिर उसका शरीर यों तो स्वस्थ ही लग रहा था, किंतु तीव्र व्यग्रता ने उसके सुंदर, रूखे चेहरे पर बदसूरत रेखाएं अंकित कर दी थीं.

धूल के एक दौड़ते बगूले के पीछे से एक परछाईं उभरने लगी, तो उस स्त्री की नजर में तुरंत आ गयी.

स्त्री की आंखें चमक उठीं. बुत की तरह जमी हुई उसकी अदा में तत्काल चंचलता आ गयी. परछाईं जब कुछ और नजदीक आयी, तो उसका आकार स्पष्ट होने लगा. उसकी गति मंद थी. उसकी कमर झुकी हुई थी और सिर निढाल.

स्त्री की आंखों की चमक बुझने लगी. .

शायद आज भी वह मर्द खाली हाथ ही वापस आया था. ज्यों-ज्यों वह घर के नजदीक पहुंच रहा था, त्यों-त्यों उसकी शक्तियां रीतती जा रही थीं. जब वह एकदम नजदीक आ गया, तो उसके पैरों में लड़-खड़ाहट पैदा हो गयी. उसने झट से दोनों हाथ आंगन पर टेक कर सहारा ले लिया. कमर को बेहद मोड़ कर और सिर एकदम ही निढाल करके वह जोर-जोर से हांफने लगा.

चारों तरफ शांति फैली हुई थी. उल्लू, तीतर, बुलबुल या कौआ. . .कहीं कोई पक्षी उड़ता नजर नहीं आ रहा था. .एक छोटी-सी टेकरी की ओट में, सिर्फ एक कुएं के आसरे पर बसा हुआ, बारह-तेरह झोपड़ों का वह गांव मुर्दे की भांति पड़ा था. जेठ की भरी दोपहर के निर्दय ताप ने धरती को तड़पा दिया था.

हांफते मर्द ने स्त्री की ओर एक बार देख लिया. नजर मिलते ही स्त्री की आंखों में तिरस्कार और उलाहने का जो आभास मिला, उससे मर्द का सिर फिर निढाल हो गया. वह सिर्फ हांफता रहा. तीन-तीन दिनों की भुखमरी के बावजूद इस स्त्री की आंखों में तिरस्कार और उलाहने की चौंध है! इतनी भुखमरी के बाद तो सारी चौंध खत्म हो जानी चाहिए. . . जबकि स्त्री के चेहरे पर अब भी ताजगी और लुनाई का आभास है.

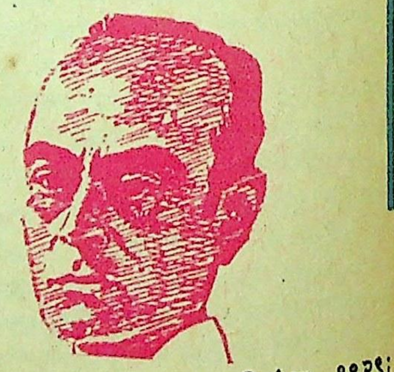
मर्द ने दांत पीसे—आंखें फाड़ कर क्या देख रही है, नीच! बदजात!

स्त्री ने जैसे सुना ही नहीं. दरवाजे के पीछे पानी का भरा हुआ लोटा उसने पहले से तैयार रखा था. उसे उसने मर्द के हाथ में थमा दिया. मर्द का हाथ ऐसे थरथराया, जैसे लोटे का वजन भी भारी पड़ रहा हो. चुल्लू में पानी ले कर उसने आंखों पर छींटा, थोड़ा पानी उसने गर्दन के पीछे भी डाला. उसकी शीतलता अनुभव करने के लिए वह पल-दो-पल रुका रहा. फिर उसने तपाक से लोटा होंठो से लगा लिया.

स्त्री ने एकदम झपट कर लोटा उससे छीन लिया, वरना उसने तो सारा ही पानी पी लिया था—दे, पानी दे! उसने बिफरते हुए कहा. दोनों हाथों से झपट्टा मार कर उसने स्त्री को पकड़ने का प्रयास किया. स्त्री ने लोटे वाला हाथ दूर हटा लिया. क्रोधित होकर मर्द ने उसका दूसरा हाथ खींच कर मरोड़ दिया.

स्त्री वेदना से चीत्कार कर उठी—छोड़िए भी! इतनी लू में भटक कर आये हैं. एकदम से इतना पानी कैसे पी सकते हैं?

मर्द ने स्त्री का हाथ छोड़ दिया. आंगन पर चढ़ कर, झोपड़े के दरवाजे को बेढंगेपन से धकेलता हुआ वह अंदर आया. दरवाजे के पास बिछी फटी-पुरानी



डा. जयंत खत्री (जन्म: २४ सितंबर, १९२९; मृत्यु, ६ जून, १९६८) प्रसिद्ध चिकित्सक, चित्रकार और कथाकार थे. इन्होंने मेहनतकश इनसानों के दर्द को स्वर दिया है. इनका साहित्य गुजराती और विशेष रूप से कच्छी की महत्वपूर्ण उपलब्धि है. इनके तीन कथा-संग्रह— 'फोरां', 'बहेता झरणां' और 'खरा बपोर' प्रकाशित हो चुके हैं.

टाट पर वह लेट गया. स्त्री दरवाजे का सहारा लेती बैठ गयी.

रण में अब ऐसा बवंडर फुंकने लगा था, जिसके बगूले मनुष्य तो मनुष्य, भारी-भरकम पशु को भी अधर उठा कर फेंक सकते थे.

मर्द लगभग बाईस साल का और स्त्री अठारह-उन्नीस की लग रही थी. मर्द छरहरा किंतु सुगठित था. स्त्री भी छरहरी लंबी, फीकी और कमनीय थी.

भरपूर चढ़ा हुआ एक धूल का बगूला, अचानक अंदर धंसता चला आया. उन दोनों ने आंखें मींच कर सिर झुका दिया. झोपड़े का दरवाजा, दीवार के साथ जोर से टकराया. किसी जबर्दस्त थप्पड़ जैसे उस झोंके के गुजर जाने पर दोनों के चेहरे ऊपर उठे. स्त्री के होंठ थरथराने लगे. उसने पूछा—कुछ भी न मिला?

मर्द ने अपना भावहीन चेहरा स्त्री की ओर घुमाया. फिर दरवाजे से बाहर ताकते हुए जवाब दिया—अगर थोड़ा-सा ही और दौड़ा होता, तो मिल जाता. प्यास से अधमरा एक हिरन दौड़-दौड़ कर थक गया था. . . दूर तक दौड़ सकने की ताकत उसमें नहीं थी. अगर मैं लपक जाता, तो उसे जरूर पकड़ लेता किंतु. . .उतना दौड़ने के बाद, उसे उठा कर, वापस यहां तक आने की ताकत मुझमें भी शेष नहीं थी. .

पिछले दो महीनों से उन दोनों को रोज केवल एक बार खाना मिल सका था—वह भी भरपेट नहीं. तीतर पकड़ने के फंदे मर्द ने रोज इधर-उधर फैलाये थे. प्रायः रोज ही वे फंदे खाली रह जाया करते. कभी-कभार कोई अभागा खरगोश पकड़ में आ जाता. दो-दो, तीन-तीन परिवार, गुट बना कर, हिरन के शिकार पर निकलते किंतु शायद ही कभी सफल होते. पिछले तीन दिनों से तो इन दोनों को बिलकुल ही कुछ खाने को नहीं मिला था.

स्त्री ने धीमे से कहा—आप जब भी एकाध बार शहर में कोशिश करिए.

—शहर में क्या जाना, मरने के लिए जाऊंगा?

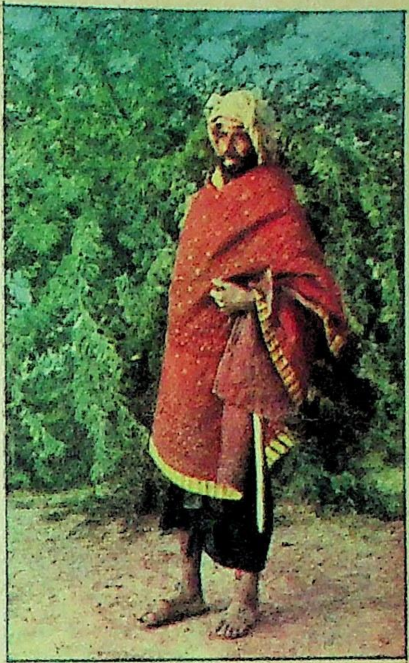
—भला मैं आपको मरने के लिए कह सकती हूं? क्यों ऐसी बातें मुंह से निकालते हैं? इन दिनों हो क्या गया है आपको? और वह फूट-फूट कर रो उठी.

रोने से जब मन थोड़ा हलका हुआ, तो उसने फिर आग्रह किया—बैसाख-जेठ में खाने की तंगी कोई इसी साल की बात तो नहीं! यह तंगी तो हमारी जिंदगी के साथ जुड़ी हुई है. इसीलिए कहती रहती हूं कि अगर आप शहर में जायें और कोशिश करें तो हम इस भुखमरी से हमेशा के लिए छूट जायें.

—शहर एक बार मैं गया तो था! मर्द रोब से उठ बैठा—मेरी वहां कैसी गत बनी थी, क्या तुम्हें मालूम नहीं? फिर भी तुम दुबारा शहर जाने को कहती हो?

—हर बार वैसा ही थोड़े होगा. आखिर इतने सारे लोग शहर जाते हैं. सबको मजदूरी या नौकरी मिलती ही है. थोड़ा धीरज चाहिए.

—इससे ज्यादा और कितना धीरज रखूं? इतने



बरसों से तुम्हारा पेट कौन भर रहा है? मैं या कोई गैर? क्या यह सब बिना धीरज के हो गया? तुम्हीं बेकद्र और बदजात होती जा रही हो.

—मेरे अर्थ का अनर्थ क्यों कर रहे हैं?

—चुप! अब यदि एक शब्द भी कहा तो गला घोंट दूंगा. और उसने स्त्री को पकड़ने के लिए झप्प-से हाथ बढ़ाया. स्त्री तुरंत हट गयी. मर्द दो पल उसे गुस्से से देखता रहा. फिर स्त्री की ओर उंगली उठा-उठा कर वह क्रोध से चिल्लाया—कुछ पता भी है? कभी खुद जाकर देखा भी है शहर? वहां के लोग तो हम जैसों के बोलने का भी मजाक उड़ाते हैं. कोई किसी की सुनता नहीं. दिन डूबे प्यार का एक शब्द भी सुनने के लिए इनसान तरस जाता है. ऐसी जगह में अगर भरपेट खाना मिलता भी हो, तो किस काम का? वहां कुत्ते की जिंदगी जीने से बेहतर है यहां आदमी की तरह बेमौत मर जाना. ऐसे शहर में मैं पैर भी नहीं रख सकता.

स्त्री सिर झुका कर पैर के अंगूठे से जमीन खोदती रही. मर्द लगातार उसे घूरता रहा. जब लगा कि वह कुछ बोलेगी ही नहीं, तो मर्द ने फिर से दरवाजे से बाहर देखना शुरू कर दिया.

निःश्वास छोड़ती हुई स्त्री उठी. मिट्टी की हंडिया में से उसने पीतल का एक कटोरा उठाया और मर्द के पहलू में रख कर प्यार से कहा—लीजिए, इतना खाकर पानी पी लीजिए.

मर्द ने कटोरे में देखा. उसकी आंखें आश्चर्य से

फैल गयी. आधे बीते जितना लंबा और दो अंगुल चौड़ा, तेल से सना, मांस का एक टुकड़ा कटोरे में पड़ा था. —कहां से लायी?

—पड़ोसन दे गयी है.

—तुम मांगने गयी थीं?

—नहीं वह आप ही दे गयी.

—क्या कहा? मर्द का चेहरा फक पड़ गया. मांस के टुकड़े पर ठहरी उसकी आंखें मानो अंधी हो जातीं लगीं. उसके होंठ भिंच गये तो. . .उनकी भुखमरी की खबर अब सारे गांव में फैल गयी है. अब कहीं-न-कहीं से उनके लिए थोड़ा-बहुत खाना आता रहेगा. अब तक की जिंदगी में उसने भुखमरी के दिन तो कई निकाल दिए थे, लेकिन किसी की दी हुई मुफ्त की चीज खाने का उसके लिए यह पहला ही मौका था. कटोरे को उसने दूर खिसका दिया. दोनों हाथों के बीच सिर दबा कर वह फटे टाट पर औंधा सो गया.

स्त्री उठ कर उसकी बगल में बैठी और बोली—नाहक जी न जलाइए. अब तो यह जिंदगी और मौत का सवाल है. उठिए, इतना खा कर पानी पी लीजिए.

और उसने अपने मर्द के घुंघराले, धूल-सने बालों पर प्यार से हाथ फेरा. मर्द उसी क्षण करवट बदल कर दूर हट गया और बोला—छूना मत, कमीनी!

स्त्री मुंह बिदका कर पीछे हटी और दरवाजे का सहारा लेती हुई बैठ गयी.

कुछ क्षण ऐसे बीते, जैसे कुछ भी न हुआ हो. फिर एक बार हवा का तेज झोंका आता सुनायी दिया. मर्द ने तेजी से हाथ बढ़ा कर कटोरे को अपने पंजे से ढांक दिया. कुछ और घड़ियों के बीतने के बाद मर्द ने कटोरे पर से पंजा उठा लिया. मांस का टुकड़ा उसने मुंह में रख कर चबाना शुरू किया. स्त्री ने आंख के कोने से देखा कि आखिर वह खाने लगा है.

मांस खाने और पानी पीने के बाद मर्द ने पीठ घुमा कर खड़ी स्त्री पर नजर डाली. वह उसे अग्निशिखा जैसी छरहरी और तीखी लगी. उस स्त्री के अंग-अंग में सुख भरा हुआ था.

मर्द शिकारी जैसी अदा में उठा और हौले से एकदम आगे आया. पीछे से उसने स्त्री के दोनों कंधे अचानक पकड़ लिये और स्त्री की गर्दन पर काट खाया.

—उई! स्त्री ने मर्द के शिकंजे से छूटने के लिए तड़पना शुरू किया. लेकिन मर्द ने उसे घुमा कर आमने-सामने कर लिया. फिर जोर से अपनी छाती के साथ दबाया. थोड़ी देर तक उसने उसे उसी तरह जकड़े रखा, फिर छोड़ दिया. मर्द के पूरे चेहरे पर एक अजब-सा हास्य उभर आया.

छूटते ही स्त्री दूर हट गयी. थोड़े आश्चर्य से, और फिर मीठे रोष से, उसने मर्द की तरफ देखा. मर्द ने गर्दन पर जहां काटा था, वहां छूते हुए उसने नखरा करने की तरह कहा—बिलकुल जानवर की तरह काट लिया. जरा भी दया नहीं आयी. हाय-हाय! आंखें नचा कर वह दूर हटी और मर्द की तरफ गहरे अर्थ की मुसकान फेंकने लगी.

मर्द ने कूद कर उसे फिर पकड़ लिया. 'बस-बस नहीं-नहीं' कहती और खिलखिला कर हंसती हुई वह उसके हाथों में फिसलती चली आयी.

मर्द ने उसे दोनों बाजुओं में समेट कर अपनी छाती में समा लिया. अवाक होकर वह एकटक उसकी आंखों में देखती रही. उसकी गीली और गर्म सांसें मर्द के गालों पर टकरायीं. इससे मर्द और भी उत्तेजित हो गया. उसका चेहरा विकराल लगने लगा. स्त्री को उसने अधिकतम शक्ति के साथ भींच डाला स्त्री. 'ओह! ओह!' करने लगी.

सहसा मर्द की बांहें कांपने लगीं. स्त्री पर कसी अपनी पकड़ को उसने ढीला होते महसूस किया.

स्त्री उसकी बांहों में से सरकती हुई, जमीन पर ढेर की तरह फैल गयी. मर्द स्वयं गिरने वाला था लेकिन उसने झट दरवाजे का सहारा ले लिया. हाथ पर सिर निढाल कर वह हांफने लगा.

थोड़ी देर बाद जब आंखों के सामने से अंधकार हटा, तो उसकी पहली नजर स्त्री पर पड़ी. वह अब भी ढेर की तरह फैली हुई थी और उसी तरह पड़ी-पड़ी अपने मर्द को तिरस्कार से ताके जा रही थी.

गहरी सांस के साथ वह तन कर खड़ा हो गया. वह स्त्री अब भी अपनी मोहिनी अदा में जमीन पर निढाल पड़ी थी. उसकी बड़ी-बड़ी भूरी आंखें मर्द को उसी वेधकता से देख रही थीं. मर्द के रोम-रोम में आग लग गयी. इतनी भुखमरी के बाद भी इस स्त्री की आंखों में जवानी के शोले भड़क रहे हैं! मर्द ने दौड़ कर स्त्री की पीठ पर जोर से लात मारी—बेशर्म! बेहया!

स्त्री वेदना से चीख उठी. जल्दी से करवट बदल कर वह झोपड़े के कोने में दुबक कर जोर-जोर से रोने लगी. मर्द के चेहरे पर संतोष की रेखाएं तिर आयीं.

झोपड़े के अंधेरे-उजियाले में लाल मिट्टी हवा बन कर उड़ रही थी. घड़ियों पर घड़ियां बीतती चलीं, मगर स्त्री के रोदन ने रुकने का नाम न लिया. बिफरा हुआ मर्द भी अभी शांत हो कर फटे टाट पर लेट नहीं गया था, तभी झोपड़े के बाहर से एक पुकार सुनायी दी—अम्मा! ओ अम्मा! रोटी का टुकड़ा दे दो, अम्मा! फकीर दुआएं देगा, अम्मा!

कोई फकीर, आंगन के सामने, भीख मांग रहा था. उसका गला बैठ चुका था. उसकी आवाज बार-बार रुक जाती. —अरे ओ अम्मा के बच्चे! मर्द ने झोपड़े के अंदर से ही गर्जना की— भरी दोपहर में चिल्ला कर कान क्यों फाड़ रहा है? चल, भाग! जा यहां से!

—छोटा-सा टुकड़ा दे दे, बच्चा! गरीबनवाज तुझे बहुत देगा.

झोपड़े में दुबकी उस स्त्री ने रोना बंद कर दिया.

—कहां से दूं? घर में हो, तो दूं या चोरी करके लाऊं और दूं? दूसरे के पसीने की रोटी खाकर पेट भरते शर्म नहीं आती? कहता हुआ मर्द दरवाजे की चौखट पर आ खड़ा हुआ.

—शर्म आती तो है, बेटा! फकीर आंगन के सहारे बैठता-बैठता बोला, लेकिन खुदाताला ने मुझे

ऐसा लाचार कर दिया है कि. . .देख! और उसने अपने चिमड़े हुए, पतले, दो हाथ उठा कर दिखा दिये. दोनों हाथों की उंगलियां आड़ी-टेढ़ी थीं और अजब ढंग से कांप रही थीं.

—लाचार हो, तो मर जाओ. दुनिया के लिए किस काम के हो?

—खुदा मौत भी तो नहीं भेज रहा.

—तो क्या तुम दूसरों का खाना लूटते फिरोगे? क्यों? चल, जा-जा. निकल जा आगे. और मर्द ने फकीर की ओर धमकीभरा हाथ उठाया.

दरवाजे पर खड़ी स्त्री की आंखें फैलने लगीं. फकीर उसे मौत के कगार पर खड़ा दिखाई दिया. अथवा. . . स्वयं फकीर ही मौत का दूसरा रूप था—जिंदा मौत. घर में अगर रोटी का एक टुकड़ा भी होता, तो फकीर को दे देती और उसकी दुआएं लेती.

—तू यों नहीं जायेगा. ठहर, हरामजादे! कह कर मर्द ने लाठी उठा ली. फकीर पर वह झपटने ही वाला था कि स्त्री ने उसका हाथ पकड़ लिया—रहने दीजिए. चिल्ला-चिल्ला कर थकेगा तो अपने-आप चला जायेगा.

—अम्मा ! इन पैरों में अगर ताकत होती, तो पहले इनकार पर ही चला जाता. जब जा ही नहीं सकता, तो यहीं क्यों न मरूं?

—ऐसा? मर्द चिल्लाया, ठहर! तेरी कब्र वाकई यहीं बनेगी. और मर्द ने लाठी उठाने के लिए जोर इकट्ठा करना शुरू किया.

मर्द ने जोर से लाठी घुमाई. लाठी ने फकीर का सिर जरूर तोड़ दिया होता, लेकिन स्त्री उसी वक्त मर्द के हाथ से लिपट गयी—नहीं, नहीं; मेरी कसम.

स्त्री मर्द को झोपड़े के अंदर वापस ले जाने की कोशिश में थी. मुड़ कर उसने फकीर की ओर देखा—खुदा की खातिर . . .चले जाओ, भाई!

लेकिन फकीर टस से मस न हुआ. भूखे पशु की तरह वह उन दोनों को अपलक निहारता रहा.

—कम्बख्त! हरामजादे! मर्द बेहद गुस्से में आ गया. स्त्री के हाथ पर मुक्का मार कर उसने उसे अलग कर दिया. फिर उसकी जांघ पर इतने जोर से लात मारी कि वह झोपड़े के अंदर फिंक गयी.

—अरे! ठहरिए! सुनिए तो! स्त्री तड़प कर उठी और मर्द को रोकने के लिए दौड़ी. मगर उससे पहले ही मर्द ने फकीर की छाती पर लाठी का छोर भाले की तरह दे मारा था.

—या अल्लाह! करता वह दुर्बल, बूढ़ा फकीर आंगन की धूलभरी जमीन पर चित हो गया. उसके गिरने से धूल का एक छोटा बादल-सा उड़ा और चारों तरफ बिखरने लगा. रस्से जैसी पतली उसकी गर्दन बल खा गयी और सिर लुढ़क-सा गया.

—हे, भगवान! यह आपने क्या किया? कहती हुई स्त्री दौड़ कर फकीर की लाश तक पहुंची और झकने लगी. उसने फकीर की छाती पर हाथ रखा, मुंह हिला कर देखा. फिर, मर्द की ओर फटी आंखों से देखा—आपने इसकी जान ले ली!

स्त्री का रोदन सुन कर अगल-बगल के झोपड़ों से लोग निकलने और इधर आने लगे. क्रोध से कांपते मर्द के हाथ से लाठी गिर गयी.

लोगों को उसने अपने झोपड़े के एकदम नजदीक आ जाते देखा. उन्होंने फकीर की लाश के साथ-साथ उन दोनों को भी घेर लिया और पूछने लगे—क्या हुआ? क्या हुआ?

दो स्त्रियों ने रो रही स्त्री को हाथ पकड़ कर उठाया. मर्द ने ऊंची आवाज में अटपटे ढंग से बोलना शुरू किया —मैंने बार-बार उससे कहा कि हमारे यहां कुछ भी खाने को नहीं है, लेकिन उसने हटने का नाम न लिया. खुद हम लोग तीनों दिन से भूखे हैं. उसे क्या देते और कहां से ला कर देते?

भीड़ में से एक ने कहा—उसे मेरे यहां भेज देना था न? मैं कुछ-न-कुछ दे देता. . .लेकिन यह मर कैसे गया?

—जैसे सब मरते हैं, वैसे. और कैसे? पूछने वाले की तरफ टेढ़ी नजर से देखता हुआ मर्द बोला, पैर सूजे हुए थे. इतनी लू में चार कोस पैदल चल कर आया था. उसे भगाने के लिए मैंने जरा धक्का दिया नहीं कि बेहोश हो कर गिर गया. गिरते ही मर गया. . .मेरा क्या कसूर?

सबकी आंखें फकीर पर ठहरने लगीं. सभी आंखें गमगीन थीं. भयंकर शांति छा गयी.

फिर किसी ने भी मर्द से खास कोई पूछताछ न की. वे आपस में खुसर-पुसर करने लगे जिसमें मर्द को कोई रुचि नहीं थी. अकुलाहट और आक्रोश को दबाने की चेष्टा के साथ वह दूर-दूर देखता रहा.

पांच-छह मर्द, न जाने क्या बातें करते हुए, दूर के झोपड़ों की तरफ जाते दिखाई दिये. शेष मर्द वहीं आंगन में बैठ गये या झोपड़े की ओट में चले गये.

दूर के झोपड़ों की ओर गये मर्द जब लौटे, तो एक खाली ठठरी उठाये हुए थे. उन्हें देखते ही वहां बैठे सब व्यक्ति एक-साथ उठ पड़े. फकीर की लाश उन्होंने ठठरी में लिटा दी. कफन ओढ़ा सजने फकीर का जनाजा निकाला.

वह मर्द उनके साथ-साथ चलने लगा.

बावड़ी के बाजू में एक छोटे वृक्ष की छाया में, फकीर को दफना दिया गया. सब अपने-अपने झोपड़ों की ओर लौट आये.

मर्द भी अपने झोपड़े में वापस आया.

मर्द ने स्त्री को दरवाजे की चौखट पर खड़े देखा. देखते ही मानो आघात लगा हो, इस तरह मर्द ठिठक गया. स्त्री एकटक उसे देख रही थी. उसका दिल एकदम बैठ जाने लगा. स्त्री की बगल से गुजरता हुआ वह झोपड़े में घुसा. भीतर अंधेरा था. स्त्री भी तुरंत उसके पीछे-पीछे झोपड़े के अंधेरे में आ गयी.

रात जब काफी बीत गयी, तो घनघोर अंधकार को चीरता हुआ एक रोदन झोपड़े से बाहर फूटने और वायु के झोंकों पर सवार होकर उड़ने लगा. दीवानों की तरह भाग रहे झोंके टेकरी के पहलू से टकराये. रोदन का वह स्वर टेकरी की ढलान पर बिखर गया. ❑❑❑

(अनुवाद : मनहर चौहान)

लाल आंखें! लाल रत्तियां लाल गेरू!

•बकुलेश

लाल आंखें : लाल रत्तियां : लाल दहकते अंगारे; लाल गेरू!...

...और शिवलाल सोनी की आंखें एकदम लाल हो गयीं. सुड़सुड़ाती हुई नाक पर टूटी कमानी का पुराना चश्मा अधिक नीचे खिसक आया था. कांच में से झांकती उसकी दृष्टि, अपने सामने पड़े हुए छोटे-से तराजू के एक पलड़े में पड़ी हुई लाल रत्ती, लाल पाई, छह रुपया, छह तोला और दूसरे पलड़े में पड़ी हुई कंगन की जोड़ी को लगातार जोख रही थी. क्रोध से उसकी आंखें लाल हो रही थीं. अपनी विचित्र शैली में उसने दांत किटकिटाये और मुंह के भीतर स्वर्ण-जड़ित दांत पर हलके से जीभ फिरायी.

सामने छोटे-से चूल्हे में अंगारे दहक रहे थे—लाल. निकट ही तांबे के एक कटोरे में लाल गेरू रखा था. एक छोटी-सी पीतल की कटोरी में लाल रत्तियां पड़ी थीं जो एक-आध वाल सोना वजन करने के काम आती थीं.

शिवलाल सोनी ने पुनः क्रोध से दांत किटकिटाये. फिर छोटे-से तराजू में से कंगन की जोड़ी हाथ में ले कर स्वयं से बुदबुदा उठा—ह!...साढ़े छह तोला, तीन वाल, सात रत्ती! उसने गरदन घुमायी तथा दाहिने हाथ से अपना सिर सहलाया और फिर बड़बड़ाने लगा—साला!...मेरे जैसे गिरहकट को भी यह दीप चंद्र उल्लू बना गया!...ठीक है! बच्चू को कुछ सबक सिखाना ही पड़ेगा.

मन-ही-मन लाल-पीला होता हुआ शिवलाल चूल्हे में सुलगते हुए अंगारों को स्थिर दृष्टि से घूरने लगा.

...लाल आंखें : लाल रत्ती : लाल अंगारे : लाल गेरू!

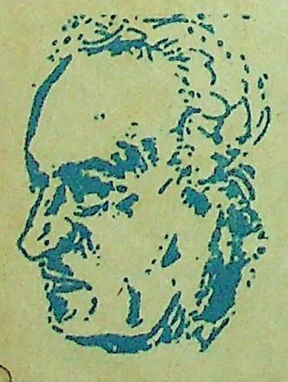
* *

शिवलाल सोनी ने जमाना देखा था. जिंदगी के उतार-चढ़ाव, कड़वे-मीठे अनुभवों से वह गुजर चुका था. अपनी जवानी उसने धन कमाने में तथा रुपये जोड़ने में गुजार दी थी, किंतु यौवन की रसिकता अब भी कभी-कभी कसमसा उठती थी, जिसे उसने धन-संचय की प्रवृत्ति से वनवास दे दिया था...! एक-आध बार उसने दो-चार कन्या वालों के संबंध स्वीकार कर लेने का भी निश्चय किया था. ऐसे समय अकसर गुलाब सेठानी के यहां शादी का प्रसंग आ उपस्थित होता था. और वह फिर से रात-दिन सुलगते हुए अंगारों के समक्ष नाजुक हथौड़ी के साथ चांदी-सोने के सुंदर, मोहक गहने गढ़ने में जुट जाता. चूल्हे में फूंकनी फूंक-फूंक कर धन कमाने के चक्कर में उसने अपना सुनहरा समय फूंक दिया था. कन्या पक्ष वाले लड़की की बढ़ती हुई उम्र के तकाजे के कारण प्रतीक्षा न कर सके तथा दूसरी जगह ब्याह कर उऋण हुए. शिवलाल के यहां जब भी गृह-लक्ष्मी के आने का संयोग जुड़ा, वह हमेशा धन-लक्ष्मी के पीछे भागा और उसी में बुरी तरह उलझ कर रह गया.

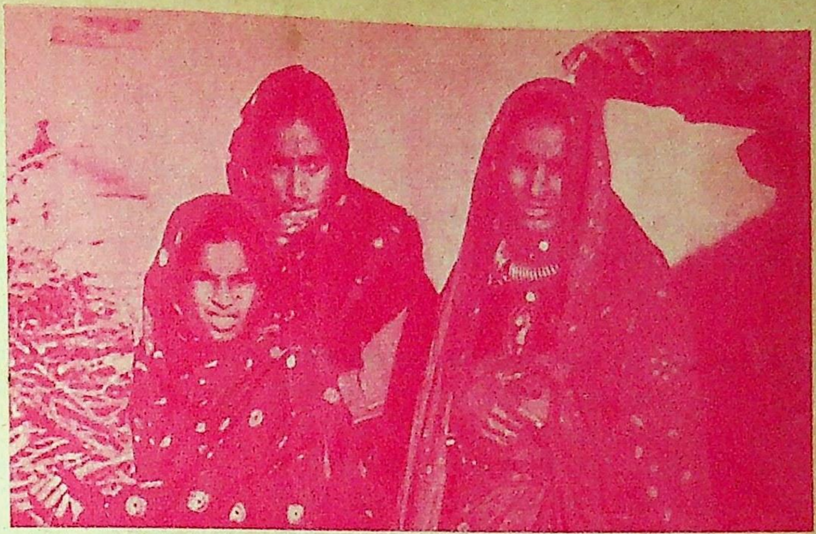
...किंतु एक दिन चूल्हे के अंगारे दहकाते हुए बांस की फूंकनी उसके होठों के बीच दबी ही रह गयी, जब गांव की वह सुंदर वाघरण अपना गोटेदार लहंगा झमकाती हुई उसकी गद्दी पर चढ़ बैठी.

वाघरण जात और मुई गद्दी पर बेहिचक चढ़ बैठी—शिवलाल के मन में करक गया. किंतु वह इस कमसिन के मिजाज से अच्छी तरह परिचित था. उसने बायीं आंख से, गुलाबी किमखाब में यत्न से छुपाये गये गदराये यौवन को ठंडी दृष्टि से देख कर एक भारी निश्वास छोड़ा. साली की जवानी क्या है!...फटी पड़ रही है!

शब्द अगर सुंदरी के कानों तक पहुंच जाते तो शिवलाल की मजाल थी जो वह चैन से अपनी गद्दी पर बैठ सकता. हरी मिर्च की तरह तीखे मिजाज वाली



बकुलेश : इनका पूरा नाम रामजी अर्जुन बकुलेश है. इनका जन्म कांडगरा (कच्छ) में ११ अगस्त, १९१० को हुआ और ६ नवंबर, १९५७ को इनकी आकस्मिक मृत्यु हो गयी. इनके छह कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं. बकुलेश फिल्म-जगत में प्रचार और प्रसार-क्षेत्र से संबद्ध रहे हैं. यह प्रतिभाशाली पत्रकार भी थे. इनकी कहानियां पिछड़े तथा दलित वर्ग के मानवीय पक्ष के प्रति विशेष संवेदनशील हैं.



तुनकैल, गांव की सारी वाघरणों में मजाल थी कि कोई इस जवान सुंदरी से छेड़-छाड़ तो कर ले!

बायें हाथ से फूंकनी को होठों से अलग करते हुए टूटी कमानी वाले चश्मे में से उसने सुंदरी को देखते हुए प्रश्न किया——क्या हुकुम है, छोरी?

और उस सुंदर छोरी ने जरा नखरे से मटक कर कहा——शिवलाल काका...

——किंतु...किंतु...! बात की नस पकड़ कर जरा शोखी से मुसकराते हुए शिवलाल बोला——किंतु... पगली, मैं तुम्हारा काका किस रिश्ते से हुआ?...यह तो बता!

छोरी खिलखिला कर हंस पड़ी. उसने बड़ी आत्मीयता से अपना एक हाथ मैली गद्दी पर बैठे हुए शिवलाल की मैली धोती में से झांकती बालों भरी जांघ पर रख दिया.

——क्या बताऊं, शिवा काका...एक ऐसी बात है जो बड़ी परेशानी की है.

——क्या बात है?... हड़बड़ाते हुए उसने पूछा.

——कहूं कि न कहूं? सुंदरी छोटी आंखें नचाते हुए बोली.

शिवलाल मन-ही-मन समझ गया कि छोरी के दिल में कोई ऐसी बात है जिसके लिए वह उसका उपयोग करने के एवज में इतना स्वांग कर रही है.

——शिवा काका...गुलाब सेठानी की बहू के गहने तो आपके यहां से ही...आपकी ही कारीगरी, सुंदर मीनाकारी से सजे...सच है न? ...रंभा बहन के पास मैंने देखे हैं...किंतु वर राजा...गुलाब सेठानी का जमाई...

——अपने भूपत सेठ का लड़का...जो अफ्रीका जा कर काफी कमा कर लौटा है...अरे जैसिंग!

——हां! जैसिंग भाई! वही जैसिंग भाई, आग लगे उसकी कमाई में! उसी ने एक दिन मुझे छेड़ा. मैं तो भाग निकली और उसे ऐसी टांग मारी कि मुंह के बल जमीन चाटता नजर आया...बेचारे के दांतों से खून निकलने लगा! यह जैसिंग बिल्कुल अच्छा आदमी नहीं है, शिवा काका...!

——किंतु इन सब बातों से मुझे क्या?

——शिवा काका!...क्या कहूं?...आप जैसे भले-मानसों के आसरे ही तो हम लोग पल रहे हैं. बाकी उस हजार हाथ वाले की दया है! ...छोरी ने रुआंसा-सा मुंह बना कर कहा.

——अरे, तुझे जो कहना हो वह कह ना!

——क्या कहूं? वह मेरा...मेरा...मैंने उसका घर बसाने का निश्चय...

——किंतु किसके साथ?

——आपको पता नहीं? वह मेघू!...मेघजी! कितना गबरा जवान है, क्या धोती पहनता है...क्या साफा बांधता है, बिल्कुल कन्हैया जैसा बांका लगता है!...मेघ जी की मां ने कहा, मेरा बेटा तुझे सिर आंखों पर रखेगा, उसका घर बसायेगी तो सोने से लद जायेगी.

——तो इसमें किसी को क्या परेशानी है?

——माई साब!...मेरे बाप! परेशानी है तो नकद-नारायण की!

——यह बात है!

——हां, मेरे बाप! सुंदरी छोरी ने. हलके से अपना हाथ शिवलाल की जांघ पर फिराया. फिर वह अजब नशीली हंसी हंसने लगी.

छोरी की नशीली काजल-भरी पुतलियां शरारत से चमक रही थीं. उसका हाथ शिवलाल की जांघ पर हलके-हलके घूम रहा था.

——कितना चाहिए?

—अढ़ाई सौ . . . आप अपना ब्याज ले लीजिएगा. . .
उसने पुनः एक मादक अंगड़ाई लेते हुए शिवलाल पर एक उड़ती नजर डाली और उसे पानी-पानी कर दिया.

तब अपने टूटे चश्मे में से उस पर भ्रष्टता भरी दृष्टि फेंकते हुए शिवलाल ने कहा—ब्याज! . . .हां, अरे, वह सब रहने दे, पीछे देख लेंगे. . .लुच्चाई से वह बाकी हंसी हंसा—आज रात को आना. अभी नहीं. खाना-वाना खाने के बाद, शांति से निकाल कर दूंगा. . . परंतु मेघ जी की सही ज़रूर चाहिए. . .किंतु रात में तो तू अकेली ही आना. . .

★ ★

इस घटना को बीते हुए एक महीना निकल गया, दूसरा बीत गया. और एक दिन सांझ को जब उसकी दुकान के सामने से गुलाब सेठानी की गाड़ी निकल गयी तो बरबस उसके मुंह से निकल पड़ा —साली छोरी. . . मुझे हथेली में चांद दिखा कर उल्लू बना गयी, रांड!

यह बात उसे जब भी याद आती, वह आग-बबूला हो उठता. सुंदरी और मेघजी तो गांव छोड़ कर ऐसे भागे, दुबारा दिखायी ही नहीं पड़े. उसकी मां भी पता नहीं कहां गायब हो गयी. अपने हृदय के जख्म वह दिखाये भी तो किसे? और दिखाये भी तो उसकी गिनती मूर्खों में होगी तथा दूसरे भी उसे मूर्ख बनाने से नहीं चूकेंगे. शिकायत कैसे करे?. . .कोई सबूत भी तो नहीं है! साली हाथ झटक कर रुपये की थैली छीन कर भाग गयी . और फिर रात के समय वह अगर उसके पीछे भागता भी तो सारे लोग क्या कहते. . .?

ऐसे अनुभवों से शिवलाल ने बहुत कुछ सीखा था. . .परंतु. . .उसकी दृष्टि पुनः सामने पड़ी हुई कंगन की जोड़ी पर चली गयी! दांत किटकिटा कर वह पुनः बड़बड़ाया —साला. . .दीपचंद भी अंधेरे में बना गया.

सच पूछा जाये तो लोग कहते हैं, सुनार को कौन पकड़ सकता है, वह तो अपने बाप का भी नहीं होता. और इस मान्यता का कायल शिवलाल भी था. फिर भी दीपचंद नकली कंगन गिरवी रख कर उससे रुपये ऐंठ ले गया था. वह समझ गया, आजकल जमाना बहुत बुरा चल रहा है. उसके जैसे भले मानस की कौन सुनेगा भला?. . .

वैसे तो इसी दीपचंद ने उसकी एक बार काफी मदद की थी. गांव का कल्लू अपनी उतरती हुई उम्र में नयी बहू ब्याह कर लाया था. उसी के लिए उसने शिवलाल से नये गहने गढ़वाये थे और विनीत स्वर में कहा था—यह शादी का टैम निकाल दो, मेरे बाप, अभी हाथ जरा तंग है—बाद में सब चुकता कर दूंगा. और वह भी जो भागा, दुबारा अपना चेहरा मुड़ कर नहीं दिखाया.

वह तो दीपचंद ही था जिसने पूरे अढ़ाई साल बाद कल्लू से तीस रुपये वसूल करके उसकी हथेली पर रख दिये थे. तब शिवलाल ने आत्मीयता से उसके कंधे थपथपाते हुए विभोर स्वर में कहा था—दीपचंद! तुम धन्य हो.

उस दिन से दीपचंद पर शिवलाल का काफी विश्वास हो गया था और जिस दिन दीपचंद कंगन की जोड़ी ले कर उसके पास रुपये लेने आया था, उस दिन उसने देखा, उसकी दुकान से दूर एक गली में सांझ के अंधेरे में घूंघट काढ़े एक स्त्री खड़ी है. वह उसकी जवान गदराई पीठ भर देख सका था. और दीपचंद ने मूंछों में ही हंसते हुए कहा था—शिवलाल काका. . .अब तो एक सुंदर-सी काकी घर में ले आओ और हम लोगों का भी मुंह मीठा करो. . .

शिवलाल यह सुन कर मन-ही-मन प्रफुल्लित हो उठा था. दीपचंद ने भांप लिया था कि औरत शिवलाल की कमजोरी है. बरसों पहले उसने अपनी जिस इच्छा और वासना को आग के समक्ष रुपये कमाने के चक्कर में फूंक दिया था, आज वह दयनीय रूप में उसके चेहरे से टपकी पड़ रही थी.

—कोई योग्य कन्या हो तो बताना.

शिवलाल की यह बात सुन कर दीपचंद ने तुक्का मारा—आपके लिए लड़की खोजना तो मेरे बायें हाथ का खेल है. बस देखते जाओ, इसी महीने न आपका ताल-मेल बैठा दूं तो मेरा नाम दीपचंद नहीं! कहते हुए वह कुटिल हंसी हंस दिया.

शिवलाल गद्गद् हो उठा. उसने झट से रुपये गिन कर दीपचंद के हाथ में थमा दिये.—राम-राम काका! कहता हुआ दीपचंद झपाटे से बाहर निकल गया.

★ ★

लाल आंखें! . . .लाल रत्ती ! . . .लाल अंगारे! . . . लाल गेरू! . . .

शिवलाल सोनी माथे पर हाथ दिये बैठा था. सहसा गली में कुत्ते जोर-जोर से भूंकने लगे. सांझ के झुटपुटे में आदमियों का एक टोला उसकी दुकान की ओर आता दिखायी पड़ा. धूल उड़ रही थी. और कुत्ते भूंक रहे थे. कौतूहल-भरे लोग शोर मचाते हुए साथ चल रहे थे और आगे - आगे था एक पुलिसमैन. पुलिसमैन उसकी दुकान पर आ कर ठहर गया. उसने जोर से हुंकार भर कर, डंडा जमीन पर पटक कर, इकट्ठा हुए लोगों को बिखेर दिया. और फिर अक्खड़ दादागीरी के साथ दुकान पर चढ़ आया. और पुलिसाना लहजे में कड़क कर बोला—शिवलाल काका, चौकी चलिए. आपको फौजदार साहब ने बुलाया है.

—पर बात क्या है? शिवलाल के भय से थरथराते हुए होंठों से शब्द निकले.

—वहीं चल कर पता चल जायेगा.

शिवलाल ने नाक पर उतर आये अपने चश्मे को जब दाहिने हाथ से ऊपर चढ़ाया, तब उसका हाथ बुरी तरह थरथरा रहा था. किसी प्रकार उसने अपनी धोती की लांग ठीक की तथा खूंटी पर लटकता हुआ अपना कुर्ता उतार कर पहना. चौकट-सी टोपी किसी प्रकार उसने सिर पर पहनी तथा चप्पलें उसे काफी प्रयत्न के पश्चात दिखायी पड़ीं. दुकान में ताला लगाया तथा सुरक्षा के लिए उसे पुनः खींच कर देख लिया.

चौकी पर पहुंच कर उसे सारे मामले की जानकारी हुई. गुलाब सेठानी के एकलौते नव परि-

णीत पुत्र शामण शाह का ब्याह हुए अभी एक महीना भी पूरा नहीं हुआ था कि उसका खून हो जाने की खबर मिली और इसी सिलसिले में शिवलाल को यहां पकड़ बुलाया गया था. लेकिन इस खून के साथ उसका क्या संबंध हो सकता है?

फौजदार ने शिवलाल की आंखों में पढ़ने वाली दृष्टि से घूरते हुए सख्त आवाज में कहा—देखो शिवलाल!...इस खून के विषय में तुम्हें जो कुछ भी पता हो, सब सच्ची-सच्ची बता दो...नहीं तो तुम्हारा हाल बहुत बुरा होगा, यह जान लो.

—परंतु, माई-बाप, मुझे तो कुछ भी पता नहीं.

—क्या पता नहीं?

—नहीं, माई-बाप! मैंने तो उनके ब्याह के सारे गहने खुद गुलाब सेठानी की उपस्थिति में गढ़े थे. वह स्वयं सब हिसाब-किताब करके ले गयी थीं. मैंने ब्याह का टीका भी स्वयं ही बनाया था...राम, राम! राम, राम!...भगवान का नाम भजो, क्या जमाना आ गया है!

—तुम उस सुंदरी वाघरण को तो पहचानते हो न?

—हैं? कौन?

—वही सुंदरी...फौजदार साहब की आवाज पुनः सख्त हो गयी.

—हां माई-बाप...वह तो मेरी दुकान से ब्याज पर रुपये उधार ले गयी है! रांड...जिस दिन से ले गयी है, पीछे मुड़ कर चेहरा नहीं दिखाया है उसने.

—ऐसा क्या?

—हां, माई-बाप!

—कब?

—लगभग महीना-डेढ़ महीना हुआ होगा. मेरे खाते में सब लिखा है...

—किसके साथ भाग कर गयी, पता है तुम्हें? कड़कती आवाज में दूसरा प्रश्न गोली की तरह शिवलाल के कान में पड़ा.

—हां, माई-बाप...वह मेघजी के साथ भाग गयी है, ऐसा मैंने सुना है.

—नहीं!...मेघजी तो पकड़ लिया गया है. वह तो कह रहा है कि मुझे सुंदरी का मुंह देखे हुए महीना हो गया है.

—अरे!

—हां!

—तब सुंदरी किसके साथ भागी थी? शिवलाल अवाक रह गया.

—दीपचंद को पहचानते हो तुम?

—हां, माई-बाप! उसे तो सारा गांव पहचानता है, पर है पक्का घाघ.

—क्यों? क्या तुम्हारे साथ कुछ किया है?

इस प्रश्न से शिवलाल का माथा झनझना उठा. वह थोड़ा अनमना-सा हो उठा. फौजदार तुरंत भांप गया कि दाल में कुछ काला है.

फौजदार ने पुनः कड़कती आवाज में उससे प्रश्न किया—मेरे सवाल का जवाब क्यों नहीं दे रहे हो?

—हां, साहब, माई-बाप! क्या कहूं? कुछ...

शिवलाल सोच रहा था, अगर वह दीपचंद के विषय में कोई ऐसी-वैसी बात कहेगा तो दीपचंद पता चल जाने पर उसे साबुत नहीं छोड़ेगा!...किंतु फौजदार की उमेठी हुई मूंछ तथा लाल दहकती हुई आंखें उसके चेहरे पर सब जान लेने के लिए टिकी हुई थीं.

—माई-बाप!...वह कांपती आवाज में बोला. दीपचंद तो है ही खुर्राट, मुझे नकली कंगन थमा कर उनके एवज में सौ रुपये ऐंठ ले गया.

—कहां हैं वे कंगन?

—दुकान में रखे हैं, माई बाप!

—ले आओ, देखूं तो!

फिर से शिवलाल ने अपनी धोती की कांध संभाली, चश्मा ठीक किया, सिर की चुटिया को टोपी के भीतर किया और पुलिसमैन के साथ दुकान पर गया. थोड़ी ही देर में वह कंगन समेत फौजदार के समक्ष था. फौजदार ने कंगन उसके हाथ से ले लिये तथा उसे वहीं बैठा कर वह पास की एक अंधेरी कोठरी में गया.

फौजदार ने लालटेन के उजास में कोठरी के कोने में बैठी हुई एक स्त्री को आवाज दी.—सुन री.

—हां, माई-बाप!

—देख सुंदरी, सब सच-सच बता दे, ये कंगन तुझे किसने गढ़ कर दिये थे?

—साब...सुंदरी ने लालटेन के प्रकाश में फौजदार की उंगलियों में लटके हुए कंगन की जोड़ी को देखा. फिर बोली—साब...गुलाब सेठानी के बेटे शामण शाह ने यह कंगन की जोड़ी मुझे दी थी....पीछे तो आप सब जानते ही हैं, साब!

—कब?

—शादी से पहले, बाप जी!

—फिर?

—मैंने ये कंगन दीपचंद को दे दिये थे. उस भले मानस ने मुझसे कहा, सुंदरी, ये कंगन तो नकली हैं, गिलट के!

—तुमने ये कंगन शामण शाह के पास से किस कारण लिये?

—साब, मैंने उसे बहुत ना कही. बाद में मुझे भरमाने के लिए उसने यह पैंतरा रचा!

—एकदम सही?

—हां, साब.

—किंतु शामण शाह के कत्ल के विषय में जब तक तू सच्ची बात नहीं बतायेगी, मैं तुझे हरगिज नहीं छोड़ूंगा...बोल साली!

—मेघजी तो बिलकुल निर्दोष है, माई-बाप, उसे कुछ मत कहिएगा...

—किंतु मेघजी है कहां?

—मुझे भी पता नहीं. मैं क्या करूं? कह कर सुंदरी रो पड़ी.

फौजदार ने उसे कस कर एक लात मारी—रांड मक्कारी करती है!

सुंदरी जोर से रोने लगी. कचहरी के बरामदे में

बैठे हुए शिवलाल ने उसकी आवाज सुनी तथा सब मामला समझ गया.

उस रात पुलिस-चौकी में काफी सरगर्मी रही. आधी रात को शिवलाल को जाने की छूट मिली. वह राम का नाम जपते-जपते घर की ओर चल दिया.

* *

एक महीने का समय बस ऐसे ही निकल गया. काफी बीती रात खिड़की-दरवाजे बंद करके शिवलाल अपने बही-खाते खोले हुए अपना भाग्य नाप-तौल रहा था. पास ही रखा हुआ दिया जल रहा था तथा आरे पर टिमटिमाती लालटेन भी मद्धिम रोशनी में जल रही थी.

उघड़ी छाती, मैली धोती में सुसज्जित शिवलाल सारी दुनिया से बेखबर अपने बही-खाते के आंकड़ों में मग्न हो गया लगता था.

बाहर शांति थी. हवा के ठंडे झोंके वातावरण में हलकी-सी सिहरन भर रहे थे. अंधियारी घुप रात में सारा गांव निद्रा-मग्न पड़ा था. उसी समय अंधेरे में छुपी हुई शिवलाल की दुकान की कुंडी किसी ने खड़खड़ायी. शिवलाल भय से चौंक उठा. उसने धीरे से बरामदे की ओर मुंह करके आवाज की—कौन है, भाई? यह भी कोई आने का समय है?

—खोलो . . .शिव काका! यह तो मैं हूं. . .मैं. . .

शिवलाल ने आवाज पहचान ली. उसके मुंह से बरबस निकल पड़ा—दीपचंद!

—हां, मैं.

शिवलाल ने हलके से थोड़ा किवाड़ खोला. इतने में दीपचंद ने बलपूर्वक धक्का दे कर पूरा दरवाजा खोल दिया. बेचारा शिवलाल नीचे गिरते-गिरते बचा.

दीपचंद का श्वास धौंकनी की तरह चल रहा था. उसने आते ही बरामदे का दरवाजा बंद कर दिया, फिर अपनी नाक पर उंगली रख कर आश्वासन भरे स्वर में बोला—घबराने की आवश्यकता नहीं है.

—किंतु इस समय?. . .आधी रात को. . .?

दीपचंद का शरीर इतनी सर्दी में भी पसीने से तर था और शिवलाल कंपकपा रहा था.

—बोलो, क्या है?

—मेरी अमानत वापस दो. यह लो अपना रुपया! नकद!. . .गिन लो.

शिवलाल घबड़ा गया. कंगन की जोड़ी तो उसने फौजदार के हवाले कर दी थी. अब क्या करे? दीपचंद कभी आ कर रुपये वापस करेगा, यह आशा भी उसे नहीं थी. उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि अब करे तो क्या करे.

—जरा शांत हो. यहां बैठो!

—बैठने का वक्त कहां है? दीपचंद ने हांफते हुए स्वर में कहा. लाओ मेरे कंगन की जोड़ी!

—परंतु. . .

—परंतु क्या?

—वह तो . . .वह कंगन की जोड़ी तो. . .भाई साहब . . .फौजदार साहब ले गये. शिवलाल ने हिम्मत करके धीरे-धीरे उगल दिया.

—. . .अब! इस नये प्रश्न ने दीपचंद को उलझन में डाल दिया था.

—लो, शिवलाल! मैं तुम्हारा रुपया रखूं, ऐसा नहीं हूं. वह कंगन की जोड़ी बनावटी है, यह भी मैं जानता था. मैंने तुम्हें उल्लू बनाया, यह भी मैं जानता हूं. . .और तुमने कंगन फौजदार के सुपुर्द कर दिये, इसकी भी मुझे जानकारी है. किंतु दीपचंद मर्द है. हां! . . .लो, गिन लो अपना रुपया.

और . . .लोभी के आगे मनपसंद वस्तु फेंकी जाये, भूखे के आगे अन्न, तो वह तुरंत लपक कर ले लेगा, उसी तरह शिवलाल ने रुपया ले लिया — जैसे-तैसे गिन कर उसने रुपये तिजोरी में रख दिये.

—लेकिन शामण शाह का खून किसने किया? शिवलाल ने प्रश्न किया.

—उससे तुम्हें क्या मतलब है?

—परंतु पुलिस जब मुझे परेशान करती है, तब मैं क्या करूं?

—सुन लो. . .शिवलाल. . .इन गुलाब सेठानी का रंग-ढंग अच्छा नहीं है. उनके सुपुत्र शामण शाह के रंग ढंग भी ठीक नहीं थे. सुंदरी को रात में फंसाने के लिए उसने इन बनावटी गिलट वाले कंगन का उपयोग किया था. उस रात उसकी बहू बेचारी उसकी बाट जोह रही थी और गुलाब सेठानी का सुपुत्र एक वाघरण के रूप पर लट्टू हो गया था. बेचारी बहू!. . .परंतु वाघरण का रूप क्या रास्ते का ठीकरा है. . .! रुपयों से किसी का रूप और इज्जत नहीं खरीदी जा सकती.

दीपचंद लगातार बोले जा रहा था और शिवलाल कंपकंपा रहा था. दीपचंद बोलते-बोलते धीरे-धीरे शिवलाल की ओर बढ़ रहा था. शिवलाल धीरे-धीरे पीछे हट रहा था. जहां दीपचंद ने बोलना बंद किया, उसके दोनों हाथ शिवलाल की तरफ बढ़ने की तैयारी कर रहे थे, उसी समय शिवलाल अपनी गद्दी पर धसक पड़ा.

पास ही पड़ी थीं—लाल रत्तियां, लाल गेरू का कटोरा . . .दिये में अरंडी के तेल से सुलगती हुई लाल लौ और दीपचंद की खूंखार लाल आंखें. . .

दूकान के बाहर ठंडी हवा के सिसकारते झोंके थे और यहां भयंकर शांति में शिवलाल कांप रहा था. दीपचंद की आंखें अंगारे बन रही थीं.

—परंतु, मेरे बाप! भाई साहब. . .मुझे क्यों. . . किसलिए. . .हैरान कर रहे हो? . . .मैं तो गरीब आदमी हूं. . . .और वह सुंदरी भी मुझसे ब्याज पर रुपये ले गयी है. उसका क्या?

—रुपये चाहिए न! दीपचंद की आंखों के डोरे और लाल हो उठे. शिवलाल पत्ते के समान थरथरा रहा था. उसकी बोलती बंद हो गयी.

थोड़े पल ऐसे ही व्यतीत हो गये. अचानक रात की नीरव शांति में पांच-छह आदमियों की इसी ओर बढ़ती पदचाप सुनायी पड़ी. दीपचंद जड़वत् हो गया. उसने

खिड़की की तरफ नजर डाली. पास पड़ा हुआ डंडा उठा कर खिड़की पर मारा. उसके पल्ले चरमरा कर खुल गये. परंतु वहां तो सरिये लगे थे.

शिवलाल की दुकान का दरवाजा बाहर से पड़े जोरदार धक्के से सहसा खुल गया. पांच हथियारबंद पुलिस मैनों तथा फौजदार ने दीपचंद को चारों तरफ से घेर लिया.

—तू ही खूनी है. गुलाब सेठानी से हमें सारी बातों का पता चल गया है! फौजदार ने कड़कती आवाज में कहा.

—हां! मैं ही खूनी हूं, यह सच बात है. किंतु मैंने शामण शाह का खून सुंदरी को उसके बलात्कार से बचाने के लिए किया था. मैं अगर ऐसा न करता तो गुलाब सेठानी ने स्वयं वही किया होता, क्योंकि गुलाब सेठानी सारे गहने-कपड़े-लत्ते के साथ मेरे साथ भागने को तैयार थी, किंतु मैंने ऐसे लालच को ठोकर मार दी, और गुलाब सेठानी को ही फटकारा!... दीपचंद ने एक भयानक चीख मारी.—बेचारी सुंदरी को क्यों ठूंस रखा है?...सुंदरी निर्दोष है. उसे छोड़ दीजिए.

—तुम्हारे हुक्म से उसे नहीं छोड़ा जायेगा... समझे? चलो अब चौकी! फौजदार कड़का.

—परंतु फौजदार साहब...तो लो यह प्रमाण!... मेरे नाम गुलाब सेठानी की लिखी हुई चिट्ठियां!.. इनमें जो कुछ भी लिखा है, उसे पढ़ कर तो आपको मुझे इनाम देना चाहिए.

दीपचंद ने अपनी जेब से कागज का एक बंडल निकाल कर फौजदार के समक्ष फेंका.

फौजदार का चेहरा ताज्जुब से भर गया. गुलाब सेठानी के लिए सारे ग्रामवासियों के मन में पूज्य भाव था, आदर था. और वही सेठानी ऐसी?...

फौजदार दीपचंद की चौड़ी छाती, कसरती बदन तथा प्रतिमाभरा विशाल मन देख कर मन-ही-मन उसकी तारीफ से भर उठा.

—एक दूसरी बात सुन लीजिए. सामान्य स्वर में दीपचंद बोला—देखिए...कंगन की जोड़ी की बात तो यह शिवलाल आपको सब बता देगा...अपनी गिरफ्तारी से पहले मैं आपको एक बात और बता देना चाहता हूं...आपकी गुलाब सेठानी ने अफीम खा ली है! मैं यहां आने के पूर्व उससे मिल कर आ रहा हूं.

फौजदार दीपचंद द्वारा एक के बाद एक रहस्योद्घाटन से चमत्कृत हो उठा. अब सारा मामला उसकी समझ में आ गया था.

बाहर वही ठंडी बयार के सिरहन भरे झोंके थे. भीतर शिवलाल अब तक कांप रहा था. और फौजदार की पेशानी पर पसीने की बूंदें उभर आयी थीं.

—चलिए अब! दीपचंद ने धीरे से कहा.

दीपचंद की लाल आंखें, लाल रत्तियां...दिये की लाल लौ...

□□□

(अनुवाद : चित्रा मुद्गल)

कच्छ की तीन दंतकथाएं

नानी कहा करती थीं

एक

कच्छ के जाडेजा ठाकोर लड़की की शादी के दहेज में सारी चीजों के साथ-साथ जहर की एक पुड़िया भी दे देते थे. और मां लड़की को अंतिम बार गले लगाते हुए, विदा के समय सीख देती थी कि जब भी जीवन दूभर हो जाये, वह उस जहर का उपयोग कर ले. और लड़की हमेशा के लिए विदा कर दी जाती. एक बार ससुराल की राह पकड़ने के बाद-फिर कभी लौट कर नैहर की देहरी पर वह पैर नहीं रख सकती थी. बारात के विदा होने के बाद माता-पिता लड़की के नाम का "छेणां" (गोबरी) जला लेते.

दो

हमारे ननिहाल लठेडी में नयी फसल के आने के बाद "ठाक-डेरे" (कृष्ण-मन्दिर) में किसी एक दिन गांव के हरिजन बैठ कर "ठाकर-थारी" (भजन-कीर्तन) करते. वहां से वे गांव के मुखिया के घर "ठाकर-थारी" करते, जिसके बदले में मुखिया की ओर से आठ-दस सेर खजूर उन्हें मिलती और उनके द्वारा सारे गांव में वह खजूर बांटी जाती और इस प्रकार ठाकर-थारी का समापन होता.

तीन

बरसात का रुख जानने के लिए जेठ सुदी एकादसी को समुद्र के किनारे 'दरिया पीर' का मेला भरता. जिसमें गांव के अन्य लोगों के साथ गांव का मुखिया भी सम्मिलित होता. मुखिया की ओर से वहीं समुद्र के किनारे पर मिट्टी की 'तोलड़ी' (हांडी) में 'लप्पई' (लापसी) बनायी जाती. समुद्र की लहरें यदि तोलड़ी को भिगोकर लौट जातीं तो आनंद की लहर दौड़ जाती, क्योंकि लोगों के विश्वास के अनुसार यह बरसात के आने का संकेत था. उसके बाद वह 'लप्पई' सब लोगों के बीच प्रसाद रूप में बांटी जाती. पर यदि लहरें 'तोलड़ी' को अपने साथ ले जातीं तो अगले वर्ष की चिंता लिये, उदास मन, लोग घर लौट जाते. □

(प्रस्तुतीकरण : माधुरी शाह)



कच्छ की दो लोककथाएं

शिकारी या पुजारी

• मूलराज रूपारेल

घूमते-घूमते लाखा फुलाणी जब 'बै' गांव पहुंचा तो उसने देखा कुएं पर एक सुंदरी पानी भर रही है. प्रथम दृष्टि में ही वह उस सुंदरी पर मुग्ध हो उठा. किसी शिल्पी ने जैसे धवल संगमरमर को गठीले सुघड़ अंगों में ढाल दिया हो...

—बाबा, यह तो एक साधारण ठेठड़ी है... डरते-डरते एक साथी ने लाखा से कहा. ये साथी लाखा के अंगरक्षक थे. मन के भी सच्चे सरल कच्छ तथा कच्छ के बाहर भी जिसकी कीर्ति ध्वजा फहरा रही थी, लोक-कवि जिसकी शूरता तथा महानता में पद-रचनाएं करते थे, ऐसे महाप्रतापी लाखा की दृष्टि एक सामान्य 'ठेठड़ी' पर अटक कर रह गयी. उसके साथी उसके इस आचरण पर चिंतातुर हो उठे.

अचानक उस औरत का ध्यान इन लोगों की ओर गया. लाखा पर दृष्टि पड़ते ही वह उसे पहचान गयी. तथा मीठी हंसी हंस पड़ी. उसके मोती से दांत मोगरे के फूल की तरह खिल पड़े. शंकित दृष्टि से उस औरत को देख रहे लाखा के साथियों को उसका इस तरह हंसना बिल्कुल न भाया, किंतु लाखा तो निहाल हो उठा. वह धीरे से उसके समीप पहुंचा और बोला—मुझे पहचानती हो?...मैं लाखा फुलाणी हूं...आज रात हमने इसी गांव में डेरा डालने का निश्चय किया है...

—जरूर-जरूर, अभी मैं गांव जा कर आपके विषय में बताती हूं तथा आप लोगों के ठहरने की व्यवस्था करवाती हूं. वह अपना आंचल सिर पर डाल, यह कह कर गांव में चली गयी.

—बाबा, यह तो निपट उजाड़ गांव दिखता है, खास बस्ती भी नहीं दिखती, अभी ज्यादा देर भी नहीं हुई है, हम लोग किसी और गांव के समीप डेरा डाल सकते हैं.

लाखा उत्तर में हंस पड़ा—उजाड़ या ज्यादा बस्ती न होने से हमें क्या फर्क पड़ता है. यह लोग तो हमारी 'सीमा' में आते हैं. कभी-कभी इनके बीच भी रहना चाहिए...और फिर रात में कौन हमें सोना है जो ताम-झाम की चिंता करें!

यह सुन कर उसके साथी तो घबड़ा गये. आखिर लाखा का मतलब क्या है?

लेकिन उन लोगों ने जो सोचा था, वैसा कुछ नहीं हुआ. लाखा ने रात को सारे गांव वालों को 'भजन' के लिए आमंत्रित किया. पूरी रात भजन चलता रहा. लाखा एकाग्र हो भजन सुनता रहा, बीच बीच में ताल देता रहा तथा कभी-कभी उस सुंदरी को मीठी दृष्टि से देख लेता था. उस सुंदरी को दीये में तेल डालने का काम सौंपा गया था, जिससे दीये की उजास में उसका मुख वह ठीक से देख पा रहा था.

लाखा उसे बार-बार देख रहा है, मुसकरा रहा है, यह बात उस औरत से छिपी नहीं थी. वह भी उसकी तरफ बार-बार देखने लगी तथा प्रत्युत्तर में मुसकराने लगी.

यह सब देख कर लाखा के साथियों को बड़ा आघात लग रहा था.

भजन का कार्य-क्रम समाप्त होने पर सारे लोग एक-एक कर उठने लगे तथा लाखा से आज्ञा ले कर जाने लगे. आखिरी में रह गयी वह सुंदरी, जो एक तने की आड़ में खड़ी हुई लाखा की ओर देख रही थी कि कब वह सबको विदा कर के फुरसत में हो तथा उसकी दृष्टि इस पर पड़े.

और वह घड़ी भी आ पहुंची, जब लाखा ने उसे देखा. वह उसके समीप पहुंचा.

लाखा पर निगाह रखे हुए एक साथी यह सब देख रहा था किंतु अगर वह उसे किसी बात से टोकता तो लाखा के गुस्सा हो जाने का भय था अतः वह मूक-सा सब कुछ देखता रहा.

उन दोनों की बातें खत्म हो चुकी थीं, औरत जाने के लिए प्रस्तुत हो रही थी. पता नहीं इन दोनों के बीच क्या बात हुई होगी...

उसने देखा, जाते-जाते वह सुंदरी थोड़ा ठिठक गयी है, और लाखा की तरफ देखते हुए उसने कहा—अच्छा तो फिर बिल्कुल निश्चित है न, अमावस की रात को आवोगे न तुम!

लाखा ने हंसते हुए कहा—बिल्कुल! और वह सुंदरी चली गयी.

अमावस आते-आते क्या देर लगती है... और अमावस का दिन आ पहुंचा. लाखा जाने के लिए निकल पड़ा. उसे अकेला न जाने देने की

वजह से उसके साथी भी वहां से निकल पड़े वे सूर्यास्त के समय 'बै' गांव पहुंचे.

पहले से ही पता होने की वजह से ग्रामवासी उसके स्वागत के लिए खड़े प्रतीक्षा कर रहे थे. उन लोगों ने लाखा के खाने-पीने की अच्छी व्यवस्था की थी. उसके साथी गांव वालों की ऐसी आव-भगत देख कर खुश भी हो रहे थे, परेशान भी. वे सोच रहे थे, इन भोले ग्रामवासियों को लाखा के कलुषित विचारों के बारे में जब पता चलेगा, तब...

एक चौक के बीच स्त्रियां 'रास' के लिए तत्पर हो रही थीं. बीच में रेशमी रजाई बिछा कर अत्यंत आदर से लाखा को बैठाया गया. उसके समक्ष चांदी का सुंदर पच्चीकारी मंडित हुक्का रखा गया तथा मान पूर्वक उसकी आज्ञा ले रास शुरू हुआ. लाखा अपनी जमीन के इन कलाकारों को देख रहा था...स्त्रीयां गोल-गोल घूमती हुई चक्कर ले रही थीं, इसमें कुछ नया-सा तो नहीं था किंतु यह रास...अमावस की रात...लाखा को पूरा समा अद्भुत-सा महसूस हो रहा था...

अमावस की रात को अपना विशेष आकर्षण था. इसीलिए यह रात शायद तय की गयी थी. अंधेरी रात में रास करती हुई सुंदरियां, कुछ के हाथ में जलती हुई मशालें तथा बाकी के हाथ में डांडिया, और वे रास कर रही थीं. मध्य में एक ढोल बजाता हुआ युवक था.

लाखा मगन हो रास देख रहा था किंतु विशेष रूप से उस सुंदरी पर ही उसकी दृष्टि थी, जो अपने एक हाथ में मशाल इस तरह उठाये थी कि उसका चेहरा उस उजास में स्पष्ट दीख सके. रास में घूमते हुए भी उसकी नजर बार-बार लाखा पर चली जाती तब वह हलके-से मीठी हंसी हंस देती.

दूर-दूर तक फैली हुई लाखा की कीर्ति आज धूल में मिल जायेगी, यह तो निश्चित है, उसके साथियों न सोचा. किंतु अब उनसे यह सब सहा नहीं जा रहा था. वे इतनी सहजता से यह सब नहीं होने दे सकते. किसी प्रकार रोकने की चेष्टा करनी ही होगी. चाहे परिणाम जो भी निकले. उनमें से एक साथी लाखा के समीप जा कर बोला—आप जिस ठेठड़ी को देख रहे हैं वह शादी-सुदा है...

—मुझे पता है, तुम पहचानते हो उसके घर वाले को?...वह जो ढोल बजा रहा है न बीच में, वही उसका घरवाला है. मैं पहचानता हूं उसको, लाखा ने सामान्य स्वर में कहा.

खत्म! बिल्कुल खत्म! अब कुछ भी नहीं हो सकता है, इस मामले में उसका घरवाला भी शामिल हो तो...?

काफी रात बीते रास खत्म हुआ. लाखा ने रास में भाग लेने वाली प्रत्येक स्त्री की भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा उन्हें कुछ-न-कुछ पुरस्कार दिया. अंत में उस रूपसुंदरी की बारी आयी. शरमाती हुई वह आगे आयी, लाखा ने प्रेम से उसके सिर पर हाथ रख कर कहा—तू तो मां, इस मुल्क की शोभा है, यह सब मैं आज देख सका, वह तुम्हारा ही प्रताप है...तुम्हें मैं क्या दूं?...आज से यह ग्राम तुम्हारा है. भाई की तरफ से बहन को सादर और जो पास में ही वह जमीन है न वहां तुम नया ग्राम बसाना तथा स्वयं भी अच्छा घर बनाना, मैं बनवा कर दूंगा.

लाखा पर शंका करने वाले साथियों का माथा शर्म से झुक गया. कच्छ में लखपत के समीप आज भी उस सुंदरी द्वारा बसाया ठेठड़ी गांव है आज भी वे लोग लाखा की सौंदर्य पारखी दृष्टि की प्रशंसा करते नहीं अघाते. □

(अनुवाद : चित्रा मुद्गल)

अतिथि-सत्कार

• मूलराज रूपारेल

अतिथि-सत्कार के लिए कच्छ पुराने समय से ही प्रसिद्ध है. चाहे कैसे भी अपरिचित गांव में जाओ, आपको भोजन (रोटला) और शयन (ओटला) तो आराम से मिलेगा ही. गांव के किसी भी घर का मेहमान हो सारा गांव पूरी रात मेहमान के पास मिलने के लिए आता रहेगा. रात देर तक दुनिया भर की बातें होंगी, तब जा कर मिलना बंद होगा.

लेकिन इसमें कच्छ का घुपी गांव बाजी मार ले गया है. अतिथि-सत्कार में यह गांव और भी प्रसिद्ध है. प्रख्यात हो या कुख्यात! इस गांव में कोई मेहमान बन कर जाने की जल्दी हिम्मत नहीं करता.

घुपी गांव के व्यक्ति ऐसे प्रेमी हैं कि आपसे मिलने के लिए आते ही रहेंगे...एक उठेगा, तो दूसरा आ जायेगा...ऐसे ही सारी रात निकल जाती है... बड़े सवेरे खेत में जाने वाले व्यक्ति भी लौट कर मेहमान की हाजिरी में आ कर बैठ जायेंगे. और बातें करते रहेंगे. वे थक कर उठेंगे तो दूसरे नींद निकाल कर फिर लौट पड़ेंगे.

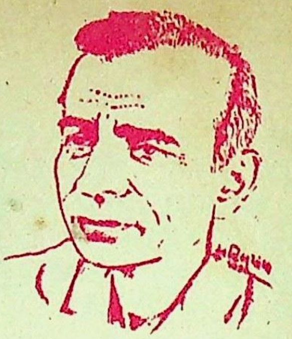
उनका कहना है कि गांव का मेहमान, अपना मेहमान. उसे अकेलापन खलेगा. इसलिए उसके पास कोई-ना-कोई तो होना ही चाहिए. वर्ना कितना खराब लगेगा? और आराम से लंबे पांव पसार कर वे बीड़ी फूंकने लग जायेंगे. बातें करते रहेंगे. बेचारे मेहमान का तो दम ही घुटने लग जायेगा. ऐसा है हमारे कच्छ के घुपी गांव का मिलन. □

(संकलन और संयोजन : रामगोपाल इगलासिया)

(अनुवाद : हरमन चौहान)

बेकाबू

मनुभाई पांधी



मनुभाई पांधी (जन्म : ६ सितंबर, १९१४, करांची) आप एक कुशल डेंटल सर्जन हैं. इन्होंने १९३६ में करांची से मांडवी (कच्छ) में आ कर प्रैक्टिस शुरू की, साथ ही लेखन कार्य में भी व्यस्त रहे. इनकी कहानियां सामान्य जन की जिंदगी की कहानियां हैं.

वह हिनहिनाया.

उसकी गर्दन पर रेशमी बाल अस्तव्यस्त हो गये. चमड़े का साज उतरा तो उसके मदमस्त बदन की चमकदार खाल पर पसीने की लकीरें नजर आने लगीं. रमजू अपने घोड़े को टमटम में से खोल तबेले की ओर ले गया.

घोड़ा नाच उठा, हिनहिनाया और अगले दोनों पैर हवा में उठा कर मस्ती से झूमने लगा.

—ए शैतान, रमजू ने उसके गले की डोरी को झटका दिया. जिंदगी भर घोड़े के साथ रहते हुए रमजू के बाल पक गये थे. वह घोड़े की जबान जानता था. घोड़ा उसके काबू में आ गया.

—बेटा कमाल, रमजू ने उसकी पसीने भरी गर्दन थपथपायी.

कमाल ने जवाब में अपने दोनों कान सीधे किये, गर्दन झुकायी और टाप से जमीन खोदने लगा.

कमाल की पीठ थपथपाते हुए रमजू को हुसैन की याद आ गयी. बगैर मां-बाप के उस अनाथ छोकरे को भी रमजू ने कमाल की तरह ही पाल-पोस कर बड़ा किया था. कमाल और हुसैन जुड़वां भाइयों की तरह ही रमजू के पास पले-बढ़े थे. कमाल बहुत शैतान था, मस्त था. मगर रमजू चाचा ने— सब उसे रमजू चाचा ही कहते थे, उस पर आसानी से काबू पा लिया था. मगर . . .रमजू चाचा अपनी सफेद दाढ़ी में अंगुली खोंसे सोच रहे थे— दोनों ही शैतान निकले हैं, दोनों ही बेकाबू हैं. . . हुसैन तो इस जानवर से भी ज्यादा हाथ से निकल गया है.

उन्होंने लंबी सांस खींची.

यादों की परतें खुलती गयीं और उन्हें बरसों पीछे ले गयीं. उनका चेहरा खिंच गया, भौंहें सिकुड़ गयीं. . .

नीच. . . बदमाश. . . नालायक, गुंडे. . . . बेशरम. . . .

लोगों की गालियां, मार और जूठन खाता, किसी के दरवाजे खुजली भरे कुत्ते की बगल में सो कर रातें काटता, वह छोटा बिखरे बालों वाला रूखा और सूकट चेहरा याद में उभर आया और रमजू की आंख की पलकें ममता से भीग उठीं.

हुसैन को रमजू का स्नेह-संरक्षण मिला और घोड़े की दोस्ती —ए छोकरे, एक सिंगल चाय ला, और देख साथ में पानी का गिलास दे और डबल चूना तमाखू तैयार कर. . . .

उस सिंगल चाय में से भी रमजू आधी तश्तरी चाय हुसैन को देता. हुसैन कमाल की देखभाल करने लगा. वह थके हुए घोड़े के लौटने पर उसका साज-सामान उतारता, सहलाता, रेती में ले जा कर लोटाता और रगड़-रगड़ कर उसकी चमड़ी साफ करता, कूद कर उसकी नंगी पीठ पर सवार हो उसे पानी पिलाने ले जाता, लीद से सने घास के विस्तर को साफ कर नयी घास बिछाता और भीगे हुए चने का तसला उसके आगे रखता. . . .ऐसे ही नये-नये काम वह करता जाता और इस तरह धीरे-धीरे घोड़ा हुसैन की जिंदगी का प्रमुख अंग बन गया.

हुसैन जब घोड़े को घुटने तक पानी में खूब नहलाता और खुद भी छींटें उड़ाता तैरता तो घोड़ा उसे अपना जिगरी दोस्त और नजदीकी संबंधी नजर आता. कमाल को भी लड़के की सोहबत अच्छी लगती. दोनों ही जैसे एक-दूसरे के दिल की बात समझते थे.

मगर एक दिन कमाल ने हुसैन की बात बिल्कुल नहीं सुनी. हर दिन की तरह कमाल की नंगी पीठ पर सवार हो वह उसे नहलाने के लिए तालाब की ओर ले जा रहा था. अचानक कमाल ने छलांग लगायी. झटका खा कर हुसैन दूर जा गिरा. उसके घुटने से खून बहने लगा, कमीज की बांह फट गयी.

हुसैन गुस्से में चिल्लाया— कमाल!

हुसैन समझ ही नहीं पाया कि क्यों अचानक



कमाल का मिजाज बिगड़ गया और क्यों वह हिनहिना कर दौड़ता हुआ आंखों से ओझल हो गया. वह फिर चिल्लाया-- कमाल!

और तब वह फटी आंखों और खुले मुंह अचंभे से देखता रह गया. घोड़ा दूर पेड़ से बंधी एक घोड़ी से जा भिड़ा था. घोड़ी भी हिनहिना रही थी. लोग खड़े हो कर तमाशा देखने लगे. दोनों प्राणी एकदम बेकाबू हो गये थे. हुसैन फटी आंखों कमाल की यह हरकत देख रहा था.

उसके बाद कमाल का पागलपन शांत होने में कई दिन लगे थे. चाचा ने उस दिन हुसैन को खूब फटकारा-- घोड़ा को कोई संत बनाने के लिए इतना तगड़ा नहीं किया. अब वह तांगे के लायक भी नहीं रहेगा और एक दिन किसी की जान ले लेगा, कहते हुए उन्होंने हुसैन के घुटने पर तेल में भिगोयी पट्टी बांध दी.

हुसैन को तब रमजू की बात बिल्कुल समझ में नहीं आयी, मगर फिर एक दिन जब पहली बरसात की बौछारों से धरती महक रही थी, उसने गुलाब को देखा और उसका दिल मुंह में आ गया. वह गुलाब के पीछे दीवाना हो गया. तब उसे उस दिन का कमाल का पागलपन और फिर रमजू चाचा के गुस्से की बात समझ में आ गयी. जब से उसने कमाल की वह हरकत देखी थी, वह लड़कियों की ओर दूसरी ही नजरों से देखने लगा था. आंख के कोने से जवान लड़कियों को चोरी-चोरी देखना उसे अच्छा लगने लगा था. गुलाब को देखते ही वह स्वयं पर से काबू खो बैठा और कई दिन तक बेचैन रहा. धीरे-धीरे वह बदमाश हो गया, लड़कियों के छेड़ने में उसे मजा आने लगा.

लोग रमजू के घोड़े के चौड़े सीने, मस्त अदावाली चाल और गर्व से तनी गर्दन पर फिदा थे. मेले के दिनों में रमजू उसे खूब सजाता. कानों में कपड़े की लटकनें, सिर पर रंग-बिरंगी पंखों की कलंगी लगाये कमाल छैला बना बाबुओं को ले कर घूमता रहता. तब हुसैन को लगता-- काश मेरे पास भी ऐसी ही मामूली-सी टमटम और कमाल जैसा जिगरी घोड़ा हो! उसके कान में वह रेशमी झालर लगाये, सिर पर तोते के पंखों की कलंगी सजाये और माथे पर रेशमी दुपट्टा डाले-- और फिर उस टमटम में किसी और को बैठने न दे.

इन्हीं सपनों में वह खो जाता.

रमजू की अनुपस्थिति में वह इधर-उधर रखड़ता रहता. सतगिप्पी से शुरू कर वह कालेज में खेले जाने वाले सभी खेलों में माहिर हो गया. उसका जीवन संवारने वाला कोई नहीं था. परती जमीन पर उगी घास की तरह वह बड़ा होता गया.

मूंछ की रेखाएं फूटने तक उसने अपने ही जैसे अनेक साथी ढूंढ़ एक मंडली जुटा ली.

हुसैन का मन एकदम चंचल और व्यवहार बेकाबू घोड़े जैसा होता गया. उसके अरदब में आकर कौन कितना घायल हुआ, किसका कितना नुकसान हुआ, वह पीछे मुड़ कर देखता ही नहीं था. नीच, बदमाश, नालायक, मवाली जैसी गालियां खाने पर वह घोड़े की तरह हिनहिना कर हंस देता. इन सबके लिए उसकी खाल बहुत मोटी हो चुकी थी.

हवा का एक झोंका आया. तबेले की घास के तिनके उड़ कर छप्पर में अटके, फिर गिर गये. घोड़े की रस्सी रमजू के हाथ में ही रह गयी. उसका दिमाग आज


नया पैकिंग नई शान
REGD.
रत्ना
छाप
ज़ाफरानी पत्ती
RATNABRAND
रजिस्टर्ड
रत्ना
ज़ाफरानी
PRABHAT
ZARDA FACTORY
NO 300
नं. १३.२०.३०.६४.१५०,२००,३००.४५०.
प्रभात ज़र्दा फैक्ट्री, मुजफ्फरपुर
अब नये पैकिंग में माँग करें
AVANTIKA/76

इधर-उधर भटकता, टकराता फिर रहा था.

हुसैन... हुसैन... उसके दिल के कोने से आवाज उठ रही थी.

जानवर से भी ज्यादा बेकाबू हो गया है. रमजू का दिल कह उठा— हुसैन— उस बदजात की जीभ ही चमड़े की है. वह किसके बस में रही है जो उसके बस में रहेगी! साली जीभ को गाली देने के बजाय लोग हुसैन को क्यों गाली देते हैं? बिला... वजह... ही तो, उसने सोचा— उसकी जवान आंखों का क्या दोष? गुलाब, चंपा, चमेली जैसी लड़कियों का आकर्षण ही कुछ ऐसा होता है— चाहे जिसे चक्कर में डाल दें.

रमजू को अपनी जवानी के दिन याद आ गये. उसने लंबी सांस ली. आंखों में समा गयी धूल साफ करता हुआ वह सोचने लगा— इन आंखों को भी जितना ही रोको, पीछे घूम-घूम कर देखने की कोशिश करती हैं. दो घोड़ों की गाड़ी में बैठा मन ही तो चाबुक मार-मार कर आंखों को दौड़ाता-नचाता है.

'मन'— और ऊंचे हिंडोले पर चढ़ा रमजू का मन दूसरी दिशा में दौड़ गया.

मन के कितने ही दर्द उसने नहीं दबा डाले? साले— उसकी फातिमा के पीछे पड़े थे. पर वह भी तो न जाने कितनी बार मन ही मन फातिमा को गिरा कर उसका शील... या अल्ला! इस उमर में भी मन पर काबू नहीं कर पाया तो बेचारे हुसैन को क्या कहूं? यह अल्लाह का ही कुसूर है. अल्लाह ताला ऐसे भयानक गुनाह की कोई सजा नहीं देता इसलिए मन निर्द्वंद्व हो कर बेकाबू घोड़े जैसा हो जाता है. जैसे-जैसे लगाम खींचो, वैसे-वैसे और जोर से भागता है.

रमजू को लगा कि यह जीभ, बेशरम आंखें और नालायक मन इनसान को दे कर अल्ला ने उसे अपने से दूर रखने की चालाकी की है.

वह नमाज पढ़ने की तैयारी करने लगा.

★ ★

हुसैन ने छक्का-पंजा और तीन पत्ते खेलते-खेलते ऐसे ही लोगों की एक मंडली जुटा ली. उसने जुए के अड्डे शुरू किये और नीले नोट उसके हाथ में खेलने लगे.

पठानी सलवार जैसा पजामा, मलमल का कुरता, रंगीन जाकिट और तेल से चुपड़े घुंघराले बाल, मुंह में डबल चूने और किमामवाला पान, कान में कानपुरी हिना इत्र के फाये की महक— यह हुसैन का परिवेश था.

नीले नोटों की गरमी जब असह्य हो गयी तो उसे बचपन से अपने दिल में पलता सपना याद आया और वह सीधा चाचा के पास दौड़ गया.

—चाचा, यह तैयार टमटम मुझे दे दो, इस पर मेरा दिल लगा हुआ है. और कमाल तो मेरा बचपन का यार है, हुसैन ने नोटों की एक गड्डी रमजू चाचा की ओर उछाल दी और कहा, चाचा, इसमें से जितना रुपया चाहिए ले लो, पर मेरी बात न टालना.

सुन कर चाचा जी भर कर हंसे. उनकी सफेद दाढ़ी हवा में फरफरा उठी.

—ले लो बेटा, तुम्हारी ही तो है. मुझे कोई और दिलवा देना. इस उम्र में अब मैं इन नोटों का क्या करूंगा. कहते हुए उन्होंने हुसैन की पीठ थपथपायी.

दोनों घोड़े के पास गये. रमजू ने कमाल पर ममता भरा हाथ फेरा और उसके कान में कहा—नहीं बेटा कमाल, यह सौदा नहीं है. मैं तो तुम्हें तुम्हारे यार के हाथ सौंप रहा हूं. बुरा मत मानना. हां, और देखो, दोनों एक दूसरे के काबू में रहना.

कह कर उसने फिर घोड़े की पीठ थपथपायी. दोनों हंस पड़े. घोड़े ने भी हिनहिना कर जैसे उस हंसी में भाग लिया. हुसैन दौड़ कर कमाल के गले में लिपट गया.

हुसैन ने घोड़े के कानों पर रेशमी कपड़े की झालर और माथे पर कलंगी लगायी और उसके बालों पर इत्र की पूरी शीशी उंड़ेल दी.

हुसैन के बालों की लटें और कमाल के बाल एक ही सुगंध से वातावरण को महकाने लगे.

वह दौड़ता हुआ जाकर रमजू चाचा से लिपट गया—चाचा, तुम भी बस बेजोड़ चाचा हो!

रमजू ने हंस कर हुसैन की पीठ थपथपायी. उसकी आंखों के कोने नम हो गये.

हुसैन आज जैसा खुश कभी नहीं हुआ था. आज उसका बरसों का सपना पूरा हुआ था. हुसैन ने जी भर कर कमाल से बातें की. कमाल ने अपने दोनों कान सीधे कर मालिक की बात का हुंकारा दिया. दोनों पुराने साथी थे.

★ ★

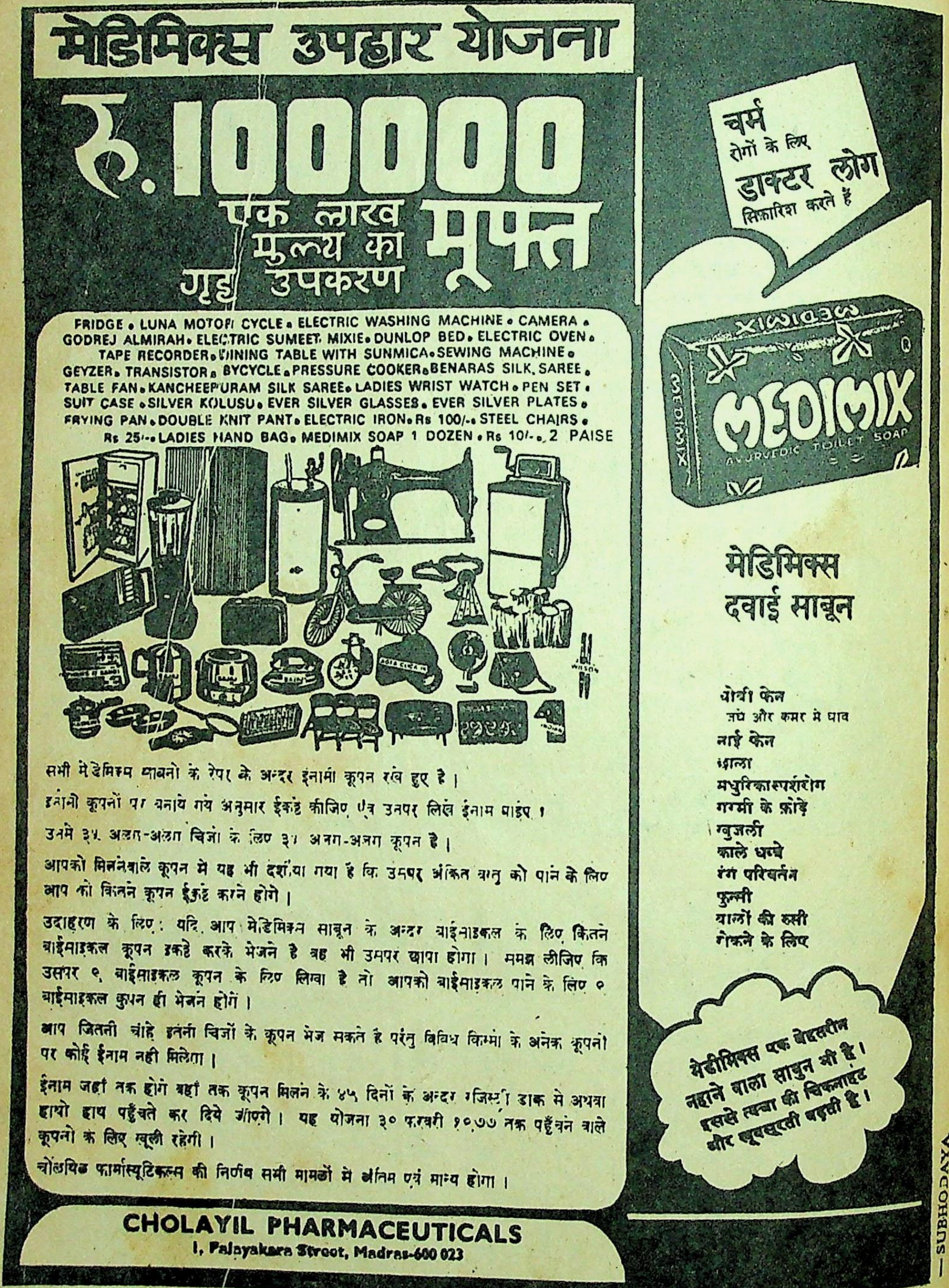
सांझ ढल रही थी. बहुत दिन बाद आसमान खुला था, सारे दिन धूप निकली थी. लगातार बरसात से शहर के तालाब में पानी लाने वाली नहर फट गयी थी और चारों ओर पानी ही पानी बिखर गया था. रास्ते टूट गये थे. जहां-तहां पानी के गड्ढे भर गये थे. बाढ़-सी आ गयी थी.

हुसैन छलांग लगा कर टमटम पर चढ़ गया. लगाम हाथ में ली और हांक लगायी—'च'. धीरे से लगाम कमाल की पीठ को छुआई और घोड़ा चल पड़ा.

—सलाम, रमजू चाचा, हुसैन चाबुक वाला हाथ उठा कर चिल्लाया.

रमजू चाचा ने हाथ ऊंचा किया—उनकी आंखें स्थिर हो कर कमाल को देख रही थीं. उनके हाथ हुसैन को विदा दे रहे थे और आंखें कमाल को. टमटम अदृश्य होने तक वे उसी ओर देखते रहे.

शाम की खुशनुमा हवा में मीठी मादकता भरी हुई थी. बहुत दिन से घर में कैद लोग प्रसन्न मन बाहर निकल पड़े थे.


मेडिमिक्स उपहार योजना
रु. 100000
एक लाख मूल्य का गृह उपकरण मुफ्त
FRIDGE • LUNA MOTOR CYCLE • ELECTRIC WASHING MACHINE • CAMERA • GODREJ ALMIRAH • ELECTRIC SUMEET MIXIE • DUNLOP BED • ELECTRIC OVEN • TAPE RECORDER • DINING TABLE WITH SUNMICA • SEWING MACHINE • GEYZER • TRANSISTOR • BYCYCLE • PRESSURE COOKER • BENARAS SILK SAREE • TABLE FAN • KANCHEEPURAM SILK SAREE • LADIES WRIST WATCH • PEN SET • SUIT CASE • SILVER KOLUSU • EVER SILVER GLASSES • EVER SILVER PLATES • FRYING PAN • DOUBLE KNIT PANT • ELECTRIC IRON • Rs 100/- • STEEL CHAIRS • Rs 25/- • LADIES HAND BAG • MEDIMIX SOAP 1 DOZEN • Rs 10/- • 2 PAISE
सभी मेडिमिक्स साबुनों के रैपर के अन्दर इनामी कूपन रखे हुए है।
इनामी कूपनों पर बताये गये अनुसार ईकट्ठे कीजिए एवं उनपर लिखे इनाम पाइए।
उनमें ३५ अलग-अलग चिजों के लिए ३५ अलग-अलग कूपन है।
आपको मिलनेवाले कूपन में यह भी दर्शाया गया है कि उनपर अंकित वस्तु को पाने के लिए आप को कितने कूपन ईकट्ठे करने होंगे।
उदाहरण के लिए: यदि आप मेडिमिक्स साबून के अन्दर बाईसाइकल के लिए कितने बाईसाइकल कूपन इकट्ठे करके भेजने है वह भी उसपर छापा होगा। समझ लीजिए कि उसपर ९, बाईसाइकल कूपन के लिए लिखा है तो आपको बाईसाइकल पाने के लिए ९ बाईसाइकल कूपन ही भेजने होंगे।
आप जितनी चाहे इनमें चिजों के कूपन भेज सकते है परंतु विविध किस्मों के अनेक कूपनों पर कोई ईनाम नही मिलेगा।
ईनाम जहाँ तक होगे वहाँ तक कूपन मिलने के ४५ दिनों के अन्दर रजिस्टर्ड डाक से अथवा हाथों हाथ पहुँचते कर दिये जाएंगे। यह योजना ३० फरवरी १९७७ तक पहुँचने वाले कूपनों के लिए खुली रहेगी।
चोलयिल फार्मास्यूटिकल्स की निर्णय सभी मामलों में अंतिम एवं मान्य होगा।
CHOLAYIL PHARMACEUTICALS
1, Palayakara Street, Madras-600 023
चर्म रोगों के लिए डाक्टर लोग सिफारिश करते हैं
MEDIMIX
AYURVEDIC TOILET SOAP
मेडिमिक्स दवाई साबून
घोबी फेन
जंघे और कमर में घाव
नाई फेन
छाला
मधुरिकास्पर्शरोग
गर्मी के फोड़े
खुजली
काले धब्बे
रंग परिवर्तन
फुन्सी
बालों की रूसी
रोकने के लिए
मेडीमिक्स एक बेहतरीन नहाने वाला साबुन भी है। इससे त्वचा की चिकनाहट और खूबसूरती बढ़ती है।
— SUBHODAYA

हुसैन को लगा कि कमाल की चाल भी आज कमाल की है. वह रंगीले नौजवान की अदा से चल रहा है.

हवा का एक झोंका आकर हुसैन के बालों की लटों को बिखराता हुआ गुजर गया.

—शुक्रिया, हुसैन ने मस्ती में झूमते हुए झोंके से कहा और मन-ही-मन मुस्कराने लगा.

उसके पैर अपने आप घंटी पर पहुंच गये और घंटी की मधुर आवाज गूंज उठी. तभी उसकी नजर दूर मुड़ते हुए एक तांगे पर पड़ी. शिकारी जैसी फुर्ती से हुसैन सतर्क हो गया. तेजी से अदृश्य होते तांगे में उसे काली किनारी वाली रेशमी साड़ी और काला ब्लाउज नजर आया.

—या अल्ला! वाह!

उसके दिल की धड़कन बढ़ गयी. उसका रोमांस जाग उठा. शिकारी जैसे शिकार को टटोलने के लिए नजरें सिकोड़ता है, उसी तरह वह चुंधी हुई आंखों से देखने लगा.

—क्या शुभ शकुनी घोड़ा है. पहले दिन ही फतह. सलाम यार, मेरे कमाल, सलाम, उसकी कर्कश हंसी से कमाल भड़क गया.

—आज मेरे हाथ से बच कर कहां जायेगी! उसने दांत किचकिचाये और चाबुक उठायी.

घोड़ा उसका मतलब समझ गया. हुसैन ने लगाम खींची, ढीली दी, फिर खींची. फिर तेजी से ढील दी और चाबुक धीरे से घोड़े की पीठ को लगायी. घोड़े ने इशारा समझा, लंबे टाप भरता वह तेजी से दौड़ने लगा. हुसैन का दिल भी आगे के तांगे को पकड़ने के लिए तेजी से दौड़ने लगा.

★ ★

मोड़ पर आ कर हुसैन ने देखा कि सारा रास्ता भीड़ से भरा हुआ है और अगले तांगे का कहीं पता नहीं है.

—आज भी छोकरी चकमा दे जायेगी? अरे, इस बात में कोई दम नहीं है, हुसैन बड़बड़ाया और और अधिक तेजी से बाग के बड़े रास्ते की ओर जाने वाली छोटी पगडंडी पर उसने टमटम मोड़ दी. ऊबड़खाबड़ रास्ते पर से उछलती टमटम तेजी से आगे बढ़ने लगी. पगडंडी पूरी कर टमटम जब मुख्य रास्ते पर आयी तो हुसैन ने देखा कि वह तांगा एक फर्लांग दूर आगे चला जा रहा है.

—शाबास कमाल, वाह बेटे, कह कर उसने घोड़े की पीठ पर फिर चाबुक लगायी और कमाल और अधिक लंबे टाप लेता तेजी से आगे बढ़ने लगा. हुसैन लोलुप दृष्टि से आगे देख रहा था. उसकी बेचैनी बढ़ गयी थी.

उस लड़की की नजर तेजी से निकट आती टमटम पर पड़ी और हुसैन को देख कर वह कांप उठी. इसी तरह जब वह एक दिन कालेज से लौट रही थी तो हुसैन ने उसका पीछा किया था. उस दिन वह एक मकान में घुस कर पीछे के दरवाजे से निकल गयी थी. आज के पहले कितनी ही बार हुसैन उसका पीछा कर चुका था, पर हर बार वह बच कर निकल भागी थी.

—भाई, जरा तेजी से चलो, उसने अपने तांगेवाले से कहा.

लड़की की भयभीत आवाज सुन कर तांगे वाले ने घूमकर पीछे देखा—हुसैन कमाल की पीठ पर चाबुक मार रहा था.

—साला. . .मवाली. . .गांव की बहू-बेटियों. . . जरा संभाल कर बैठना, बहन, रास्ते में बहुत गड्ढे हैं. तांगा उछलेगा. घबराना नहीं, कह कर तांगेवाले ने दूध जैसे सफेद रंग की अपनी घोड़ी तेज की.

पीछे आता घोड़ा हिनहिनाया.

हिनहिनाहट सुन कर घोड़ी चारों पैरों से उछली और जैसे जान बचाने के लिए भाग रही हो, तेजी से दौड़ने लगी.

तांगेवाला घोड़ी की घबराहट समझ गया. उसने लगाम खींची, पर घोड़ी नहीं रुकी. वह और तेजी से दौड़ने लगी. तांगेवाला घबरा गया और हुसैन को गाली देने लगा.

हुसैन की टमटम की लपेट में आकर एक कुत्ता चीखने लगा.

किसी के बिखेरे दाने चुगते हुए कबूतर घबरा कर उड़ गये. एक कुत्ता हुसैन के तांगे के साथ दौड़ता हुआ भौंकने लगा. एक मां ने अपने बच्चे को तेजी से खींच कर टमटम के नीचे आने से बचा लिया.

—ए बुढ़िया! . . .ओ गंवार. . .हट, हट जाओ गधे, चीखते हुए हुसैन ने साथ दौड़ते हुए कुत्ते पर चाबुक जमायी. कुत्ता जोर से चीख उठा.

लोग चकित से खड़े हो कर यह घुड़दौड़ देखते हुए एक दूसरे से बतियाने लगे—कौन है यह जंगली घोड़ावाला?

—उस लड़की के पीछे पड़ा लगता है.

—अरे, यह तो हुसैन है, उसे पहचानते हुए कोई बोला.

—ये हुसैन है? उसकी नाक की धाक थी.

—बहुत बेकाबू हो गया लगता है. उसे न जानने वाला एक आदमी बड़बड़ाया, पक्का गुंडा लगता है, पकड़वा देना चाहिए.

पर टीका-टिप्पणी करनेवालों में से किसी ने उत्साह नहीं दिखाया.

★ ★

हुसैन जिद में आकर टमटम भगा रहा था, बिना किसी की परवाह किये. उसने फिर चाबुक उठायी मगर फटकारने से पहले ही कमाल हिनहिनाया और चारों पैरों पर उछल पड़ा.

ऐसे ही पहले एक दिन हिनहिना कर, हुसैन को दूर फेंक वह एक घोड़ी से जा भिड़ा था, हुसैन को याद आया और उसने लगाम खींची.

घोड़ा सरपट चाल छोड़ चारों पैरों से कूदता हुआ और तेजी से दौड़ने लगा. टमटम समुद्र में डूबती-उतराती मछली की तरह हिचकोले खाने लगी.

हुसैन ने फिर लगाम खींची, पर घोड़ा फिर भी धीमा नहीं हुआ.

—कमाल, तुझे क्या हो गया है?

जवाब में उसे कमाल की तेज हिनहिनाहट सुनायी दी. और यह हिनहिनाहट सुन पतली धीमी हिनहिनाहट के साथ आगे जाती घोड़ी घायल हिरनी की तरह तेजी से भागने लगी.

—तू घोड़ी की गंध से पगला गया है क्या? बड़बड़ाते हुए हुसैन ने पैर अटका कर दोनों हाथ से लगाम खींची घोड़े का मुंह लगाम खींचे जाने से ऊंचा उठा, पर नकेल से अभाव में वह घोड़े को रोक नहीं पाया. घोड़े का पागलपन और बढ़ गया. उसने पूंछ से झपट्टा मार कर हुसैन के हाथ से लगाम छीन कर अपनी पूंछ के नीचे ही दबा ली. किसी तरह अपने को संतुलित कर हुसैन नीचे झुका और उसने लगाम वापस ऊपर खींच ली.

—कमबख्त, हुसैन दहाड़ा.

उसकी नजर नजदीक आ गये तांगे की बीच की लकड़ी से चिपक कर लटक जाती युवती पर चिपकी हुई थी. उसकी साड़ी ढल गयी थी. और छाती सहमे हुए पक्षी की तरह ऊपर-नीचे होती धड़क रही थी उसके कपड़े अस्तव्यस्त हो कर उड़ रहे थे और उसकी पीला कोमल चमकता बदन देख कर हुसैन बेकाबू हुआ जा रहा था.

एक मैले पानी के गड्ढे से पहिया गुजरा और चारों ओर गंदा पानी फैल गया. मच्छर उड़े और फिर आ कर वहीं बैठ गये.

कहीं-कहीं पानी पर तक आयी काई की बदबू फैल गयी थी.

बाग में जाने के रास्ते के दोनों ओर आते-जाते स्त्री-पुरुष-बच्चे एक किनारे हट कर ठिठक कर खड़े हो गये थे. किसी हादसे का डर चारों ओर छा गया था.

* *

तभी चीख पुकार मच गयी.

सामने से मिलिट्री का एक ट्रक चला आ रहा था. उसे देख तांगेवाले ने अपना तांगा जरा किनारे पर लाने की कोशिश की, पर उसका पहिया एक गहरे गड्ढे में धंस गया. तांगा उछला, संतुलन बिगड़ गया, तांगे का वह हिस्सा नीचे की ओर खिसका और वजन के जोर से पुल का उस ओर का हिस्सा कड़-कड़ा कर टूट गया. घोड़ी उस पर से नीचे फिसली. उसका शरीर पुल के ऊपर के डंडे और मोटे चमड़े के बंद के बीच फंस गया.

तांगा एक तरफ से नीचे झुक गया. दूसरी ओर का पहिया हवा में चक्कर खाने लगा. हवा में तटके घोड़ी के पैर जमीन का आधार ढूंढ खड़े होने की कोशिश में फड़फड़ाने लगे. उसके मुंह से फेन निकल रहा था.

एक चीख के साथ लड़की बगल के गंदे पानी के गढ़े में जा गिरी. उसके कपड़े और शरीर कीचड़ से लथपथ हो गये. बाल बिखर गये. उसकी अर्धनग्न देह को कीचड़ ने ढक लिया था.

मिलिट्री के ढंक के ब्रेक की तीखी आवाज गूंज गयी.

ट्रक रुकने से पहले ही उसके अंदर से कुछ सैनिक बाहर कूद पड़े और घोड़े के चमड़े के बंद को चक्कू से काटने में तांगेवाले की मदद करने लगे. तांगेवाला अब भी हुसैन को गाली दे रहा था.

कुछ लोगों ने दौड़ कर लड़की को कीचड़ से निकाला. वह भीगी बिल्ली की तरह कांप रही थी.

आगे का तांगा धचकते-धचकते पीछे से हुसैन का तांगा आ गया. घोड़ा घोड़ी के बगल आ कर दो पैरों पर खड़ा हो गया. फिर तेजी से आगे के उठे हुए पैर जमीन पर टिका कर पिछले पैरों को उठा कर उसने दुलत्ती झाड़ी और हिनहिनाने लगा.

टमटम का संतुलन बिगड़ गया और घोड़े की दुलत्ती की अचानक मार से हुसैन हवा में उछल दूर पड़े पत्थर और कांटों के झाड़ के बीच सिर के बल जा गिरा. पहिया मुड़ कर टूट गया, चमड़े के पट्टे टूट गये और घोड़ा टमटम से निकल गया.

मगर आगे बढ़ने के पहले ही सैनिकों ने घोड़े को पकड़ कर एक ओर खींच लिया. उसका पागलपन अभी थमा नहीं था. तेजी से सांस लेने में कारण उसके नथुने फूल रहे थे. बार-बार वह दो पैर हवा में उछाल कर छूटने की कोशिश करता हुआ हिनहिना रहा था.

चार-छह लोगों ने हुसैन को उठाया. उसके सिर से खून बह रहा था. चेहरा कुचल गया था.

* *

शाम ढल चुकी थी. रात के रंग छाने लगे थे. ट्रक से उतर आया अफसर घोड़े पर चाबुक फटकारता हुआ चीख रहा था.

ऐसे खतरनाक बेकाबुओं को तो बंध्या कर देना चाहिए.

सैनिकों पर लद कर ऊपर आते हुसैन ने मुड़ कर अफसर की ओर देखा. उसे लगा, अफसर उसी से यह कह रहा है, उसके कानों में अफसर के शब्द गूंजने लगे. उसकी आंखों के आगे अंधेरा छाने लगा. फिर उसे वही शब्द सुनायी दिये.

हुसैन ने अपना होश संभालने की नाकाम कोशिश की और वह बेहोश हो गया □□□

(अनुवाद : केशव झा)

प्रतीक्षा

तरला भाटिया

स्मिता ने घड़ी की तरफ देखा. अभी तो एक बज कर पांच मिनट ही हुए थे. वह अलसा उठी. दोनों हाथ उ । कर उसने अंगड़ाई ली तब कहीं कुछ अच्छा-सा लगा. न जाने आज समय जल्दी क्यों नहीं कट रहा था. अभी तो दो-ढाई. . .तीन. . .साढ़े तीन. . . तब कहीं जा कर चार की घंटी बजेगी. कितनी देर थी अभी चार बजने को हां. . . चार. . . बराबर चार. वह घड़ी में चार की घंटी बजने की बाट जोह रही थी. . . कारण. . .कारण कि चार बजे अरुण आने वाला था. . . अरुण, उसका प्रियतम. . . उसके हृदय का हार. . . मन से माना हुआ. . . उसने कहा था कि वह जरूर आयेगा. . . मंगलवार की शाम को. . . चार बजे. . . और आज मंगलवार था।

अभी चार दिन पहले की ही तो बात थी. शाम की शॉपिंग कर के लौट रही थी, तो अचानक पास से गुजरती कार धीमी हो गयी थी और पीछे रुक कर लगातार पों पों किये जा रही थी. उस शोर से घबरा कर जब उसने पीछे देखा था तो. . . उसकी सारी घबराहट खुशी में बदल गयी थी. वह अरुण था. . . अरुण, जिसे सिर्फ उसके हृदय ने ही नहीं, उसके अणु-अणु ने चाहा था. . . रोम-रोम ने चाहा था. कैसे मिल गया अचानक! नहीं तो कहां वह अरुण, जो अपने काम-धंधे के लिए अफ्रीका जा चुका था और उसके नाम-ठाम का कोई पता नहीं था और कहां वह खुद, जिसका अरुण के अफ्रीका चले जाने पर मां-बाप ने अश्विन के साथ विवाह कर दिया था. अश्विन, उसका पति, जो जाहिरा तो उसके तन-मन का स्वामी था, मालिक था, अधिष्ठाता था. . . पर वास्तव में उसके तन का ही मालिक था. . . हृदय का नहीं. . . वह तो केवल अरुण था. . . अरुण. . . जिसे जीवन की पहली बीसी में उसने जी भर कर चाहा था. . . यौवन के प्रांगण में कदम रखते ही जिसे हृदय में भर कर प्यार किया था. अंतर की उमंगों से जिसे सतत स्वीकार किया था. वह रसिया रोमांटिक, सदा हंसता-खिलखिलाता अरुण. . . जिसके संपर्क का एक-एक पल रंगीन बन गया था. . . जिसके सान्निध्य का एक-एक क्षण आह्लादमय हो उठा था. वह था अरुण. और यह अश्विन था कि बिल्कुल शुष्क, हृदयहीन, अरसिक अभी तो और न जाने कितने विशेषण बाकी थे जो उस पर लगाये जा सकते थे. अश्विन के साथ बिताये गये क्षणों में उसे हमेशा अरुण याद आता रहा था और फिर अनजाने ही वह अरुण के साथ अश्विन की तुलना कर जाती थी. कहां राजा भोज, कहां गंगू तेली.

पत्नी के साथ बातें करता तो लगता मानो कोई शिक्षक अपने विद्यार्थी से बातें कर रहा हो. . . दौरे पर जाता तो वहां से ऐसे पत्र लिखता जैसे कोई मुनीम व्यापारिक पत्र लिख रहा हो. . . रोमांस का तो उनमें नामोनिशान तक न होता. . . किसीको पढ़ाऊं भी तो क्या पढ़ाऊं और उधर अरुण के वे रसभरे बोल, उसके पत्रों की याद उसका हृदय झकझोर जाती. और एकांत के ये क्षण. . . शुष्क रूखे. . . रसिक होना तो उसे पसंद ही नहीं था. पर साथ ही भोला भी उतना ही. . . हां. . . उसके चेहरे और और उसकी आंखों में ऐसे भाव होते थे, जिनमें उसके हृदय की निश्छलता और कोमलता के स्पष्ट दर्शन होते थे. स्मिता के हृदय में उसकी कोई जगह नहीं थी पर उसके लिए स्मिता सब कुछ थी. . . एक आदर्श पत्नी. . . आर्य नारी. . . ! स्मिता के मुंह पर एक मार्मिक हंसी आ गयी. उसके एक-दो प्रसंग भी अनायास ही याद हो आये. . .

उस दिन जब वे दोनों साथ घूमने निकले थे तब रास्ते में उसके कालेज का साथी सौमित्र मिल गया था. स्मिता उसे देख हंस पड़ी थी. मुसकरा-मुसकरा कर उससे बातें करने लगी थी. अश्विन जरा दूर खड़ा



सरला भाटिया का जन्म बंबई में हुआ और इन्होंने अर्थशास्त्र में शिक्षा प्राप्त की. इन्हें बचपन से ही साहित्य के प्रति लगाव रहा है लेकिन लेखन पिछले कुछ वर्षों से ही शुरू किया है. इन्होंने नाटक, रेडियो रूपक, लेख और कहानियां लिखी हैं. इस समय एक उपन्यास लिख रही हैं.

रह गया था. जब पास आया तो उसने यह भी नहीं पूछा कि वह कौन था, वह किसके साथ बातें कर रही थी. उलटे स्मिता को ही कहना पड़ा था— अभी मैं जिससे बातें कर रही थी न, वह मेरा मित्र सौमित्र था.

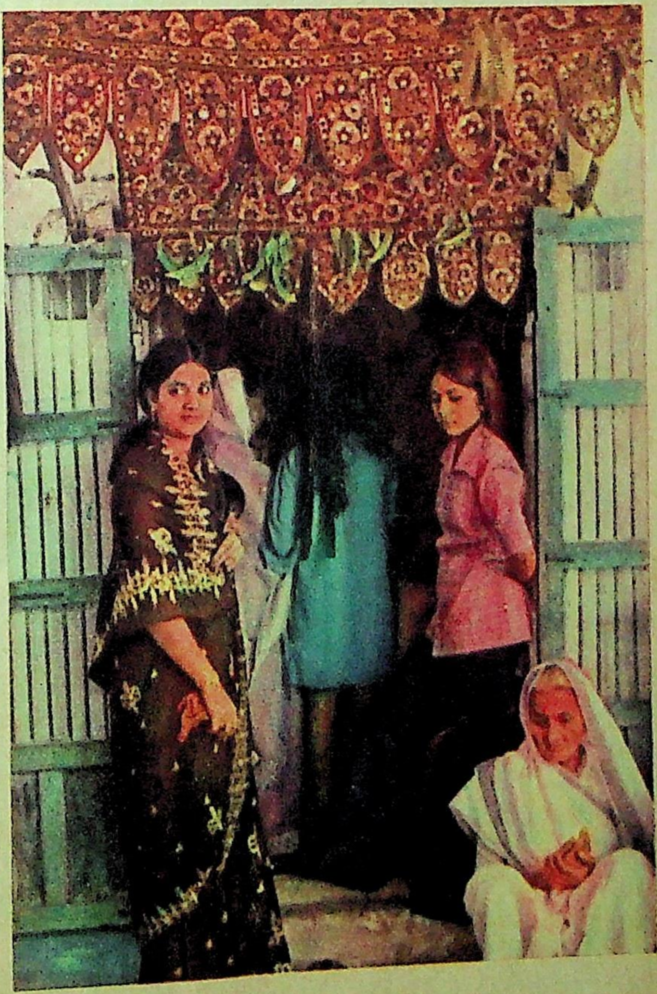
—अच्छा! बस, इतना कह कर वह चुप हो गया था.

स्मिता का मन उससे मजाक करने को हो आया था. बोली थी— क्यों, चुप क्यों रह गये? मुझ पर कोई शंका...

—नहीं, नहीं. तुझ पर शंका... तुझ पर... मेरी स्मिता पर.... जा रे जा, उसकी तो तू केवल मित्र ही होगी, मेरी तो मित्र भी है, मंत्री भी है, भार्या भी है, गृहिणी भी है, अर्द्धांगिनी भी है...तू तो मेरी सर्वस्व है...समझी न? और फिर चुप हो जाने की बारी स्मिता की थी...अब उसे हृदयहीन न कहे तो क्या कहे!

और आफिस से कभी जल्दी आ जाता और स्मिता बाहर गयी होती तो चुपचाप ईजी चेयर पर बैठ कर अखबार पढ़ने लगता था. कहां गयी थी, देर क्यों हो गयी, साग खरीदने में इतनी देर लगती है क्या! ... कोई शंका नहीं...कोई प्रश्न नहीं.

विवाह होने के बाद से अब तक उसे अरुण का कोई पता नहीं था. जैसे-जैसे दिन गुजरते गये, वह अधिक-अधिक याद आने लगा. सूखी खाज को खुजाने की प्रबल इच्छा जैसी इच्छा...और उसने मान लिया था, समझ लिया था कि उसे भुलाया नहीं जा सकेगा... कभी भी नहीं...इस जीवन में तो नहीं ही... जिंदगी की अंतिम श्वासों तक नहीं. उसे लगता, मान लो वह कहीं मिल जाये तो? तो कितना अच्छा हो! उसकी अदृश्य आकांक्षाएं जाग उठतीं. अतृप्त हृदय चीत्कार कर उठता, एक बार...केवल एक बार मिल जाये.



और सचमुच ही वह मिल गया था. चमचमाती हुई लाल फियेट में वह जिस अदा से स्टीयरिंग संभाले था, उसे देख कर वह उस पर न्यौछावर हो गयी थी. वही था. . .वही तो था, उसका प्रियतम. . .

—हलो, मितु. . .कह कर उसने उसे बुलाया था. वर्षों पहले जैसी वही मधुर आवाज, वैसा ही रसभरा स्वर. . .आवाज का वही लहजा. . .आनंद के अतिरेक में वह कुछ बोल भी न पायी थी.

—मितु, क्या मुझे अपने घर आने का निमंत्रण नहीं देगी? क्या डर लग रहा है कि मैं बहुत-सा खा जाऊंगा? पतिदेव से इतना घबराती है? कौन है वह भाग्यवान, बता तो सही. . .स्मिता ने थोथे में उसे सब कुछ बता दिया था.

—अच्छा तो भाई साहब नौकरी करते हैं, ठीक, उनसे मुलाकात तो करवायेगी न! देख, मंगलवार को चार बजे आऊंगा तेरे यहां. पर ए, अपना पता तो बता. अरे, तू बोलती क्यों नहीं?

स्मिता क्या कहती! देवता की आराधना करने वाले भक्त पर देवता प्रसन्न हो जायें और जरूरत से ज्यादा वे दे डालें, कुछ ऐसी ही हालत उसकी भी हो गयी थी. वह उसे कैसे बताये कि उसका हृदय पल-पल उसे ही चाहता रहा था! अंतर के कोने-कोने से हर क्षण उसके नाम की ही पुकार उठती रही थी. उसके रक्त की एक-एक बूंद उसके लिए तरसती रही थी. वह उससे कुछ भी नहीं कह पायी थी. . .कुछ भी नहीं! यह भी नहीं कि उसका पति कल ही काम से बाहर गया हुआ था और कुछ दिनों तक लौटेगा नहीं.

अरुण ने फिर पूछा था—तू कहां रहती है. बता तो सही. नहीं तो तेरी जगह कहीं और ही. . . बोलते-बोलते वह हंसने लगा था और स्मिता को उसके शब्दों में से रसिकता झरती हुई लगी थी. . .

—मैं, मैं यह पोस्ट आफिस की बगल में जो गुलाबी रंग का मकान है न. . . उसने अरुण की ओर देखते हुए कहना शुरू किया था कि अचानक उसकी चमकती हुई दो लोलुप आंखों में उसे अपने पति के चेहरे की वे दो निर्दोष आंखें याद आ गयी थीं. फिर उसके मस्तिष्क में घूमने लगी थी उसकी निश्छलता और कोमलता, याद आने लगा था उसका शुद्ध प्रेम, अगाध विश्वास, अपार श्रद्धा. . .उस गुलाबी मकान के ठीक सामने ग्रे रंग का जो पत्थरिया मकान है, उसमें मैं रहती हूं—चौथी मंजिल पर ब्लाक नं. ४१.

★ ★

और स्मिता ने फिर घड़ी की ओर देखा. दो बज कर पैंतालीस मिनट हुए थे. अभी सवा घंटा बाकी था. यानी कि पचहत्तर मिनट. . .चार हजार पांच सौ सेकंड. . .समय क्यों नहीं बीत रहा है. . .घड़ी इतनी धीमी क्यों चल रही है उसके कांटों पर किसीने मन मन भर के बजन रख दिये हैं क्या?. . .वह सोच रही थी.

स्मिता को लगा था कि अब उसे तैयार हो जाना चाहिए. उसने अलमारी खोली. क्या पहने? हलके ब्लू रंग की साड़ी और पैसा ही ब्लाउज! नहीं. . .यह रंग तो अश्विन की पसंद थी, आज तो वह अरुण की पसंद की ही. . .अरुण को हमेशा गहरा रंग पसंद रहा था. उसने नेवी ब्लू रंग की साड़ी निकाली. यह अरुण का प्रिय रंग था. वह कहता था—गहरे आकाश में चमकती चंद्र रेखा जैसी लगती है तू इस रंग में तो! मुंह पर पाउडर लगाया था, लिपिस्टिक भी गहरे लाल रंग की चुनी थी.

श्रृंगार पूरा हो गया. अब उसे आना ही चाहिए. उसने रास्ते पर देखा. सचमुच वह आ ही रहा था. स्मिता की धड़कन बढ़ गयी थी. वही था, वही तो था. स्मिता की पसंद की मटमैल रंग की शर्ट और काफी रंग की पेंट पहने हुए. वही चाल, चेहरे पर वही भाव. बालकनी में से स्मिता उसे अच्छी तरह देख सकती थी.

अब वह मकान के बहुत नजदीक आ गया था. जीने के मुख्य द्वार में वह प्रवेश कर गया था. अब उसका दिखना बंद हो गया था. स्मिता सोचने लगी थी, अब वह सीढ़ियां चढ़ने लगा होगा. उसने मन-ही-मन गिनना शुरू किया. . .अब वह पहला जीना चढ़ चुका होगा अब दूसरा. . .तीसरा. . .अब चौथा भी चढ़ चुका होगा.

बस. . .अब वह ब्लाक के दरवाजे पर रुक गया होगा. . .नहीं, घंटी नहीं, उसे कुंडी खटखटाने की आदत थी. . .वह कुंडी ही खटखटायेगा. . .

पर वह उठी नहीं थी, जहां थी वहीं बैठी रही. उसने अपनी नजर रास्ते पर से हटा ली और दूर-दूर क्षितिज पर गड़ा दी थी. एकटक . . .

कारण . . .? कारण उसके दरवाजे की घंटी नहीं बजी थी. . .कुंडी नहीं खटकी थी. . .बजनी भी नहीं थी. . .क्योंकि वह तो पोस्ट आफिस के बगल वाले गुलाबी मकान में रहती थी न! □□□

(अनुवाद: महेंद्र झा)

कच्छी लोककथा

भोज • माधुरी शाह

सुथरी गांव का पंच और गांव वाले बैठे-बैठे विचार-विमर्श कर रहे थे कि संवत्सरिक समूह-भोजन में कौन-सी मिठाई बनायी जाये.

कोई कहता "सीरो मनायो" (हलुआ बनाओ), कोई कहता "दूधपाक मनायो" और कोई कहता "सेवूं मनायो" (सेवैयां बनाओ). सात-आठ साल का लड़का बीच में ही बोल उठा—सुतरफेणी जो जेमण कयो. (भोजन में सुतरफेणी बनाओ) उसकी बात सुन सब हंस पड़े.

पांच साल बाद बारह-तेरह वर्ष की उम्र में लड़का कच्छ छोड़ व्यापार के लिए जंगबहार चल पड़ा. बारह वर्ष बाद जब वह सुथरी लौटा तब सिर पर टोकरे रखे मजदूरों की एक लंबी कतार उसके पीछे आ रही थी. दूसरे दिन सारे गांव को उसकी ओर से भोजन का न्यौता था. और भोज में सुतरफेणी बनी थी. □□□

धरती का कलंक

• उमियाशंकर अजाणी

सुबह की हवा ठंडी होने लगी थी. नौ-नौ महीनों का सफर करके लौटी हुई नावें उथले पानी में आड़ी-तिरछी पड़ी हुई थीं, मानो अपने लंबे सफर की थकान मिटा रही हों. मछुए-मल्लाह दौड़ भाग कर रहे थे. समुद्री मार्गों को रौंदने वाले नाविकों तथा नाव के मालिकों और माल के मालिकों के बीच व्यापारिक खुसफुस चल रही थी. मौसम के बदलने के आसार दिखाई देने लगे थे. कीचड़ में धंसी हुई कोटिया, नावडी, गंबीरा, बच्चा, बगला, मंजा, धराव, बतेला, डांगी, फत्तेमारी, घाऊ, जुंगदेगी, ब्रम बगला और न जाने कितने किस्मों की छोटी-बड़ी नावों पर पठानों की निगाहें लगी हुई थीं और वे उनकी पिछले नौ महिने की कमाई का इतिहास खुलवाने का प्रयत्न कर रहे थे. बीमा वाले अपने-अपने हिसाबों में व्यस्त थे और नावों के मालिक अपनी नावों के इधर-उधर भटक जाने पर हुए उस नुकसान को भी बीमा वालों से वसूल लेने की जुगत जुड़ा रहे थे. बीमा-कारकुनों और नाविकों की झड़पों से किनारा गूंज रहा था. ऐसे मौकों पर अगर बात फंस जाती तो मामला जमादार फतेह मुहम्मद के सामने पेश होता और वह उनके कामों और फेरों के मुताबिक अपना फैसला दे देता.

और इस सारे कोलाहल को देखते-देखते अस्सी वर्ष का बूढ़ा हुसैन 'बवारीज' थकता नहीं था. फतेह मुहम्मद की तेज नजरों का अंदाज लेते-लेते वह भूतकाल में खो जाता. कहते हैं कि कच्छ के चारों कोनों पर जमादार के नुकीले भाले गढ़े हुए थे. जिनमें से एक इस किनारे पर था. अपनी इस सीमा के बीच उसने एक जबरदस्त समुद्री काफिला तैयार कर रखा था जिसने तीन-तीन बार अंग्रेजी आरमारों के हमलों को नाकाम कर दिया था. ओखा में देवचंद ने जब समुद्री डाकुओं का दल खड़ा किया तब जमादार की फौज ने ही उसे वहां से भगाया था और कच्छीगढ़ और वालंमा के किनारे उसका बेड़ा यों स्वच्छंद हो कर सागर में विचरने लगा था जैसे कोई मगरमच्छ डोल रहा हो. एक बार फिर बेफिकर हो मल्लाह अपने व्यापारी मार्गों पर आने-जाने लगे थे और समुद्र मस्ती से गूंज उठा था.

'बवारीज' हुसैन! जिसके सिर पर सरकारी इनाम घोषित था. इनाम की घोषणा का पहला परवाना जब फतेह मुहम्मद के पास आया तब उसने किसीकी परवाह किये बिना हुसैन को जीवनदान दे दिया था. पिछले पचास वर्षों से समुद्र के खारे पानी से मुहब्बत करने वाले हुसैन के हृदय पर नमक की तहें जम चुकी थीं. उसने सच्चे मन से सागर के दर्शन किये थे और कच्छ के इस वजीर फतेह मुहम्मद से दोस्ती की थी. औरत के वेश में जब वह निकट के टापू पर चढ़ गया और दिन में ही उसे लूट लाया तो सोती हुई सरकार ने एक बार फिर घोषित इनाम की रकम बढ़ा दी थी. उधर फतेह मुहम्मद के पास सरकारी आदेश आते रहते और इधर हुसैन अपनी पगड़ी की कलंगी को उठाये निश्चिंत मांडवी के किनारे और भुज के बाजार में लहराता रहता.



उमियाशंकर अजाणी (जन्म : २० नवंबर, १९३४, भुज, कच्छ) को साहित्य और इतिहास दोनों के प्रति समान रुचि है. उन्होंने प्रागैतिहासिक संस्कृति को रूपायित किया है. इतिहास-कथाओं के अतिरिक्त इन्होंने सामाजिक कहानियां भी लिखी हैं, जिनमें से कुछ को पुरस्कार भी प्राप्त हुए हैं.

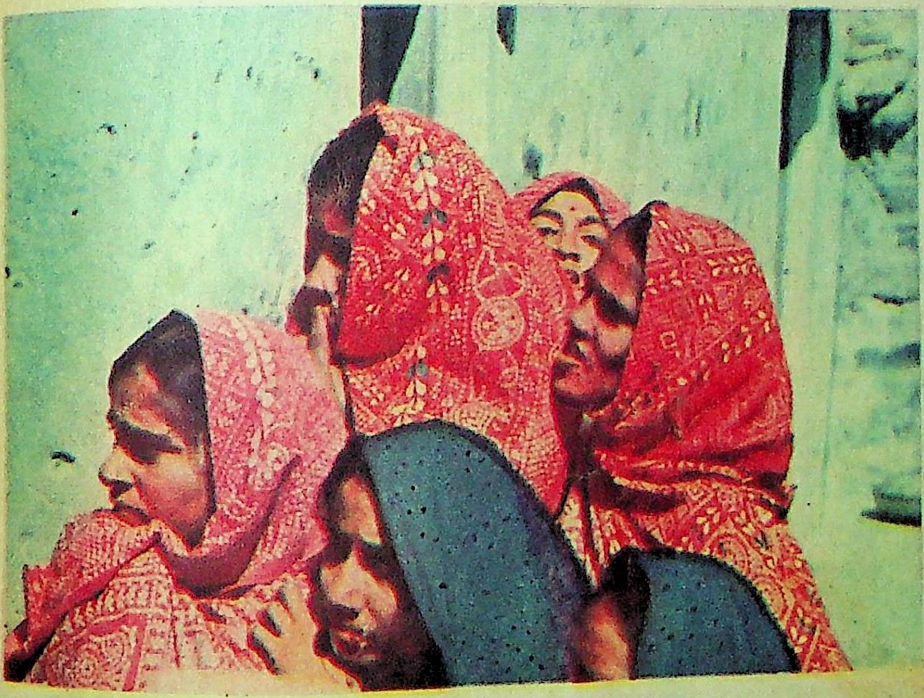
आखिर कंपनी सरकार ने उसे ऊंची पदवी से विभूषित किया—"मासा मेंकार बवारीज."

वृद्ध हुसैन को पुरानी यादें बड़ी मीठी लगीं. जमादार की स्वप्नों जैसी बातों को वह उन दिनों हंसी में उड़ा देता था, पर आज सारे सागर-तट पर मचे हुए कोलाहल में उसे अपना स्वप्न साकार होता हुआ दिखाई दे रहा था. समुद्र का किनारा जिंदा हो उठा था. यह उसकी मेहनत का फल था कि कच्छ के मछुए-मल्लाह बेफिकरी से दूसरे किनारे आ-जा सकते थे.

'जमादार जीता रहे' के नारों से उठते हुए मीठे स्वरों को पीता हुआ हुसैन सांझ की उतरती बेला में अपने घर की तरफ घूमा. उसके थके हुए शरीर में अभी भी सागर का नशा था, जीवन जीने की इच्छा थी. रतनचंद भाटिया और देवा बवारीज जैसे ढीठ छोकरों से आज भी दो-दो हाथ करने की हिम्मत थी. कच्छ के साहस और शौर्य की मूर्ति समादेव झुंझार, देवा घाघल और बलसाड़ के अमोलख देसाई जैसे बहादुरों से दोस्ती करने की आज भी आकांक्षा थी.

एक तरफ अरब के रेगिस्तान की ओर से आती हुई रेती भरी गरम हवा और दूसरी तरफ सागर की भीगी मिट्टी की सोंधी सुगंध, उसके साथ खेल रही थी. उसने एक बार फिर मुड़ कर समुद्र की तरफ देखा. दूर के बीच उसकी काया रम गयी और पांच हाथ के शरीर में डेढ़ हाथ की चौड़ी छाती, सागर में उठती भंवरों जैसी चमकती आंखों, मुंह पर फूटती मसों और लोहे जैसी भुजाओं वाले हुसैन की काया समुद्र के साथ अटपटे खेल खेलने लगी. फिर तो मानो सागर की बूंद-बूंद पर उसका नाम लिख गया हो. कच्छ की खाड़ी से अफ्रीका के दूसरे किनारे तक वह सागर में हिलोरें लेता और कई-कई बार तो ठेठ नौरोज के ३२० वें दिन वापस लौटता. आखिर मौसम की मार से थके शरीर को देख कर लखी को ही हठ करना पड़ा था कि अब एक भी फेरा नहीं करने दूंगी.

पर फेरा नहीं करने देने का मतलब यह तो नहीं था कि अस्सी-अस्सी वर्ष की सागर की प्रीति से रंगीन



समुद्र के देवता रावल पीर की ध्वजा लहरा रही थी. सागर की लहरें मौज में उछालें ले रही थीं. अस्सी वर्ष की उसकी सागर से प्रीत थी. अभी जब वह दस वर्ष का ही था, काका ने उसके हाथों में पतवार संभाल दी थी. चिकने और ऊंचे स्तंभ पर ठेठ ऊपर तक चढ़ जाना और गरम हवा के तूफानों के बीच भी पलक झपकते रस्सी को बांध या खोल आना. . .स्तंभ की ऊंचाई को देख वह कांप उठा था और दूसरे ही पल उसकी पीठ पर जल्लाद के कोड़े के निशान उभर आये थे. उसने काका को आवाज दी थी. पर सुनने वाला वहां कौन था. उसने अपने जीवन की आशा त्याग दी थी... और फिर खारे पानी का सत्य उसकी समझ में ठीक-ठीक आ गया. पीने के पानी के भंडार, पतवारों, लंगरों हुई जिंदगी को वह भूल जाये, सागर के मंदिर का मार्ग वह छोड़ दे! उसके जीवन में भी सागर के भाटे जैसा उतार आ सकता है, यह वह मानने को तैयार ही नहीं था. अपने थकते शरीर पर लखी की यों मीठी नजर पड़ते देख वह प्रफुल्लित हो उठा.

★ ★

समुद्र में ज्वार चढ़ आता तो मछुए-मल्लाहों के टेढ़ी-सीधी पड़ी हुई नावों को दूर समुद्र तक ढकेल देने के शोर से आकाश गूंज उठता. तेज हवा के झोंकों को झेलती हुई उनकी फटी कमीजें नावों के पालों के समान फरफरा उठतीं. सागर के प्रति उनका प्रेम उमड़ पड़ता और तीन-तीन महीनों तक अपनी पत्नियों के साथ उठने-बैठने और प्रीतभरी बातों को भूल कर वे सागर



पहाड़ पर जाने में आप जितना ख़र्च करेंगे
उतने में ही विदेश में छुट्टियाँ बिताइये
मॉरिशस.
अब विदेश में छुट्टियाँ बिताना पहले से कहीं आसान है. और सच पूछिये तो इसका ख़र्च भारत के किसी भी अच्छे पहाड़ी स्थान पर जाने के मुक़ाबले कम ही पड़ता है.
स्वप्नमधुर छुट्टियाँ
विशाल फूलों और ख़ूबसूरत झरनों से शोभित तथा जिन्दगी की मस्ती बिखेरता एक स्वप्निल टापू है मॉरिशस.
यहाँ आप पायेंगे जगप्रसिद्ध ख़ूबसूरत समुद्रतट.
यहाँ धूप-स्नान का मजा लीजिये, या जी भर कर तैरिये या फिर बिकनी में सजी सुंदरियों को घूमते हुए देखिए.
दोपहर बाद ख़रीदी कीजिये और शाम कैसिनो में बिताइये. और अगर आप खेल-कूद के रसिया हैं तो नौका विहार कीजिये, वाटर स्कीइंग कीजिये, गोल्फ़ खेलिये या फिर मछली मारने का आनंद उठाइये और संसार की सबसे बड़ी ब्लू मार्लिन मछली का शिकार कीजिये. वैसे आप घुड़दौड़ में शामिल हो सकते हैं, हिरनों के शिकार पर जा सकते हैं, या डीप सी डाइविंग का मज़ा ले सकते हैं. लेकिन यह इस बात पर निर्भर है कि आपने छुट्टियाँ बिताने के लिये साल का कौन सा समय चुना है.
कम से कम ख़ानापूरी
पिछले तीन वर्षों के बीच अगर आप विदेश जा चुके हैं तो भी मॉरिशस जाने के लिये आपको न तो पी फ़ॉर्म की जरूरत पड़ती है और न पासपोर्ट एन्डोर्समेंट या वीसा की. ख़र्च के लिये आप बिना रिज़र्व बैंक गये अपने साथ १०० डॉलर तक ले सकते हैं.
सारी कागजी कार्रवाई एयर-इंडिया खुद आपके लिये पूरी कर देती है.
और ख़र्च इतना कम कि सहसा विश्वास नहीं हो
मॉरिशस में छुट्टियाँ बिताते समय आप अत्यधिक आरामदायक होटलों में ठहरिये या पूरा कॉटेज किराये पर लीजिये — फिर भी दूसरी जगह के अच्छे शानदार होटलों के मुक़ाबले किराया कम ही पड़ता है.
और अगर आप चार या अधिक यात्रियों की मंडली बनाकर जायें तो एयर-इंडिया आपको ज़ोरदार छूट देने को तैयार है.
एयर-इंडिया के ख़ास एक्सकर्सन फ़ेयर के अन्तर्गत एक यात्री को भी भारी छूट मिल सकती है. या फिर संपूर्ण ख़र्च सहित दिलचस्प मंडली में छुट्टियाँ बिताने का सुयोग बैठाने के लिये अपने ट्रैवल एजेन्ट को कहिये.
एयर-इंडिया
सप्ताह में दो बार
सीधे मॉरिशस
AI-7641

से प्रीत जोड़ने चल देते और यह बात भी कि नौ महीनों तक अपनी पत्नियों से मिलना नहीं हो सकेगा, उन्हें रोक नहीं पातीं. उन्हें लगने लगता कि सागर में खारा पानी नहीं, मानो अमृत भरा हो, और वे उसे रौंदने निकल पड़ते.

विचारों में मग्न हुसैन अपने घर की ओर चलता जा रहा था. पश्चिम दिशा में क्षितिज का तारा खूब ऊंचे चढ़ आया था. अंधकार छा चुका था.

झोपड़ी के दरवाजे के बीच खड़ी लखी अंधेरे में आंखें गड़ाए हुए अपने पति हुसैन की राह जोह रही थी. बीस वर्ष का उसका जवान पुत्र सागर के अटपटे खेलों को खेलने गया हुआ था और उसका बाप यों पागल हुआ घूमता-फिरता था. उसकी जान की तो मानो दोनों में से किसीको भी परवाह नहीं थी. अंडी के तेल के दिये के हलके प्रकाश से बनी अपनी लंबी छाया को देखती हुई वह अपने पति के खयालों में खोयी हुई थी. सागर की लौटती हुई तरंगें अब उसे आनंद नहीं देती थीं ...किनारे पर उठते शोर से वह घबरा उठती थी ...संभाल वेली संभाल....वांइयां जुसां वाइयां ...के उठते स्वर मानो अब उसे ही संभलने की चेतावनी देने लगे थे.

अपनी तीन चौथाई जिंदगी वह सागर की तरफ आंखें गड़ाये हुए गुजार चुकी थी. इस विचार से ही उसका मन अब कांप उठा था.

अचानक किसी के निश्वास भरे हलके कदमों की आहट उसके कानों में पड़ी. उसकी नजर दूर तक घूम गयी.

दूर से आवाज आयी—हुसैन मां!

—कौन है?

—मैं रतन बाई ...हुसैन भाई नहीं हैं!

—क्यों? ...आते ही होंगे ...पर अगर उस किनारे की तरफ निकल गये हुए तो फिर तो भरोसा ही क्या, रतन बाई ...!

रतनबाई! उसके पति के दुश्मन की घरवाली के विचारों में भटकती लखी की आंखों के सामने वर्षों पहले का समय घूम गया—जीवन ठक्कर! दुश्मन से टक्कर लेने को तैयार किसी जंगली जानवर की जलती हुई आंखों जैसी आंखें, भैंसे जैसा विकराल चेहरा, और उसके पति का जनम-जनम का दुश्मन——जीवन ठक्कर! और आज उसकी घरवाली उसके पति को पूछ रही है! जिंदे लोगों को गुलाम बना कर बेचना, पकड़ना और संभालना जीवन ठक्कर का व्यापार था और उन गुलामों को छुड़ाना, उन्हें लाद कर समुद्र की छाती पर बहने वाले जहाजों को लूट लेना और गुलामों को स्वतंत्र कर देना, हुसैन का धंधा था. डाकुओं के बीच हुसैन की ख्याति 'दूज के चांद' के रूप में फैल चुकी थी ...इस हुसैन ने, कच्छ की खाड़ी से अरब सागर होते हुए हिंद महासागर तक के सभी हिंदू-मुसलमानों और अंग्रेज-फ्रांसीसियों के दोस्त जीवन ठक्कर के व्यापार का सत्यानाश कर दिया था. पश्चिम घराने के दो-दो हजार मछुए जब विदेशी बरछों से गुलामों को टोंचा करते तब यह जीवन ठक्कर उन परदेसियों की सेवा-टहल किया करता था. भूतकाल की बातों को समय ने भुला दिया था ...आज तो जीवन ठक्कर दाने-दाने के लिए भी मोहताज हो चुका था. पर हुसैन का वह पहले जैसा ही दुश्मन था. उसकी पत्नी हुसैन को क्यों पूछ रही है, यह लखी की समझ में नहीं आ पाया. उसने पूछा— किस काम से आयी है, रतनबाई?"

—पूछ मत मेरी बहन, कहती हुई रतनबाई लखी के पैरों पर गिर पड़ी. आंखें पोंछते हुए, सुबकियां लेते हुए वह बोली— आज तीन दिन से ...

अपने आंगन में किसीकी सुबकियां सुन कर धीमी चाल से चला आता हुसैन अचानक दौड़ पड़ा. उसने देखा कि कोई स्त्री लखी के पैर पकड़ कर रो रही है.

—कौन है? हुसैन ने पूछा.

—हुसैन, हुसैन. कहती हुई रतनबाई आगे बढ़ी.

—यह रतन है, मा जीवन की बहू लखी ने सारी बात साफ की.

—हां, पहचाना, हुसैन की आवाज एकदम ठंडी थी.

सुबकियां भरती हुई रतन ने हुसैन के चेहरे की तरफ देखा. वहां न हंसी थी न रंज, न आनंद था, न शोक. अफाट समुद्र की सीमा की तरफ वह टकटकी लगाये देख रहा था. समुद्र में आये ज्वार का कोलाहल अभी तक उसके कानों में समाया हुआ था. सागर में ज्वार आते ही कुछ नावें दूसरे किनारे के लिए कूच करने वाली थीं. उठते कोलाहल से पता चल रहा था कि तैयारियां पूरी हो चुकी होंगी ...और यहां रतनबाई उसके सामने खड़ी थी.

—पुरानी बातें भूल जा, हुसैन मा ...रतन ने कुछ कहने के प्रयत्न में अपनी आंखें उसके चेहरे पर गड़ायीं.

पर हुसैन तो मानो कुछ सुन ही नहीं रहा था.

रुआंसी आवाज में रतन बोली—मेरी बेटी, हुसैन मा!

—तेरी बेटी! कौन है तेरी बेटी? हुसैन की वाणी में रोष भर आया था.

—उसे बोलने दे हुसैन, लखी ने उसे टोका और रतन की तरफ मुखातिब हुई, जरा भी घबरा मत बहन. बता क्या हुआ है तेरी बेटी को?"

—बेटी मेरे पेट की भले ही न हो, पर हुसैन मा, वह मेरी है. सागर के दूसरे किनारे पर वह मुझे मिली थी और मैंने उसे अपनी बेटी ही माना है. आज सत्रह वर्षों से मैं उस रेवी की मां हूं ..."

हुसैन अभी तक बेन-सा था, मानो कुछ सुन ही नहीं रहा हो.

—तू आगे बोल, रतन, लखी ने कहा.

—बोलूं क्या. हुसैन मा सुनें तब न! मेरी वह बेटी आज तीन दिन से गायब है. उसका कोई पता नहीं है. मुझे उसका पता चाहिए.

—तुझे उसका पता चाहिए! हुसैन बोला. रतन बाई, समुद्र की बूंद-बूंद तेरे पति की आवाज से थर्राती है, और तू कहती है कि तुझे अपनी बेटी . . .

—बस कर हुसैन! लखी चीख पड़ी.

और पलभर रतनबाई उन दोनों को देखती रह गयी.

—हुसैन मा, खबर है कि लड़की को डाकू उठा ले गये हैं, उसे तेरे सिवा और कोई नहीं छुड़ा सकता मेरे बाप !

—रतनबाई, जा शांति से नींद ले, हुसैन तेरी बेटी का पता ढूंढ़ लायेगा . . . जा . . . लखी बोली.

और हुसैन फटी-फटी आंखों से लखी की तरफ देखता रह गया कि वह क्या कह रही है.

रतन लखी के पैरों पर गिर पड़ी, रुंधे गले से वह कुछ बोल नहीं पा रही थी. घर से चली थी, तब उसे जीवन के साथ झगड़ा करना पड़ गया था. जीवन ने स्वीकार किया था कि हुसैन के सिवाय उसे कोई नहीं बचा सकता ! पर हुसैन उसका दुश्मन था . . . जनम-जनम का बैरी था . . .

रतन लौटी तो बेटी की उसे जरा भी चिंता नहीं हो रही थी.

घर की तरफ लौटती रतन की पीठ की तरफ ताकती हुसैन की आंखों से चिनगारियां-सी निकल रही थीं. उसके नन्हें से दिल में से निकल कर शिराओं में जाता हुआ गरम खून उसकी नस-नस को जलाये दे रहा था.

—धीरज रख मेरे मालिक मैंने भी तेरे साथ पचास वर्ष गुजारे हैं . . .

—पर . . .

—क्या सागर का सत तेरे शरीर से निकल चुका है हुसैन? तू यह कहना चाहता है न कि वह दुश्मन की बेटी है पर . . . पर मैंने उससे 'हां' कहा है, क्योंकि मुझे भरोसा था कि मेरे रवैये ने जब सारी जिंदगी ही गुलामों को दुश्मनों के पंजों से छुड़ाने में लगा दी तो वह एक लड़की को मात्र दुश्मन की बेटी होने के कारण नहीं छोड़ देगा. अरे, दुश्मन तो जीवन ठक्कर है न! उसकी पत्नी या बेटी तो नहीं! . . .

लखी के ऊपर आया हुआ हुसैन का रोष पिघल गया. उसने मजाक में ही उसे जुहार की और उसके मुंह की तरफ देखा. फिर हंसता-हंसता बाहर निकल गया.

★ ★

आधी रात को नाविकों और मल्लाहों के होहल्ले से किनारा गूंज उठा. हुसैन के साथी 'लखमी पसा' को तैयार करने लगे. पतवारें संभाल ली गयीं. रस्से खोले बांधे जाने लगे.

हुसैन तब तक कस्टम की चुंगी पर हो आया. आते-आते लखी को आखिरी जुहार भी करता आया था. 'लखमी पसा' का साज सज गया था. उसने लकड़ी की एक बल्ली का सहारा ले 'लखमी पसा' को जरा टेढ़ा किया. पाल में भरी हुई हवा ने उसे मदद की 'लखमी पसा' एक ओर को झुक गया. फिर साथियों ने हाथ लगाया और धक्का देते उसे वे सागर में ढकेलते चले गये.

तड़का होने लगा था. तारे बुझने लगे तो हुसैन ने लंगर उठाने की आवाज लगाई.

कड़ . . . कन्ऱ्ऱ् . . . कड्ड्ड् . . . कर् . . . कर् सूना किनारा गूंज उठा. हुसैन ने कमान संभाली और 'लखमी-पसा' के डेक पर इकट्ठे उसके साथियों ने लहरों की टक्कर की आवाज से आवाज मिलाते हुए चारों किनारों को हिला दिया. रावलपीर की जय के नारे लगे, नारियल फोड़े गये और 'लखमी पसा' कुलाचें भरने लगा.

खाड़ी में हिचकोले लेते-लेते वह महासागर में आ पहुंचा और मानो उसकी छाती पर नाचने लगा. उगते सूर्य की सुनहरी किरणें पानी पर गिरने लगी थीं और 'लखमी पसा' उनके प्रकाश में दमकने लगा था.

'लखमी पसा' यों आप ही भागता जा रहा था जैसे पीछे से हवा उसे ठेल रही हो. हुसैन की नजरें सागर की सीमा पर लगी हुई थीं. उसके साथी उसे उत्साह दिला रहे थे—

—संभाल बेली संभाल! डामचीयो मासा! कंधे कंधे . . . संभाल !" लखमी पसा" में तीर की सी तेजी आ गयी थी. मछुओं का गीत आगे बढ़ा— ये कुवा-थम नेत्रे त्रिकोण सढ़ वहाणवाणो दसाजे मडुई . . . ने कोटीयो कच्छजो ! समाल बेली . . . !"

क्षितिज पर लगी नजरों के बीच अचानक एक नाव आ समायी. उस पर फहराती ध्वजा कह रही थी कि वह कुछ सामान ले कर फेरी करने निकली है. 'लखमी पसा' ने फिर भी उसका पीछा किया.

उस नाव के कप्तान ने अपना पीछा करती हुई इस नाव को परखा. उस पर से उठ रहे गाने के स्वरों को जांचा. और फिर उसके कान में आवाज पड़ी—गुलामों को कहां लिये जा रहा है, साले?

मेरी नाव में गुलाम, एक बार तो मल्लाहों का मुखिया चौंका. दूसरे ही क्षण उसने लंगर डाल दिया और घबराते हुए यात्रियों को हिम्मत बंधाने लगा—अरे, यह तो भा हुसैन की नाव है !

हुसैन उस नाव पर उतर गया. ऊपर-नीचे सारी नाव उसने देख डाली छोटे-मोटे सामान के अलावा उसमें और कुछ भी नहीं था.

'लखमी पसा' ने मुंह फेरा और चल दिया.

पानी में उठने वाली भंवरों के समान आसमान से अंधकार उतर कर सागर के पानी को चूमने लगा. लहरों की मौज भरी आवाजें मस्ती का आलम बिखेरने लगीं. अंधकार गहराता गया और पानी को काटता हुआ 'लखमी पसा' पानी में पड़ते हुए अपने ही प्रतिबिंब से खेलता हुआ आगे बढ़ने लगा.

सारी रात निकल गयी. तीसरे दिन बड़े सबेरे मल्लाहों की पहली आवाज ने हुसैन को आगाह किया सागर में दूर कोई परदेसी जहाज दिखाई दे रहा था. पांच पालों का वह 'फत्तेमारी' जहाज तेज गति से भाग रहा था. हुसैन ने 'लखमी पसा' की गति बढ़ाई नीचे हल में बंधी हुई लोहे की सांकले यों हिल उठी मानो कोई जल-चर पीछा कर रहा हो.

सारा दिन और फिर सारी रात बीत गयी. अगली सुबह वह उसके बहुत पास पहुंच गया. उस जहाज की गति बढ़ाने का असफल प्रयास करते देख हुसैन ने उन्हें ललकारा. मल्लाहों ने उसका साथ दिया और जहाज की चाल बदली. जहाज पर से एक गोला छूटा और पानी में जा गिरा. दूसरा गोला छूटा. एक चक्कर लगा कर हुसैन ने 'लखमी पसा' को बायीं ओर झुका दिया और फिर वह यों आगे पीछे घूमने लगा जैसे सांतिया (स्वस्तिक) पूर रहा हो.

सौ हाथ का एक बड़ा-सा चक्कर लगा कर 'लखमी-पसा' उस परदेसी जहाज के सहारे जा लगा. और फिर हुसैन ने निशाना ताका तो एक ही धड़ाके से सारा जहाज कांप उठा. दूसरे ही पल में उसका स्तंभ टूट कर गिर पड़ा.

पर जहाज रुका नहीं. वह भागने की बेकार कोशिश करता रहा. हुसैन समझ गया कि वह ऐसे नहीं रुकेगा. उसकी कमान शैतान फिरंगियों के हाथ में थी न! उसने अपना जहाज बायीं ओर घुमाया और एक निशाना और दागा.

अचानक मौत जैसी चीख उठी और सागर में समा गयी. जहाज टेढ़ा हो गया था और समुद्र का पानी उसमें घुसने लगा था. उसे डूबने से बचाने के लिए हुसैन ने रस्सों के बड़े-बड़े फंदे फेंके और उसे जकड़ लिया.जहाज के 'डेक' पर कितनी ही लाशें फड़फड़ा रही थीं. खून ही खून फैल रहा था.

हुसैन ने छलांग लगायी और उस जहाज पर कूद गया. खून से रंगे जहाज को देख कर एक बार तो वह कांप गया, पर दूसरे ही क्षण उसके खंभे को संभाल लिया वह जहाज के गमारे (गर्म गृह) में उतर गया गुलाब की कली जैसी दो मासूम लड़कियां फर्श पर पड़ी थीं. उनके चेहरे पर घड़ी भर पहले की लाचारी के चिन्ह थे, वेदना थी. माथे पर जख्म था, शरीर पर मार के निशान थे, गालों पर आंसू सूख चुके थे . . . घड़ी भर पहले ही गुलाब की खिलती हुई कली जैसी रेवी अत्याचार का भोग बन चुकी थी. समुद्र के शैतान उसकी जिंदगी से खेल चुके थे. हुसैन का कठोर दिल भी विलाप कर उठा. सारा सागर ही मानो रो पड़ा.

इतने में इब्राहीम की आवाज आयी. हुसैन ने उस तरफ देखा. एक हाथ में कागजातों भरी एक छोटी-सी थैली और दूसरे हाथ से एक फिरंगी का कान पकड़े वह पीछे खड़ा था. फिरंगी को सामने देख हुसैन की आंखों में खून उतर आया और उसने उसके गाल पर एक चांटा जमा दिया.

—कागजातों भरी यह थैली मिली है. इसमें तरह-तरह की हुंडियां भरी हुई हैं. जीवन भा का लिखा हुआ एक कागज भी है . . .

—जीवन भा का—

—हां जीवन ने रेवी को बेच दिया है!

—क्या? . . .

—हां, पांच सौ कौड़ियों में . . कुल पांच सौ में . . .

चार-छह पंक्तियों के उस कागज को देख कर उसका पत्थर-सा कलेजा भी चूर-चूर हो गया. उसने नाव की दीवार पकड़ ली—उसके साथियों ने उसे पकड़ लिया पर हुसैन बेहोश हो चुका था.

फिरंगियों के जहाज को रोके हुए रस्सों को काट दिया गया और वह सागर के पेट में समा गया. 'लखमी-पसा' ने दिशा बदली और वापसी सफर पर चल दिया. जहाज के किनारे पर से सागर के पानी में न जाने क्या ताकता हुआ हुसैन मुर्दे के समान खड़ा था.

* *

अगली सुबह लखमी पसा ने लंगर डाला. कागज का टुकड़ा संभाले हुसैन नीचे उतरा. सागर किनारे की रेत पर कदम गड़ाते हुए वह रतनबाई के घर की तरफ बढ़ा.

आंगन में पैर रखते ही उसने रतनबाई को आवाज मारी.

सामने ही बैठी रतनबाई ने हुसैन को देखा तो छलांग लगाती हुई उसके निकट जा पहुंची—हुसैन भा, मेरा बाप . . .

—रतनबाई, मैं रेवी का पता ले आया हूं.

एक पल, केवल एक पल के लिए वातावरण सुगंधित हो उठा. मीठी कल्पनाओं में खोये बैठे जीवन ने लखमी पसा के लौट आने की खबर सुनी तो उसने खिड़की में कान लगा दिये.

—कहां है, कहां है, मेरे बाप . . . मेरी बेटी, मेरी रेवी . . . और हर्ष के अतिरेक में वह हुसैन की तरफ एक टक देखती रह गयी.

—यह रही, कह कर हुसैन ने अपनी जेब से कागज का वह टुकड़ा निकाला और रतनबाई की तरफ बढ़ा दिया. जीवन की आंखें अंधेरे में न जाने क्या-क्या कल्पनाएं करने लगीं . . .

—हुसैन भा . . . रतनबाई ने कातर हो कर कहा. जीवन को लगा कि रतनबाई हुसैन का आभार मान रही है . . .

—रतनबाई तुम पढ़ सकती हो? नहीं, तो इसमें लिखा है, जीवन भा ने लिखा है . . . "मैंने रेवी को पांच सौ कौड़ियों में बेच दिया है . . ." और कागज का टुकड़ा उसके हाथ में थमा कर हुसैन बाहर निकल गया. आंगन के बाहर कदम रखते ही उसे ऐसी आवाज आयी जैसे कोई पीछे गिर पड़ा हो.

पिछले कमरे में छिपा बैठा जीवन फटी-फटी आंखों से अंधेरे में देख रहा था . . . उसकी युक्ति नाकाम रही थी. हुसैन बच गया था . . . ! और . .

धरती पर अंधेरा छाने लगा था . . . लड़की की मां जमीन पर सिर पटक-पटक कर रो रही थी. □□□

(अनुवाद : महेंद्र भा)

मामैदेव • मूलराज रूपारेल

जूनागढ़ के रा नवघण के साथ चौपड़ खेलते-खेलते मामैदेव उठ खड़े हुए तो रा ने पूछा—क्यों-क्यों, देव, उठ क्यों खड़े हुए?

—अब खेल में मन नहीं लग रहा है.

—क्यों, मुझे बताने में आपत्ति है?

—आपत्ति तो नहीं, किंतु मैं बताना नहीं चाहता था. मेरा मारनेवाला आज आपके वंश में जन्म ले चुका है.

—ऐसा कैसे हो सकता है. . .

—होनहार हो कर ही रहता है.

* *

रा नवघण के समा वंश में जन्मने वाले जामनंदा के हाथ स्वयं की मौत होनेवाली है, यह बात देव को कई वर्ष पहले ही मालूम थी. अगला दिन उनके जीवन का आखिरी दिन था. किंतु इसके बावजूद जामनंदा का आज तक का व्यवहार उनके साथ इतना भला रहता आया था कि उन्हें स्वयं पर ही संदेह होने लगा था.

वर्षों पहले सिंध के रूमशाल नाम के गांव में उनके पूर्वज रहते थे. विद्वान, शास्त्रपारंगत और त्रिकालदर्शी की ख्याति पाये हुए उनके परदादा के पांच पुत्र थे. उनकी मृत्यु के बाद लड़-झगड़ कर उन्होंने पिता की इज्जत को धूल में मिला दिया. पांचों भाइयों में जो सबसे छोटा था, वह समझदार था. पिता द्वारा जीवन भर तैयार किये गये त्रिकालदर्शी ग्रंथों को ले कर वह निकल भागा, अन्य भाई उसकी जान के प्यासे हो उसके पीछे लग गये.

नगरसमे में प्रवेश करते ही जो घर सामने पड़ा, उसने उसकी सांकल खटखटायी. घर मेघवाण हरिजन का था जिसमें एक वृद्ध मेघवाण अपनी युवा बेटी के साथ रहा करता था. जल्दी-जल्दी में अपनी बात कह कर उसने आश्रय लिया.

इतने में ही उसके भाई भी आ पहुंचे. होशियारी से काम ले कर मेघवाण ने अपनी बेटी को तुरंत भीतर के कमरे में धकेल कर बैठक का दरवाजा खोला. दरवाजा खुलते ही एक भाई ने पूछा कि यहां कोई आया था तो उसने कहा—भीतर कमरे में मेरा दामाद तथा बेटी सो रहे हैं. यह बात हो ही रही थी कि तभी भीतर से मेघवाण की बेटी ने आवाज दी—कौन है जो इस बात वक्त शोर मचा रहा है, क्या काम है? ये तो सो गये हैं.

बाप-बेटी की बात सुनकर चारों भाई चुपचाप लौट गये.

उसके बाद उस ब्राह्मण ने उस कन्या से ब्याह कर लिया. धर्मध्यान, क्रियाकांड में व्यस्त रहनेवाला वह जिज्ञासु पिता द्वारा रचित सभी ग्रंथों का अध्ययन करता रहा. कुछ समय उपरांत उसे एक पुत्र रत्न हुआ. यह पुत्र था मामैदेव का दादा मातंग देव.

मातंगदेव का पुत्र हुआ माते. इसका पुत्र हुआ स्वयं मामै. . . तो उत्तराधिकार में मिली यह विद्या कभी गलत साबित नहीं हुई थी. कल क्या होगा . . . .

किंतु दूसरे दिन जो होना था, हो कर रहा. मामैदेव को निश्चय था कि उसकी मृत्यु आज ही होगी और वह भी जामनंदा के हाथों अतएव वह स्वयं उससे मिलने निकल पड़ा.

जाम ने उसका पूरा-पूरा सत्कार कर के बैठाया. बातों के उपरांत जामनंदा ने कहा—मामा, आपने तो कई लोगों को चमत्कार दिखलाये हैं, मुझे भी दिखलाइए न?

मामैदेव को लगा कि कहीं जाम इसी बहाने तो उसे मार नहीं डालना चाहता अतएव बोले—क्या देखना चाहते हो, बोलो?

—मैं तो जवान व्यक्ति हूं. कोई ऐसा चमत्कार दिखलाइए कि तबीयत फड़क उठे.

—तो, मेरे पैर पर मस्तक रख आंखें मींच लो.

जामनंदा ने वैसा ही किया तो कल्पना से परे एक दृश्य उसकी आंखों के सामने घूमने लगा. . . . दिल्ली के बादशाह के महल के विशाल स्नानागार का दृश्य. . . . उसमें स्नान करती हुई इंद्रलोक की असप्राओं जैसी उसकी बेगमें. कब तक वह यह दृश्य देखता रहा, उसे होश नहीं था. होश तब आया जब मामा ने अपना पैर पीछे खींच लिया.

दूसरे ही क्षण उसके मन में एक विचार कौंध आया. कि मामा ने आज वस्त्ररहित बेगमों को मुझे दिखलाया, कल मेरी रानियों को यह दूसरों को दिखलाये नहीं, इसका क्या भरोसा!

इतने में ही उसका सेवक आ पहुंचा जो उसकी तलवार पर धार कराने ले गया था. तलवार हाथ में ले धार का निरीक्षण करते-करते पलक झपते ही उसने उसका एक भरपूर वार मामैदेव की गर्दन पर किया. मामैदेव का मस्तक धड़ से अलग हो गया, किंतु मामैदेव ने उठ कर उसे हाथ में ले लिया. और वह मस्तक बोलने लगा जिसका आशय था कि जामनंदा के बाद ही उसके कुल का विनाश हो जायेगा.

देव के कथनानुसार जाम अंधा हो गया और उसके बाद मुसलमानों ने सिंध पर कब्जा कर लिया. आज भी कच्छ के आंगडाई गांव के चंदारिमा टीले पर मामैदेव का स्थान है. चैत्र सुदी आठम को हरिजन भाई इसकी पूजा करते हैं.

□□□

(अनुवाद : अलका सिंह)

विश्वास का व्यापारी

• मूलराज रूपारेल

बहुत वर्षों पूर्व की बात नहीं है, एक व्यापारी था. नाम था मनजी ठक्कर. खाता-पीता, मस्त, सुखी जीवन था उसका. साल भर में काफी कुछ कमा लेता था. इन सब के बावजूद वह भक्त था तो, 'माधव राव' जी का. रोज सुबह-शाम मंदिर जाने का उसका नित्यप्रति नियम था. धंधा वह एक कुशल व्यापारी की तरह करता था किंतु उसे सच्ची शांति और सुख मिलता था मंदिर जा 'माधव राव' के दर्शन करने में.

मांगने आनेवालों में से कोई खाली हाथ न लौटे, और अगर किसी को जाना पड़ता था तो उसका हृदय दुख से चीत्कार कर उठता.

अकसर किसी मांगनेवाले को देख कर लोग मजाक में कहते, 'उधर जाओ, वह 'माधव राव' की पेढ़ी है, वहां मिलेगा. वह सुन कर हंस देता. 'हां भई, यह सब कुछ उन्हीं का तो है.' कोई खाना मांगने आता, कोई तन का वस्त्र या कोई तीर्थयात्रा के लिए राहखर्च.

एक बार व्यापार में उसे काफी नुकसान हुआ. उसने हिम्मत न हार कर दुबारा पूंजी लगा कर नुकसान पूरा करने का प्रयत्न किया किंतु दुर्भाग्य से उसे पुनः मार खानी पड़ी. उसने एक बार फिर 'माधवराव' जी का नाम ले दांव लगाया किंतु हर तरफ से उसका भाग्य खोटा था. मनुष्य पर से तो विश्वास उठ जाना स्वाभाविक है किंतु 'माधवराव' जी पर से भी उसका विश्वास उठ गया. उसने जो धंधा किया था, उसमें नुकसान के अवसर कम ही थे, किंतु दगा तो उसे उसके साझीदार ने दिया था.

उसने अपना घर बेच दिया, गहने बेच दिये, बखार बेच दी, दूकान बेच दी, जो कुछ था सब बेच डाला, एक-एक बर्तन तक. किंतु इसका उसे बिल्कुल रंज न था, रंज था तो इस बात का सब कुछ खत्म कर देने के बावजूद भी उस पर अभी एक कर्ज' बाकी रह गया था.

एक दिन भरे बाजार में लेनदारों ने उसकी इज्जत नीलाम की, कहे या सुने न जा सकने वाले शब्द कहे, कभी उसे कल्पना भी न थी, वैसा बर्ताव किया उसके साथ. किसी तरह उनसे छूट कर गिरता-पड़ता वह सीधे 'माधवराव' जी के मंदिर गया. चाहे जो हो जाये किंतु हर परिस्थिति में हिमालय की तरह अडिग विश्वास तथा पवित्र हृदय वाले इस आदमी के सब्र का बांध टूट चुका था.

वह माधवरावजी की मूर्ति के समक्ष हिचकियां ले-ले कर रो रहा था, उनके चरणों में माथा पटक रहा था, और कह रहा था— प्रभो, तुम्हारे ऊपर विश्वास रखने का यह परिणाम? ऐसा दिन दिखाया तुमने? मेरी यह स्थिति देख कर भी पसीजे नहीं आप?

मूर्ति में संवेदनशीलता होती, तब तो पसीजती. वह क्या जवाब देती?

धीरे-धीरे सबने उसका यह विलाप देखा, उन्हें लगा इस तरह से माथा पटक-पटक कर तो यह अपनी जान दे देगा या पागल हो जायेगा.

गांव के दो-चार अच्छे व्यापारियों ने उसके लेनदारों को खूब बुरा-भला कहा, जिनकी वजह से उसकी यह हालत हो गयी थी. वे उसके पास गये, उसे शांति से समझाया, हौसला दिया तथा घर वापस चलने के लिए मिन्नतें कीं. लोगों का कहना मान कर वह घर तो लौट आया किंतु रात भर उसे नींद नहीं आयी. बार-बार यह विचार उसे कोंचता, 'माधव राव' को जरा भी दया मुझ पर नहीं आयी?

अफसोस में किस तरह रात कट गयी और सुबह हो गयी, उसे पता भी न चला. दातुन करने वह बरांडे में लोटा लिये हुए बैठ गया. इतने में सामने से एक लेनदार आता हुआ दिखाई पड़ा. सुबह के वक्त लेनदार का मुंह देख कर वह घबड़ा उठा. उसे लगा, वह अभी चक्कर खा कर ढुलक जायेगा.

लेनदार ने उसके समीप आ कर पहले तो अपने उस बर्ताव की उससे माफी मांगी, फिर बोला— सेठजी, कर्ज की रकम आपने पूरी की पूरी भेज दी, इसके लिए आप को धन्यवाद, किंतु आपने ये पांच सिक्के घिसे हुए भेजे थे. इन्हें लाया हूं, कृपा कर आप इनके बदले दूसरे भिजवा देना.

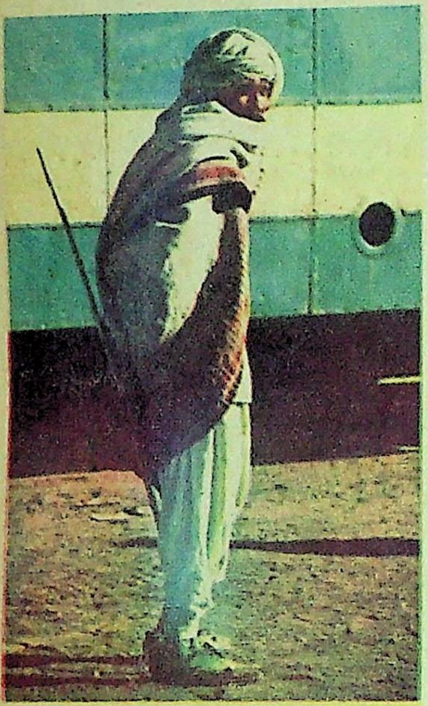
फटी आंखों से वह यह सब देखता रह गया. यह क्या माजरा है उसकी समझ में ही नहीं आया. उसने तो किसी को रुपये भरने भेजा ही नहीं था फिर किसने. . . . ? 'माधवराव' जी ने तो नहीं. . . .

रातोंरात उसका यह कर्ज कौन चुका सकता है ? 'माधवराव' के सिवा. . . .

उसका संपूर्ण शरीर थरथराने लगा. खुशी से आंखें छलक आयीं. किसी के साथ उसने कोई बात न की, बस सरपट दौड़ पड़ा, 'माधवराव' जी के चरणों में.

आज मनजी ठक्कर नहीं हैं किंतु अंजार का वह 'माधवराव' जी का भव्य मंदिर वहीं है. उस मंदिर में दर्शनार्थ आये हुए भक्तगण अभी भी मनजी ठक्कर की चर्चा बड़े प्रेम तथा श्रद्धा से करते हैं. □□□

(अनुवाद : चित्रा मुदगल)



१५ डाउन

वीनु केशवाणी

ट्रेन बांबे सेंट्रल से रवाना हुई थी. बंबई की सीमा इसने कब की पार कर ली है. बढ़ी जा रही है आगे. टू-टायर स्लीपर-कोच की टॉप बर्थ नंबर नौ पर किसी ने मेरा बिस्तर बिछा दिया था और वापसी की मेरी यह यात्रा शुरू हुई थी–– मुझे एकाएक याद आ जाता है.

बुखार फिर तेज हो रहा है. न जाने कितनी डिग्री तक पहुंच गया हो. थर्मामीटर है नहीं. न कोई कोमल और ममतामयी मां या बहन की बुखार-मापक हथेली है. नारी के इन्हीं दो रूपों की पहचान मुझे है. तीसरा रूप देखना अभी शेष है. . . . यह सब भी सहसा याद आ जाता है.

सिर दर्द से फटा जा रहा है. जिस्म तप रहा है. भूख भी कोई कम नहीं लगी हुई. शरीर की न जाने किन गहराइयों से, अजीबोगरीब लक्षण एकाएक सतह पर प्रकट हो रहे हैं. रवानगी से पहले सिडेटिव्स की दो गोलियां मैंने गटक ली थीं. उनका असर, उन विचित्र लक्षणों पर सवार हो कर उन्हें नाथने का प्रयास कर रहा है. पता ही नहीं चलता, कब मैंने नशे जैसी ऊंघ में डूबना शुरू कर दिया है.

आंखें जब दुबारा खुलती हैं, तो कंपार्टमेंट के सहयात्रियों को अचानक सामने पा कर मैं चौंक-सा जाता हूं. लगता है कि वह प्रभावशाली पुरुष, जिसकी उम्र साठ के आसपास होगी, अन्य यात्रियों का आकर्षण केंद्र बन चुका है–– बोल वही रहा है. शेष सब श्रोताजन हैं.

इच्छा न होने के बावजूद उठ कर बैठ जाता हूं. सिरहाने रखी बैग का जिप खोल कर भीतर से बुखार-शामक दो गोलियां ढूंढ़ निकालता हूं. वाटर-बैग से पानी ले कर दोनों गोलियां हलक से नीचे उतारता हूं और फिर से लंबा हो जाता हूं.

कान सहयात्रियों की बातों पर लगे तो हैं, किंतु कभी सुनता हूं और कभी कुछ भी नहीं सुनता. आंखें बंद हैं. मन हो रहा है, ट्रेन से बाहर की दुनिया में गुम जाऊं. ऊपर की बर्थ पर लेटे-लेटे बाहर का कुछ भी देखना संभव तो नहीं है; लेकिन फिर भी ऐसा लगता है, जैसे. . . . बाहर. . . . आकाश में बादल-ही-बादल हैं. यदि न होते, तो क्या सूरज निकलते का जरा भी आभास न मिलता? खेत. छलकते नदी-नाले. वृक्ष. आयल पेंटिंग जैसी हरियाली. इन सबके बीच से झांक-झांक कर थमी हुई झोपड़ियां. कुछ झोपड़ियां तो ऐसी कि समूची की समूची लताओं से ढकी हुई हों. केवल उनके दरवाजे पर लताओं की हरियाली नहीं है. ऐसे दरवाजों



वीनु केशवाणी (जन्म : ५ जुलाई, १९२९, भुज, कच्छ) ने मानव जीवन की प्रक्रिया को अलग-अलग पात्रों के माध्यम से जिया है और उसे अपने लेखन में ढाला है. ये उर्दू के भी अच्छे जानकार हैं और गजलों के प्रेमी हैं. चित्रकला में भी इनकी अच्छी पैठ है.

में अंधकार जम्हाई ले रहा है. इस तमाम सौंदर्य की पूर्व-भूमिका स्वरूप जगह-जगह जल स्थिर हो गया है. जल के इन विस्तारों में कमल यों खिले हुए हैं, जैसे किसी कवायद की तैयारी में कतारबद्ध निकल पड़े हों. इतने ज्यादा कमल हैं कि गिने न जायें. यह सब और ऐसा ही और अब भी बहुत कुछ, ट्रेन के दोनों ओर से गुजर रहा होगा. . . .

यदि बुखार न होता, तो नीचे उतर कर, किसी खिड़की पर आसन जमा, मैं अवश्य देखता—बंबई पर घेरा डाल कर पड़े पहाड़ और टेकरियां. . . . उनसे लिपट रहे काले, सफेद महाकाय कबूतरों जैसे बादल-दल. . . . न जाने किन-किन दूरियों से, वायु-प्रवाहों में खिंच कर जाये, वे बादल ऐसी तन्मयता से बैठे होंगे, जैसे अंडे से रहे हों. . . .

यह सब मैंने अवश्य देखा होता, किंतु . . . क्या देखने की जरूरत सचमुच है? यह सब तो मुझे पहले ही से ज्ञात है. इसी ट्रेन से न जाने कितनी बार यात्राएं कर चुका हूं. सब याद न हो जायेगा?

दवा का नशा मन के विस्तार को वातावरण में से खींच कर समेट लेना चाहता है. ऊंघ बार-बार सतह पर आ जाती है, लेकिन मन है कि चंचलता छोड़ नहीं रहा. इधर भागता है, उधर भागता है. ऊंघ अपना काम करना चाहती है, मन अपना. . . .

* *

अनौपचारिक पार्टी में बैठा हूं. सब के सामने, मेज पर, शीतल पेय के गिलास पड़े हैं. हर गिलास में सब-की अपनी-अपनी पसंद के रंग हैं. सफेद, नारंगी, जामुनी, सुनहरे. . . .

दूर की कुर्सी पर बैठे वह मित्र महोदय, उनकी सफेद धोती, गले तक बंद सफेद शर्ट, सफेद कोट और मेज पर रोबदाब के साथ रखी उनकी वह काली टोपी—ये सब खासे अच्छे मूड में मालूम पड़ते हैं. शास्त्रीय संगीत के खजाने में से चुन-चुन कर 'खास चीजें' वह मित्र सुनाये जा रहे हैं. उनके सामने बैठे हुए सज्जन, तबले की गैर-मौजूदगी में भी, पूरी वफादारी के साथ डोल रहे हैं. उनके बगल का व्यक्ति बुत की तरह स्थिर बैठा है. दत्तचित्त हो कर सुन रहा है न! बुत के चेहरे पर आनंद का स्थायी भाव है. लेटेस्ट फैशन के हेयर-स्टाइल वाली सुंदर जवान लड़की मेरी बायीं ओर बैठी है और मात्राएं गिन रही है. मेरी दाहिनी ओर बैठे मित्र और उस लड़की के बीच चुपके-चुपके नजरों का जो आदान-प्रदान चल रहा है, उसका रहस्य समझने की कोशिश में, उस मित्र के बाद बैठा हुआ मित्र तन्मय हो गया है.

लेकिन मैं अपने गिलास में बर्फ डालते जाने की प्रक्रिया में ही मगन हूं, मुझे टेंपरेचर जो है. मेरे शरीर से भाप निकल रही है, मुझे इसे लगातार शीतल रखने की चिंता है.

मैं एकाएक सबको बताता हूं—मुझे तेज बुखार है. सब मेरी मिजाजपुरसी करने लगते हैं—सिर में दर्द तो नहीं?

—नहीं!

—बदन टूट रहा है?

—नहीं.

—ठंड तो नहीं लग रही?

—नहीं.

—फिर यह कैसा बुखार है?

मैं चुप.

—दो दिन बाद तुम अपने वतन जा रहे हो न?

—हां.

—जाने की ऐसी भी क्या जल्दी है?

—जाना जरूरी है.

—पक्का फैसला कर डाला है क्या?

—हां.

—रद्दोबदल की बिल्कुल गुंजाइश नहीं?

—नहीं.

—हुं. . . . हुं. . .

—क्या 'हुं-हुं'? 'हुं-हुं' क्या?

—याने तुम टेंशन में हो. टेंशन का ही बुखार है.

—टेंशन का बुखार?

—तुम सब कुछ छोड़ कर वतन जा रहे हो. ये तमाम दोस्त, प्रियजन, बंबई में तुम्हारे निवास के धड़कनपूर्ण संस्मरण—सब छोड़ कर तुम्हें वतन जाना है. टेंशन जरूर होगा. यह बुखार टेंशन का अनुवाद है.

—ओह, नॉनसेंस.

मेरे सीधे-सरल बुखार का इतना अटपटा स्पष्टीकरण? सिर को झटका दे कर मैं ऊंघ को गिरा देता हूं. फलस्वरूप, कुछ देर तक ट्रेन की परिचित आवाजें सुनायी देती रहती हैं. कोई सूना स्टेशन सरक कर नजदीक आता है और ट्रेन के बाजू में चुपके से फिट हो जाता है.

—गाड़ी आज बिल्कुल सही चल रही है. लेट जरा भी नहीं, डिब्बे में, दूर से, किसी की हताशाभरी आवाज सुनायी देती है. ट्रेन अगर लेट होती, तो सहयात्रियों के साथ इस बाबत लंबी चर्चाएं हो सकतीं. ट्रेन के लेट होने में ही आनंद है. वापस वतन पहुंचने की जल्दी भला किसी होती है?

जो यात्री पहले सिर्फ सुन रहे थे, वे ही अब बोलने लगे हैं. फलस्वरूप, साठ के आसपास के उस प्रभावशाली पुरुष का तेज कुछ फीका पड़ रहा-सा महसूस होता है.

—आपको तो फर्स्ट क्लास में ट्रैवल करना चाहिए था.

—फर्स्ट क्लास एक दम फुल चल रहा है. रिजर्वेशन कैसे मिलता?

—तो प्लेन से आना चाहिए था.

—प्लेन का ट्रैवल भी कोई ट्रैवल है? उड़े नहीं कि पहुंच गये. ट्रैवल का मजा लेना अभी शुरू भी नहीं किया कि खेल खतम!

—. . . इसके अलावा, शायद आपके डाक्टर ने भी मना किया होगा.

—नहीं-नहीं, ऐसा कुछ नहीं है. मैं हार्ट का पेशेंट नहीं.

मैं तो बिल्कुल तंदुरुस्त हूं. यह स्पष्ट उत्तर मैं सुनता हूं. इसके बाद, प्रश्नकर्ता को सहसा कोई नया प्रश्न नहीं सूझ पाता. इससे उस प्रभावशाली पुरुष को 'ओपनिंग' मिल जाती है और वह झट अपनी बात शुरू कर देता है.

—बंबई में हमारी पांच दूकानें हैं. कपड़ों और रेडीमेड ड्रेसों के पांच स्टोर्स. रोजाना बीसेक हजार का माल बेचते हैं. पांचों लड़कों को एक-एक स्टोर सौंप दिया है. सब भगवान की दया है. बड़ी मेहनत की. बड़ा पसीना गिराया. कमाई डट कर की और मौज-मजे भी कम नहीं किये. यों पूछिये कि बंबई में हमने क्या नहीं किया और क्या नहीं भोगा. अब पांचों लड़के मिल कर मेरे पास आते हैं और कहते हैं— बापू, अब आप वतन चले जाइए और आराम करिए. जितना चाहे उतना धरम-करम करिए. दो-दो सालों से पांच-पांच लड़के यही कहते चले आ रहे हैं. आखिर मैंने भी सोचा कि ठीक ही कहते हैं. लिहाजा... रिटायर हो कर चल दिया हूं वतन की तरफ...

—लगता है, बंबई के साथ आपको बड़ा ही लगाव हो गया है. क्यों? फिर आप बंबई में ही रिटायर होते? उस कौतूहली प्रेमी सहयात्री ने फिर से एक सवाल खोज निकाला है.

सवाल का जवाब क्या दिया गया, मुझे ध्यान नहीं. मुझे फिर से नींद आ जाती है.

★ ★

डिफेक्टिव टेलीविजन के स्क्रीन पर जैसी लकीरें दीखती हैं, वैसी ही लकीरें-लकीरें-लकीरें, धब्बे-धब्बे-धब्बे आंखों के सामने उतरा रहे हैं. साफ और धुंधले चित्रों का एक सिलसिला उभर रहा है. कोई न्यायाधीश है. कुछ पूछ रहा है. मुझसे क्यों पूछ रहा है?

—अपने बचाव में आपको कुछ कहना है?

—बचाव? किस बाबत?

अरे! ये सब कहां से आ टपके? यह जेलर? ये खाकी ड्रेसों वाले? और यह जल्लाद?

कोई पूछ रहा है—आपकी आखिरी इच्छा क्या है?

मेरी आखिरी इच्छा? बहुत बड़ा, बहुत ही बड़ा, जबर्दस्त सवाल है यह तो!

नहीं, नहीं; मामला कुछ और है. मेरे कान के पास होंठ ला कर, भावुक स्वर में किसी ने पूछा है—क्या तुम्हें कुछ नहीं कहना? कुछ भी नहीं बोलोगे तुम? कोई लड़की, कोई युवती पूछ रही है मुझसे. एक लंबी और चौड़ी सड़क है. हाई वे. मैं उस पर चल रहा हूं. बगल में, सटी-सटी वह चल रही है. मुझे तेजी पकड़नी है, जबकि वह कतई जल्दी में नहीं. वह मेरी गति को रोक रही है. उसे गुमान ही नहीं कि सड़क की दाहिनी ओर से जबर्दस्त बाढ़ लपक रही है. थोड़ी ही देर में यह हाई वे डूब जायेगा. डूबने से पहले मुझे यहां से अधिकतम फासले पर चले जाना है. इसके लिए यदि दौड़ना पड़ जाये, तब भी कोई हर्ज नहीं.

—सचमुच कुछ नहीं कहोगे? सुनोगे भी नहीं?

फिर वही बात? ओह! सड़क पर, दूर-दूर तक, पानी आ चुका है. देख, देख. वह बस पानी में तैरती हुई इधर बढ़ रही है. उसके पीछे एक और बस है. फिर एक और. न जाने कुल कितनी बसें सिलसिले में आ रही होंगी. पहली बस की खिड़कियों से यात्रियों के चित्र-विचित्र चेहरे चिरपरिचित चिंता के हैंगर पर लटक रहे हैं.

★ ★

यह आवाज कैसी है? तीखी, कर्कश किरकिराहट? न जाने कैसी आवाज है. नजर घुमाता हूं. पूछ बैठता हूं— मैं कहां हूं?

—हम रण पार कर रहे हैं. कोई यात्री जवाब देता है.

यात्री हड़बड़ा गये हैं, अपने साजोसामान और बच्चों को संभालने लगे हैं.

—खिड़कियां बंद करो, बंद करो. मैं चिल्लाता हूं. यात्री फटाफट खिड़कियां बंद करके, एक तसल्ली-सी अनुभव करते हुए बैठ जाते हैं. उन सबकी नजरें मेरी ओर ऐसे उठती हैं, जैसे खिड़कियां बंद करने का हुक्म सही वक्त पर दे कर मैंने उन्हें आभार से दबा दिया हो.

रिटायरमेंट स्वीकार करने वाले वह सज्जन एकदम ढीले पड़ गये हैं. खिड़की के कांच पर माथा टिका कर उन्होंने आंखें मूंद ली हैं. सिर पर चांद का विस्तार जहां फैलता-फैलता आ कर रुका है, वहां ब्लैक-डाई उड़ जाने के कारण बाल अजब-से सफेद लग रहे हैं. जरूर उन सज्जन को आराम की जरूरत है. खिड़की के जिस कांच पर उन्होंने मत्था टेका है, उस पर बाहर से रण की रेत के रेले उड़-उड़ कर टकरा रहे हैं. पटरियों और रेल के चकों के बीच रेत कुचली जा रही है. यह तेज और कर्कश किरकिराहट इसी की है.

★ ★

उस तेज, कर्कश आवाज के आरपार एक और आवाज लाउड-स्पीकर पर घोषणा कर रही है— यात्रियों को सूचित किया जाता है कि यह ट्रेन अब पूरी-पूरी रेत में विलीन हो चुकी है.

सबकी बोलती बंद हो जाती है. खामोशी इस हद तक पहुंचती है कि सभी यात्री, अभी-अभी होने जा रहे आवाज के पुनर्जन्म के इंतजार में, हाथ-पर-हाथ धरे बैठे मालूम पड़ते हैं.

—लेकिन मैं कहां हूं? म दुबारा पूछ बैठता हूं.

—आफिस में, सा'ब! सामने खड़ा मेरा असिस्टेंट मुझे बताता है.

ठीक ही तो है.—आफिस ही में हूं. टेबल. कुर्सी. फोन. पिनकुशन. आदि-आदि.

—मेरी गैरहाजरी के दौरान क्या-क्या हंगामे हुए? क्या पूरा शहर कहीं भाग गया था? तुमने कितने खरबूजे चुराये? किसने कितनी धांधली चलायी? बोलो.

—ऐसा तो कोई हंगामा नहीं हुआ, सा'ब! और मैंने भी कोई खरबूजा नहीं चुराया.

—झूठ! अगर कोई हंगामा नहीं हुआ, तो ऐसा भाषण किसने दिया कि यदि मैं थोड़ा भी और गैरहाजिर रहा, तो यहां का पूरा समाज समाज-विरोधी हो

जायेगा? सब उलट-पुलट जायेगा? सारी व्यवस्थाएं अस्त व्यस्त हो जायेंगी? गुस्से से बेकाबू हो कर मैं उठ पड़ता हूं. पास में ही खड़े एक लंगूर को तमाचा जड़ देता हूं.

—नहीं, नहीं. वह मैं नहीं था. क्या मैं वैसा भाषण दे सकता हूं? लंगूर सकपका जाता है—मैं तो पहले ही से गुनहगार हूं. आपके खिलाफ कैसे जा सकता हूं?

* *

फिर वही सीटी. ट्रेन दुबारा कहां से आ गयी? ट्रेन नहीं आयी. स्टेशन आया है. मैं प्लेटफार्म पर टहल रहा हूं. सहसा देखता हूं— चार-पांच जने किसी को स्ट्रेचर पर लाद कर ले जा रहे हैं. मैं उनके पीछे दौड़ पड़ता हूं. चिंतित हूं— स्ट्रेचर पर कहीं स्वयं मैं ही लदा हुआ न होऊं.

स्ट्रेचर के नजदीक पहुंचने पर ध्यान देता हूं कि उसे तो किसी ठठरी की तरह उठाया गया है. गार्ड आगे-आगे चल रहा है. एन्जिन-ड्राइवर, टी. टी. और दो कंडक्टरों के कंधों पर ठठरी उठी हुई है.

—रख दो. नीचे रख दो. देखने दो. कौन मर गया है? मैं गार्ड से कहता हूं.

—कोई नहीं मरा है यार! यह सज्जन तो बंबई से रिटायर हो कर लौटे हैं. इन्हें हम टैक्सी तक छोड़ने जा रहे हैं. यह सब इस ट्रेन के कर्मचारियों की ड्यूटी में शामिल है. आप भी जब रिटायर हो कर आयेंगे, तो इन सुविधाओं का लाभ आपको भी मिलेगा. इसके लिए किसी को धन्यवाद-वन्यवाद देने की जरूरत नहीं.

गनीमत! लाश का चेहरा खुला है. काले-सफेद बालों वाले वह रिटायर्ड गृहस्थ स्ट्रेचर पर लेटे हुए हैं. मुंह और मस्तक पर गुलाल छिड़का हुआ है. वह मेरी ओर नजर घुमा कर कहते हैं— फिर मिलेंगे. रिटायर हो गया हूं. बस, अब वतन में सिर्फ आराम करना है. आइएगा! वह हाथ का इशारा करते हैं. १५ डाउन के कर्मचारी उन्हें उठा कर चलते बनते हैं.

लाल कमीज वाला एक कुली मुझे जगा रहा है. चेहरा परिचित लगता है. क्या सभी कुलियों के चेहरे एक-जैसे होते हैं? सा'ब! उठिए. गांधीधाम आ गया. आखिरी स्टेशन.

मैं हड़बड़ा कर उठ बैठता हूं. मस्तक छू कर देखता हूं. बुखार अभी भी है. बर्थ से उतर कर नीचे की खाली सीट पर बैठ जाता हूं. कंपार्टमेंट खाली हो गये हैं. कुली ने मेरा बिस्तर बांध लिया है. अब सामान इकट्ठा कर रहा है. सामान उठा कर वह चलने लगता है. मैं उसके पीछे-पीछे घिसटता हूं. प्लेटफार्म से निकलने वाला मैं आखिरी मुसाफिर हूं. लोग घोर अधैर्य से प्लेटफार्म पर आने के लिए लपक रहे हैं. उनके चेहरे मेरी नजर के साथ टकराते जा रहे हैं. आशा, उल्लास और उत्सुकता से ओतप्रोत चेहरे! ये सब १६ अप के यात्री हैं. १६ अप के रवाना होने की तैयारी में सारा स्टेशन हंगामी ढंग से मुस्तैद हो उठा है. □□□

(अनुवाद : मनहर चौहान)

कच्छी लोककथा

जब्बर काका

• मूलराज रूपारेल

नाम तो उसका नारायणजी वामजी था, लेकिन वह जब्बर काका के नाम से प्रसिद्ध था. भरावदार मूंछें, प्रभावशाली चेहरा, हट्टा-कट्टा शरीर.

राजा साहब का प्रिय. उसे वह 'काका' कह कर ही पुकारते. खूब इज्जत देते. राजा के जन्म दिवस के अलावा काका कभी दरबार में नहीं जाते. लेकिन तब भी खजाने से उन्हें घर बैठे तनख्वाह पहुंच जाती. काका एक बार बीमार पड़ गये. उन्हें विश्वास हो गया कि अब वह ज्यादा जीने वाले नहीं हैं. काकी को बुलाया. इकलौते लड़के को भी बुलाकर कहा– सारी जिंदगी में सिंह की तरह जिया हूं. मेरी मृत्यु पर रोना-धोना मत. अगर रोना ही हो तो सिंह की मृत्यु पर सिंह की तरह ही रोना.

उन्होंने लड़के को गोबर और गोमूत्र लाने के लिए कहा. जमीन को लिपवाया. गंगाजल और तुलसी के पत्ते मंगवाये. तब सहारा लेकर नीचे जमीन पर उतरे. वैद्यराज पास आये. नब्ज देखी. सबको उम्मीद जाती रही.

काका जमीन पर लेटे, उससे पहले किसी ने खबर दी—काका-काका! दीवानजी तुमसे मिलने आ रहे हैं.

यह सुनकर काका के चेहरे पर तेजस्वी चमक आ गयी. दीवान उनका प्रतिस्पर्धी था. काका सारी उम्र उससे जूझते रहे और कभी भी उसके समक्ष झुके नहीं.

काका जोर से चीखे–छोकरे! जल्दी से तकिया ला, मुझे वहां बैठा. . .मेरा हुक्का भर. . .

दीवान ने जब दरवाजे पर पांव धरा, तब काका तकिये के सहारे बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे. उसे घोली हुई अफीम पिलायी गयी. महमानबाजी से दीवान धन्य-धन्य हो गया. काका को स्वस्थ देख आश्चर्यचकित हो गया.

भांड ने कहा—हमें समाचार मिले थे कि आप बीमार हैं. . .इसलिए. . .

—बीमारी का तो ऐसा है ना. . . वृद्धावस्था में तो बीमारी आती ही है. . .लेकिन इतना सच है कि मेरा कोई दुश्मन मेरी मौत देख कर खुश होने आये तो मैं जब्बर काका हूं. . .वो घड़ी तो मौत को भी वापस धकेल दूं!

दीवान ने जैसे ही दरवाजे से बाहर कदम रखा, काका ने दम तोड़ दिया. □□□

(अनुवाद : हरमन चौहान)

लॉस्ट प्रॉपर्टी

—वनु पांधी



वनु पांधी (जन्म : १५ दिसंबर, १९२८, टप्पर, कच्छ) ने मुख्यतः वन्य समाज और संस्कृति की मान्यताओं को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है. इसके साथ ही इन्होंने कच्छ के रण के विस्तार और सागर की लहरों से जूझते लोगों के संघर्ष-चित्रों को शब्द दिये हैं.

एक बस-अड्डा. भव्य. लंबा-चौड़ा.

उसके दोनों तरफ विज्ञापनों के बड़े-बड़े बोर्ड. विज्ञापन कपड़ों के, आयल-एंजिन के, चश्मे, खाद और शानदार फसल के. हर विज्ञापन में औरत—मनमोहक, जवान, सर्प-सीढ़ी के खेल जैसे उतार-चढ़ाव वाली. एक-एक सीढ़ी चढ़ कर ऊपर आइए, अचानक सांप के मुंह में चले जाइए, नीचे उतरिए, सांप की दुम में से निकल आइए. ऊपर.नीचे.ऊपर.नीचे. मर्द के साथ औरत का वही युगों पुराना खेल.

—क्यों, जी, सुन रहे हैं ?

एक मधुर स्वर. सांवली युवती. आंखों पर गॉगल्स, यौवन का साक्षात् मधुछत्ता. राजा शांतनु से ले कर सआदत हसन मंटो तक इस औरत की तारीफों के पुल बांधे गये हैं; वही रूप, वही रंग.

—जी नहीं, सिर्फ देख रहा हूं, मैंने कहा.

—जी?

—देख रहा हूं कि आपने अभी तक पैसे नहीं दिये.

—क्या मतलब?

—मतलब इतना साफ है कि ....

—मेरी समझ में नहीं आया.

—आपको रिजर्वेशन का जो टिकट चाहिए, वह मैंने पहले से तैयार कर रखा है.

—ओह!

काउंटर पर मनी-पर्स आ बैठा. खुला. भीतर से मेकअप की चीजें झांकने लगीं. काले बादल भी चांदनी का स्पर्श पा कर सुंदर हो जाते हैं.

—आपको पहले से मालूम था?

आंखों पर से गॉगल्स का उतर आना. शरबती आंखों की शरारत.

—मालूम था और नहीं भी था. मैं बोला.

—इसका मतलब?

—स्त्रियों के सान्निध्य में मेरी दशा सहदेव पाण्डव जैसी हो जाती है. जब तक कोई पूछे नहीं, तब तक मैं कुछ बता नहीं पाता.

भौंहों का तन जाना. रोष. गुलाब के कांटे चुभने की शिकायत क्या आज तक किसी ने की है?

—बड़े उद्दंड हैं आप, वह बोली.

—आप मेरी गार्जियन तो हैं नहीं...

होंठों का परस्पर दब जाना. हास्य का छिपाए न छिपना.

—सुबह आ कर, सबसे पहले, आपका रिजर्व्ड टिकट ही तैयार करता हूं, फिर कुछ और. मैंने बताया.

—मान लीजिए, कभी मैं आऊं ही नहीं. आपको पैसे खोने पड़ेंगे.

—रामायण और महाभारत भी इस खोने के पीछे ही रचे गये हैं न!

—खासे रोमांटिक हैं आप.

—मजनूं भी तो था. हरियाली पर जहां-जहां उसके पैर पड़े, वहां-वहां रेगिस्तान खड़ा होता गया, मैंने कहा.

हास्य के साथ विदा.

एक टेलिफोन कॉल. थोड़ा समय पास हो जाना.

एक करारा चेहरा—कौन थी वह?

—वह? वह याने कौन?

—वही, जो अभी-अभी गयी.

—क्या आप सी. आई. डी. के आदमी हैं? मैंने पूछा.

—नहीं.

—सी. बी. आई. के?

—नहीं.

—एफ. बी. आई. के?

—नहीं.

—फिर आप कौन हैं?

—उसका बाप.

मेरा चेहरा पसीना-पसीना हो गया.

—क्या वह आपके पास रोज आती है? उसने

सत्तावादी स्वर में पूछा.

--हां.

--किस खुशी में?

--रिजर्वेशन लेने.

--उसका रिजर्वेशन हो गया है.

--मैं...समझा नहीं.

– उसकी सगाई हो चुकी है.

—अच्छा?

--शादी भी जल्दी होने वाली है.

—असंभव.

—उसका पति मिलिटरी अफसर है.

—ओह्! मेरा दिमाग घूम गया. युद्ध समाप्त क्यों हो जाया करते हैं?

--बारात की वापसी के लिए मुझे स्पेशल बस की जरूरत है. किससे मिलूं? उन्होंने पूछा.

--सिवा मेरे किसी से भी.

बुजुर्ग महोदय रवाना हो गये. थोड़ी देर तक मैं काम में डूबा रहा. फोन की घंटी बजी.

—हैलो ...एस. टी. इंक्वायरी?

—यस, सर. कहिए, क्या सेवा करूं?

—राजकोट की बस कब मिलेगी?

—अभी. फौरन. निकलने की तैयारी में है.

—यह नहीं. सुबह की पहली बस.

--पांच बजे. मैंने कहा.

--उसके बाद?

—पांच पैंतालीस पर.

--याने कि पौने छह. है न?

--जी हां.

—उसके बाद?

--सात बजे.

—लोकल है या एक्सप्रेस?

—एक्सप्रेस.

—सात ...ज्यादा ही जल्दी कहा जायेगा. मेरी वाइफ जरा देर से उठती है.

—आप वाइफ को जल्दी सोने नहीं देते होंगे.

—मिस्टर, यह मेरा पर्सनल मामला है.

—बेशक है लेकिन शुरू आपने किया, मैंने नहीं.

—ओ के! सुबह दस-ग्यारह बजे राजकोट जाने की कोई बस है या नहीं?

--पहले आप सोच कर बताइए. दस बजे या ग्यारह?

—ग्यारह.

—है.

—तो उसमें मेरा रिजर्वेशन कर दीजिए.

—असंभव!

—वो क्यों?

—यह बस आगे से आती है. हर सीट पहले से घिरी रहती है.

—ऐसे कैसे काम चलेगा? स्वर में गुस्सा.

—क्या हो सकता है? अगर कोई सीट पहले से रिजर्व्ड हो, तो उस पर कोई और कैसे बैठ सकता है?

—खैर! मुझे इस सिस्टम में रद्दोबदल करवाने के लिए कुछ करना होगा.

मैं उत्साह से बोला—-जरूर करिए. रद्दोबदल होना ही चाहिए.



—जी?

—यह सिस्टम, दरअसल, शादी के सिस्टम जैसी . हस्बैंड वाइफ में से कोई अपनी जगह छोड़ता नहीं. ;लस्वरूप, उनकी जगह पर कोई आ नहीं पाता.

—आप समाज-सुधारक मालूम पड़ते हैं.

—सुधरने के लिए कोई तैयार हो, तब न!

—सच्ची बात है! जनतंत्र की सबसे बड़ी कम-ोरी यही है. हां, तो मैं कह क्या रहा था?

—राजकोट की बस.

—हां-हां, याद आ गया. राजकोट की बस. ऐसा ाारिए न, सारे दिन के सारे ही वक्त बता दीजिए, जिससे ात जल्दी निबट जाये.

मैंने उन्हें, फोन पर ही बता दिया कि सुबह से रात ाक, किस-किस वक्त बसें राजकोट जाती हैं.

—थैंक्यू! फोन पर उनकी खरखराती आवाज सुनाई दी—अब...राजकोट से यहां आने वाली तमाम बसों के वक्त भी अगर बता सकें, तो...

—आप अपना एड्रेस दे सकेंगे?

—वजह?

—आपके घर खुद आ कर मैं टाइम टेबल की बुकलेट पहुंचा दूंगा. उसी में सारे वक्त देख लीजिएगा.

—पूरी इन्फर्मेशन न देने के लिए मुझे आपकी शिकायत करनी पड़ेगी.

—जी? क्या कहा? नयी फिल्म कौन-सी लगी है? भाई जान, आप थियेटर में फोन करिए.

भारी आवाज के साथ रिसीवर का क्रेडिल पर रख दिया जाना.

* *

फिर वही ऊबाऊ काम. किसी तरह बीतता समय.

—बेटे?

मैंने नजर उठायी— हां, मांजी.

भीतर आ कर एक वृद्धा मेरे एकदम नजदीक खड़ी हो गयी. फटे हुए वस्त्र. जीर्णशीर्ण शरीर.

—गुमी हुई चीजें यहीं मिलती हैं न?

—जी हां. कहिए.

—बेटे! मेरी एक पोटली बस में रह गयी थी.

—क्या था उसमें?

—गरीब के पास भला क्या होगा? दो मुट्ठी खिचड़ी थी.

—ठहरिए, देखता हूं.

मैं रजिस्टर के पन्ने पलटने लगा.

—नहीं, मांजी; खिचड़ी यहां तो किसी ने जमा नहीं करवायी है. मैंने बताया.

वृद्धा के मुंह से निःश्वास निकल पड़ा— कैसा जमाना आया है! लोग अनाज-चोर होने लगे हैं. दो दिन से कुछ खाया नहीं था.

लाठी टेक-टेक कर बाहर जा रही वृद्धा को मैं ताकता रह जाता हूं. थोड़ी देर तक दिखाई पड़ने के बाद वह भीड़ में गुम हो जाती है.

—लक्जरी का रिजर्वेशन मिल सकेगा?

एक युगल. नव-परिणित. शादी याने लक्जरी.

—दोनों सीटें साथ ही रखिएगा हं? युवक बोला.

—खिड़की के पास मैं बैठूंगी.

—यहां आते समय तेरे लिए खिड़की मैंने छोड़ दी थी या नहीं? तू खुद वहां से क्यों उठ गयी?

—आपकी बहन ऐसी-ऐसी बातें कर रही थी कि मारे शर्म के मुझे उठ जाना पड़ा.

—किसकी बातें?

—आपकी. और किसकी?

शर्म! स्त्री के जीवन में पुरुष के प्रवेश के साथ ही पैदा होने वाली उलझन!

टिकटें ले कर दोनों चलते बने. पैर धरती पर नहीं पड़ रहे थे. जब पड़ेंगे, तब धरती का कोई पत्थर उन्हें ठोकर न मारे, यही कामना.

—इंक्वायरी यहीं है?

सुशोभित वस्त्रों में सज्ज एक सज्जन ने प्रवेश किया.

—हां जी, कहिए.

—मुझे खबर मिली है. कि मेरे पैसे यहां लॉस्ट प्रापर्टी में जमा हुए हैं. क्या यह सही है?

—शिनाख्त के लिए अगर...

—श्योर. सूटकेस एकदम नयी है. ब्राउन कलर की. उसमें चार सूट हैं—स्ट्रेचेबल. एक टेप-रिकार्डर है. फॉरेन का तो नहीं है, लेकिन... चीज शानदार है. दो के सेट हैं. पर्स में बाहर बीस रुपयों के नोट रखे हैं.... नोटों की कोई ऐसी चिंता नहीं. चिंता तो उन डाक्यूमेंट्स की है, जो नोटों से भी ज्यादा कीमती हैं. कहिए, इससे ज्यादा और क्या शिनाख्त चाहिए?

—काफी है. मैं उनकी चीजें उन्हें सौंपता हुआ पूछता हूं, इन सबके मालिक आप ही हैं न?

—ऑफ कोर्स!

—आप इन चीजों को, प्लीज, यहां से हटा लीजिए न? इन्हें देख कर मुझे लगातार अपनी गरीबी का अह-सास मिल रहा है.

—प्रशंसापत्र लिख दूं?

—ऐसे पत्रों की लिपि इजिप्त की चित्र-लिपियों की तरह, ऐसी कठिन होती है कि उसका जानकार ढूंढ़े नहीं मिलता.

—ओके! फिर मिलेंगे. और वह चलते बने.

अजीब-सी अकुलाहट होने लगी है. आंखों के सामने एक पुराना दृश्य उभर रहा है....

* *

सामने वह जो खंबा है न... रोज शाम के छह बजे वहां एक युवती आ कर रुका करती थी. एक मिनट भी आगे या पीछे नहीं. बेंच पर वह बैठती नहीं थी. ज्यों-ज्यों समय बीतता, उसकी बेचैनी बढ़ती जाती. सहसा एक बच्चा दौड़ता आता और लिपट जाता. बच्चे ने स्कूल का यूनिफार्म पहन रखा है. युवती उसके हाथ में से बस्ता ले लेती है. फिर वे आपस में उंगलियां पिरो कर सामने के कैंटीन में चले जाते हैं. थोड़ी देर में बाहर निकलते हैं. सामने जो दो नंबर की बस खड़ी है, उसमें बैठ जाते हैं. अनुमान लगाता हूं; यह युवती अवश्य कहीं सर्विस करती है. नौकरी से छूट कर यहां आती है. दोनों साथ-साथ

घर जाते हैं. किसी दिन जब वे दिखाई नहीं देते, तो वह कोई छुट्टी का दिन होता है.

आज. . खंबे के साथ टकरा कर मेरी नजर बार-बार झेंप रही है. आज कोई छुट्टी का दिन नहीं, लेकिन युवती आयी नहीं है. फिर देखता हूं—बच्चा आ गया है. चकित-सा आसपास देख रहा है. जब वापस लौटता है, तो इतना निराश है कि खड़े रहने के लिए उसे खंबे का सहारा लेने की जरूरत पड़ती है.

थोड़ी देर बाद मुझसे रहा नहीं जाता. मैं खंबे के पास पहुंच जाता हूं. बच्चे से कहता हूं—क्यों? आज तुम्हारी मम्मी नहीं आयी?

—नहीं आयी. उसका स्वर निराशा से दबा जा रहा है.

—अंदर चलो. मेरे पास बैठो.

—नहीं. मम्मी मुझे यहां नहीं देखेगी तो घबरा जायेगी.

—नहीं घबरायेगी. मैं खिड़की में से देखता रहूंगा.

वह भीतर आ गया है.

—तुम्हारा नाम? मैंने पूछा है.

—शरद. मम्मी मुझे 'ससो' (खरगोश) कहती है.

—बिलकुल खरगोश जैसे प्यारे हो. तुम्हारे पप्पा का नाम?

—निरंजन भाई.

—क्या काम करते हैं?

—लंबे टूर पर निकले हैं. भगवान से मिलने गये हैं. वापस आयेंगे, तब मेरे लिए ढेरमढेर चीजें लायेंगे. आप यहां बस-अड्डे पर काम करते हैं न?

मैं चुप रह जाता हूं.

—तुम्हें भूख तो नहीं लगी?

—बड़े जोर से लगी है.

—मेरे साथ कैंटीन में चलोगे?

—नहीं-नहीं. मम्मी गुस्सा करेगी.

—नहीं करेंगी. मैं उन्हें समझा दूंगा.

और वह चलने के लिए तैयार हो गया है.

थोड़ी देर बाद जब हम दोनों कैंटीन से बाहर निकले हैं तो उसकी मम्मी आ चुकी है और खंबे के पास खड़ी चकित-सी इधर-उधर देख रही है.

—यह रहा शरद! मैंने उसके पास पहुंच कर कहा है. हमें साथ देख कर वह हंस पड़ी है. शरद को उसने गोद में उठा लिया है.

—शरद. और मैंने आपकी काफी राह देखी. शरद ने मेरे साथ नाश्ता किया है. आप नाराज तो न होंगी?

उसके होंठों पर मुस्कान खिल उठी है—मैं आपको पहचानती हूं.

मेरे विचार थम गये हैं. इतने-इतने बरसों के सहवास के बावजूद मैं खुद अपने से अपरिचित हूं.

—मैं रोज आपको उस विंडो पर बैठे देखती हूं.

मेरा उद्वेग शांत हो गया है.

कुछ देर बाद वे दोनों चले गये हैं.

उसके बाद से. . जब भी वह खंबे के पास आकर खड़ी होती, तो मेरी ओर एक मंद मुसकान अवश्य फेंकती. घर जाने से पहले शरद मुझसे मिलने के लिए जरूर आता. हम दोनों दोस्त हो गये थे.

फिर, एकाएक, वे दोनों नजर आने बंद हो गये. मुझे रोज बेचैनी महसूस होती. शाम के वक्त मेरी नजर खंबे की ओर बार-बार चली जाती. धीरे-धीरे वह दृश्य भी धुंधला पड़ने लगा. समय के प्रवाह में शायद वह पिघल ही जाता, लेकिन एकाएक पाया कि वह युवती फिर आने लगी. है. खंबे के पास जरा-सा रुकती है. फिर चली जाती है.

एक दिन उसके पास पहुंच कर मैंने पूछ ही लिया —शरद कैसा है आजकल? दिखाई नहीं पड़ रहा है.

उसकी नजरें झुक गयीं. कई क्षणों तक वह कुछ बोल ही न सकी. जब पलकें उठायीं तो उसकी आंखों में आंसू थे—शरद अब इस दुनिया में नहीं है. और वह बड़ी तेजी से दूर हट जाती है.

मौत का फंदा मेरे गले पर कसता जाता है. हमारे लॉस्ट प्रापर्टी आफिस में तो मालिक आकर सामान की शिनाख्त करके उसे ले जा सकता है. ईश्वर के लॉस्ट प्रापर्टी ऑफिस में जमा हो चुके शरद की मालकिन उसकी मां यहीं है. क्या वह शरद की शिनाख्त करके उसे वापस ला सकती है?

अभी भी. . .अनायास मैं उस खंबे को देख लेता हूं. शरद की मम्मी फिर कभी नजर न आयी.

—जरा मेरे साथ तो आइए, चौकीदार का स्वर सुनायी दिया.

यादों की दो-तीन घड़ियां भी कितनी लंबी होती हैं.

मैं उसके पीछे-पीछे चला, प्रतीक्षालय में एक नौजवान युगल बैठा हुआ था. स्त्री ने पुरुष के कंधे पर सिर टिका दिया था. पुरुष का हाथ स्त्री के बालों को स्नेह से थपथपा रहा था.

मैं प्रतीक्षालय से निकल आया. चौकीदार से पूछा—जानते हो, वे क्या कर रहे हैं?

—हां. बुरा काम.

—नहीं.

—लेकिन . . .लेकिन . . .सरेआम?

हंसकर, बिना कोई जवाब दिये. मैं वापस घूम जाता हूं. कैसी विडंबना! सरेआम कोई किसी से प्रेम नहीं कर सकता! प्रेम केवल रात को ही जायज है—अंधकार में बंद दरवाजों और खिड़कियों के पीछे घुटते हुए. इसी घुटन की उत्पत्ति यह समाज. . .यह संस्कृति . . .

काम समेटने से पहले लॉस्ट प्रापर्टी का हर आइटम मैं चेक करता हूं. बाहर निकल आया हूं. सामने की टेकरी पर रात लेटने की तैयारी में है. चूंकि चल रहा हूं और हर कदम धरती पर ही पड़ रहा है, यकीन कर सकता हूं कि धरती अभी पैरों के नीचे से खिसकी नहीं है.

आम रास्ता पार कर, गलियों के बीच भटकता हुआ मैं अपने घर में दाखिल होता हूं—लॉस्ट प्रॉपर्टी के एक आइटम की तरह. □□□

(अनुवाद : मनहर चौहान)

घर-बाहर

• माधुरी शाह

मुझे रह रह कर 'बाई' (मां) पर गुस्सा आ रहा था. हालांकि इसमें उनकी कोई गलती नहीं थी. इन्होंने कभी भी वहां जाने के लिए हम पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डाला था और न ही कभी आग्रह किया था. पर वे अक्सर दूसरे-तीसरे दिन वहां की बातें करने लगतीं. वे बातें हमारे लिए न मानने योग्य और अजीब होती थीं. भाई कभी-कभी बातें सुनते-सुनते उकता कर उठ जाता. क्योंकि उसके लिए कोई नयापन नहीं था. पर मैं और छोटा सुदीप मंत्रमुग्ध भाव से सुनते रहते. आश्चर्य और कुतूहल हमारे लिए हर अंग में जाग उठता था शायद. पर बाद में मैं अक्सर महसूस करने लगी थी कि बाई वहां की बातें सुनाने के बहाने जिये जा चुके जीवन को, क्षणों को और स्थान को, फिर से जी लेने की कोशिश करती हैं. बाई की यह भीख मांगती सी असफल कोशिश देख धीरे-धीरे मेरा कुतूहल उनके प्रति दया में बदलता गया.

ऐसा नहीं था कि बाई वहां जा नहीं सकती थी, बल्कि वहां जाने का कोई न कोई कारण हर साल निकल आता. पर बाई किसी-न-किसी बहाने जाना टाल देती. आसपास का वातावरण देख कर शायद बाई मन-ही-मन डरती रहती है, कि वहां जाने पर शायद सब कुछ वैसा ही न मिले जैसा वह छोड़ आयी थी. बाई और 'अबा' (पिताजी) दो साल के भाई को ले कर लगभग पच्चीस साल पहले वहां से चले थे, तब यह नहीं सोचा था कि पच्चीस-तीस साल तक लौटना ही नहीं होगा.

आजादी के बाद कई वर्षों तक तो बाई बहुत उत्साह में भर कर हमें कहा करती थी—"अरे! तुम लोग कच्छ देखोगे, तब तक तो वह कितना ही बदल चुका होगा. हमारे समय का कच्छ कहां तुम्हें देखने को मिलेगा. तुम जाओगे तब तक तो यहां जैसी ही बिजली और नल लग चुके होंगे और बसें दौड़ने लगेंगी.

माधुरी शाह ने हिंदी और गुजराती भाषाओं में कहानियां लिखी हैं, साथ ही कुछ समीक्षात्मक लेख भी लिखे हैं. ये हिंदी में एम. ए. करने के बाद आजकल बीड़ (महाराष्ट्र) में अध्यापन कार्य कर रही हैं. भारतीय और विशेष रूप से हिंदी कथा-साहित्य का इन्होंने अच्छा अध्ययन किया है. मराठवाड़ा विश्वविद्यालय से स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा-साहित्य पर अनुसंधान कर रही हैं. कच्छ जन्मभूमि होने के कारण कच्छी संस्कृति और वहां के जन-जीवन के प्रति इनका गहरा लगाव है.

'वाय' (कुंआ) पर से पानी भर कर लौटती हुई पनिहारियों की एक-दूसरे से आगे निकल जाने की दौड़ देखना, बैलों के गले में बंधे घुंघरुओं की मीठी रुन-झुन के बीच धीरे-धीरे चलते 'गड्डे' (बैलगाड़ी) में एक से दूसरे गांव का सफर तुम्हारी तकदीर में कहां. कहते-कहते बाई की आंखों में एक चमक और तरलता साथ-साथ प्रतिबिंबित हो उठते और फिर बाई धीरे-धीरे गुनगुनाने लगती,'

'कच्छ मेठो मेराणं
असांजे कच्छ वेनधासी'

(बड़ा मीठा है हमारा कच्छ ! हम तो अपने कच्छ जायेंगे.)

किंतु बाद में यह उत्साह क्रमशः ठंडा पड़ता गया. अपने आसपास का न बदलता या प्रतिकूल रूप में बदलता वातावरण शायद उन्हें कच्छ संबंधी जानकारी देता रहा था. किंतु फिर भी कच्छ का जिक्र वह जब-तब कर लिया करतीं. और बाई की यही बातें मुझे उकसाती रही थीं कच्छ के लिए.

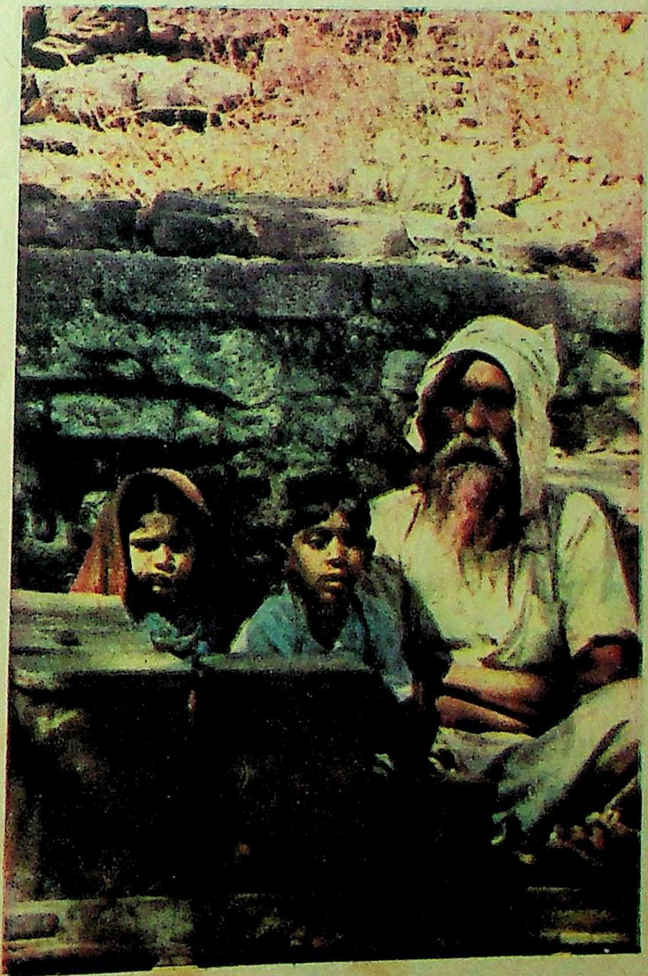
ट्रेन के अहमदाबाद छोड़ने के बाद काफी समय अच्छा कट गया. नया-नया वातावरण मन को अपनी ओर खींचे था. अपनी भूमि का लगाव शायद कुछ उत्साह भरता था मन में. पर जैसे-जैसे ट्रेन आगे सरकने लगी, वातावरण का सुहावना, सुंदर रूप बदलने लगा. और आगे-आगे धरती का उजड़ा चेहरा आकार लेने लगा. छोटे-छोटे अकेले निस्तब्ध स्टेशनों के बीच रेत और धूल उड़ रही थी और यहीं से मन में घुटन पैदा होने लगी थी . अपने शहर से न जाने कितनी दूर निकल आने की भयपूर्ण अनुभूति होने लगी. आगे जैसे-जैसे यह निस्तब्धता और उजड़ापन घने होते गये, मन की घुटन बढ़ती गयी. मन में न जाने कैसा एक अनाम भय समाता जा रहा था. पिछड़ा प्रदेश देख लगता था, सभ्य समाज से नाता ही टूट गया हो. और उस मनःस्थिति में बार-बार एक बचकानी आशंका उभर-उभर आ रही थी कि इतना लंबा फासला तय कर वापस लौट सकूंगी या नहीं! दूरी की यह अनुभूति दो जगहों के बीच के फासले से शायद वातावरण के बदलाव की अधिक थी. और इसीलिए इस समय बाई पर गुस्सा आ रहा था. उन्हीं की बातें सुन-सुन कच्छ जाने के लिए मैं उत्सुक हो उठी थी और इस समय इच्छा हो रही है, बीच में से ही वापस लौट जाऊं.

गर्मी और प्यास के मारे बार-बार गला सूख रहा था. पर कई -कई स्टेशनों के बाद किसी एकाध स्टेशन पर बड़ी मुश्किल से पानी मिलता. आखिर परेशान हो कर मैंने संतरे की गोलियां निकालीं. प्लास्टिक की थैलियों में मैंने बहुत-सी गोलियां, बिस्कुट आदि ले लिये थे. हमारे अपने घर में तो कोई छोटा बच्चा था नहीं, पर पास-पड़ोस में तो होंगे. बच्चों को यों भी बाहर से आने वाले लोगों के प्रति उत्सुकता होती है. पर मुझे लग रहा था कि अचेतन में इन सारी चीजों को लाने के पीछे अधा की कही बातें ही प्रेरणा रही हैं.

अधा कई बार बताया करते थे. वे जब बहुत छोटे, शायद चार-पांच साल के थे तभी उनके अधा की मृत्यु हो चुकी थी. घर में कोई बड़ा आदमी नहीं था. उन दिनों भी बहुत से लोग कच्छ छोड़ कामकाज के लिए बंबई की राह लेते थे. पर परिवार कच्छ में ही रहता. साल में एक बार कुछ दिनों के लिए बंबई से लोग लौटते, तब घर के बच्चों के लिए खाने की चीजों से भरी 'कोथड़ी' ले आते. उन दिनों चीजें बड़ी सस्ती थीं. इसीलिए 'कोथड़ी' गोली या बिस्कुट से नहीं, बल्कि काजू, किसमिस, बादाम और माहिम के हलवे से भरी रहतीं. और अधा बताया करते कि उनके घर का कोई व्यक्ति बंबई में न होने पर भी वे कभी इन चीजों से वंचित नहीं रहे. क्योंकि बंबई से आने वाला हर व्यक्ति सबसे पहले 'कोथड़ी' की मिठाई मुहल्ले के उन बच्चों के घर भिजवाता, जिनके लिए मिठाई लाने वाला घर में कोई न होता.

पानी न मिलने पर मैं और भाई उन्हीं संतरे की गोलियों को मुंह में रख लेते.

अहमदाबाद से ट्रेन में 'भोज' (भुज), भोज से 'मडदू' (मांडवी) और मडदू से फिर बस में भोजाय का यह लंबा सफर बड़ी मुश्किल से कटा. भोजाय पर उतरने वाले हम दो ही थे. हमारे उतरते ही बस चल पड़ी. और मैंने अपने उस गांव पर नजर डाली, जिसकी कहानियां मैं बचपन से सुनती आ रही थी. बाई का अनुमान था कि गांव के बाहर छोटा-सा बस-स्टाप जरूर बन गया होगा, पर जहां बस रुकी, वहां बस-स्टाप तो नहीं था, हां एक प्राचीन और विशाल पेड़ जरूर



था, जिसके चारों ओर एक गोल चबूतरा बना था. मैंने अनुमान लगाया, शायद यह वही पेड़ है, जिसके विषय में बाई बताई करती थी कि जब भी कोई बारात गांव में आती या जाती तब उन्हें लेने या विदायी देने एकत्रित हुए लोग इसी चबूतरे पर बैठा करते थे. एक ओर आदमी बैठ जाते, चिलम पीते हुए और दूसरी ओर रोते हुए बच्चोंवाली मांएं बैठ कर बच्चों को साड़ी के पल्ले से ढक कर 'धावण' (दूध) पिलाने लगतीं.

बस के चलने से उड़ती हुई धूल का गुबार जब पूरी तरह से नीचे बैठ गया, तब वातावरण में छायी भयावह शून्यता साकार हो उठी. दूर-दूर तक कोई नजर नहीं आ रहा था. उदास और बोझिल शाम वातावरण में घुल रही थी. छोटे-छोटे टीले बेबस गूंगों की तरह हमारी ओर देख रहे थे. चारों ओर फैले खेत विधुरों की तरह अकेले सोये थे.

हमने गांव की ओर कदम बढ़ाये. मैंने कभी भी नहीं सोचा था कि गांव के स्वभाव के विरुद्ध, अपने गांव में पहली ही बार मेरा स्वागत सिर्फ धूल भरे रास्ते और फैले सन्नाटे के द्वारा होगा. उसी समय दूर से एक आदमी और उसके पीछे एक बहुत ही बूढ़ी हो चुकी वृद्धा आते दिखायी दिये. आगे-आगे भागते उस आदमी को रुकने के लिए शायद वृद्धा आवाजें लगा रही थी. जैसे-जैसे हमारे बीच का फासला कम होता गया, उसकी आवाज स्पष्ट होती गयी—मुरजी, ए.. .ए... ई.. मुरजी! वह रूक-रूक कर आवाजें लगा रही थी, ओमो रो बेटा, हीं घोड़ न. पाछो घरें हल बेटा, तोके मुंजा सों अर्दू. (ठहर जा बेटा, ऐसे दौड़ मत. वापस घर चल, तुझे मेरी कसम है.) पर आदमी जरा रुकता, पीछे मुड़ कर देखता और हंसते, मुंह चिढ़ाते फिर आगे बढ़ जाता और दौड़ने लगता. उसकी हरकतें बड़ी अजीब-सी लग रही थीं. बुढ़िया दौड़ते-दौड़ते थक कर हांफ रहीं थी. पता नहीं क्यों, थक जाने के कारण या हमें देख कर वह पेड़ के पास रुक गयी. जैसे ही हम निकट पहुंचे, वह ध्यान से हमें देखते हुए पहचानने की कोशिश करने लगी. आंखें उसकी कमजोर लग रही थीं. भाई शायद उसे पहचानता था इसीलिए हाथ का सूटकेस नीचे रख, वह उसके पैरों की ओर झुकता हुआ बोला—पेडाम मां (प्रणाम दादी मां!)

—पेडाम बेटा, मां ने सिर पर हाथ रखते हुए उत्तर तो दे दिया पर अभी भी न पहचान पाने की उलझन चेहरे पर झलक रही थी और फिर दुविधापूर्ण स्वर में उसने पूछा—तूं आसबाई मां जो वसंत त नईंये? (तूं आसबाईमां का वसंत तो नहीं है?)

—अरे वह मां! तुमने तो मुझे बराबर पहचान लिया. भाई ने हंसते-हंसते कहा तो मां उत्साह में आ गयीं, वहां कैसे हैं सब? बाई-अधा क्यों नहीं आये? और ये कौन है? एक साथ कई प्रश्न कर डाले मां ने. अंतिम प्रश्न मेरी ओर देखते हुए पूछा उन्होंने.

—यह तो अपनी मालती है, मां. भाई ने सिर्फ आखरी प्रश्न का उत्तर दिया.

—हैं! ए मां! केड़ी बड़ी थेइ रइ असांजी धी. (हैं! आ हा! कितनी बड़ी हो गयी है हमारी बिटिया) कहते-कहते मां ने मुझे बांहों में भर लिया.

—पेडाम मां, मैंने धीरे से कहा.

—ये अपनी गोमी मां हैं, भाई ने परिचय कराया.

वह शायद दूर के किसी रिश्ते में हमारी दादी लगती थीं. पर मैं जानती थी, यहां इस स्थूल सामाजिक और तथ्यात्मक रिश्ते को ठीक से न भी जानें तो कोई फर्क नहीं पड़ने वाला है क्योंकि गांव के हर घर की वृद्धा को मैं 'मां' ही कहूंगी और हर मां मेरे साथ वैसा ही व्यवहार करेगी, जैसा मेरी अपनी मां.

गोमी मां को देखने से पूर्व मैं समझ रही थी कि यहां भी परस्पर व्यवहार के तरीके बदल गये होंगे, पर उन्हें देख लगा, पुराना बहुत कुछ अभी शेष है.

हमारे आने की खुशी में अब तक मुरजी को भूली हुई गोमी मां को उसकी याद आयी और वहीं खड़े-खड़े उसने चारों ओर नजर दौड़ायी पर दूर-दूर तक उसका पता नहीं था. थके हुए स्वर में उसने लंबी सांस ली और हमारी ओर मुड़ कर बोलीं—चलो.

—क्यों, क्या हुआ मुरजी भाई को? कहां चले गये वे? भाई ने चलते-चलते पूछा.

—कुछ नहीं. गया होगा यहीं कहीं. मां के अस्पष्ट-से संक्षिप्त उत्तर के आगे फिर भाई ने कुछ नहीं पूछा. अब घर दिखायी दे रहे थे. दो मोड़ों वाली गली के तिराहे पर मां रुक गयीं.

—अच्छा, अभी तो चलती हूं बेटा, बहुत-सा काम पड़ा है. रात को आऊंगी. सामने से आते किसी वृद्ध को देख झट सिर का पल्ला नीचे खिसका, मुंह पर घूंघट डालते हुए मां ने कहा.

—अच्छी बात है मां, भाई ने उत्तर दिया और मां धीरे-धीरे गली में चली गयीं. मैं आश्चर्यचकित हो उसे देखती रही. जिनकी आंखों की बरौनियां तक सफेद हो गयी थीं, वह किसी वृद्ध को देख, जिसे शायद ठीक से दिखाई भी नहीं देता था, घूंघट में मुंह छिपा ले, यह मेरे लिए असाधारण आश्चर्य था. हम भी आगे बढ़े.

शाम के धुंधलके में हर घर उदास लग रहा था. हमारे स्वागत के लिए न तो किसी घर में चेतना का संचार हुआ और न ही कोई घर मुसकाया. इसी नीरवता और शून्यता के बीच भारी कदमों से हम अपने घर की ओर बढ़ रहे थे. सारा गांव शांत था. किसी-किसी घर में आग की छोटी-सी झलक खिड़की में से दिखायी पड़ती थी. जगह-जगह कुत्ते आंखें मींच सोये थे.

हम घर पहुंचे तब हमारी मां दरवाजे के पास बैठ माला फेर रही थीं. भाई तो हाथ का सामान नीचे रख तुरंत पैर छूने झुक गया, किंतु मैं मां को देखते ही बेतहाशा चौंक पड़ी. अभी-अभी मैं जिन कपड़ों में गोमी मां को देख आयी थी, बिल्कुल वैसे ही, बिल्कुल वहीं, उसी रंग के कपड़े मां पहने थीं.

★ ★

—हां बेटी, अपने यहां यही प्रथा है. बड़ी उम्र की विधवा औरतें ऐसे ही, एक जैसे कपड़े पहनती हैं. जीतू मा कह रहे थे.

तो मह वैधव्य-चिह्न है! मुझे मन में थोड़ी-सी कसक हुई. गहरे कत्थई रंग के कपड़े पहनी हुई कई औरतें रात को हमसे "मेड़ावा" (गप्पें लड़ाने) करने इकट्ठी होती थीं. लालटेन के मंद प्रकाश में, जो अंधेरे को और भी घना बना देता था, गहरे कत्थई रंग के कपड़े पहनी हुई वृद्धाएं बड़ी डरावनी लगती थीं. इसीलिए आखिर मैं एक दिन जीतू मा से पूछ बैठी. जीतू मा से दो दिन में ही मेरी अच्छी-खासी दोस्ती हो गयी थी.

धूप धीरे-धीरे आंगन से विदा ले रही थी. अनमनापन भी बढ़ता जा रहा था. ऐसे में खिमजी बापा (दादा) की बातों ने और भी अधिक उदास कर दिया. बातों ही बातों में उन्होंने कहा—हां बेटा, आदमी को तो जो भी कुछ मिलता है, उसी में से अपने छोटे-छोटे सुख बना लेता है. पर आज तो वह भी हमसे छिन गये हैं, कहते-कहते आंखें बंद कर बापा ने दीवार से पीठ टिका दी, जेठी मां भी दीवार के पास बैठी थीं.वह कुछ नहीं बोलीं. यों भी वे चुप थीं. खड़े घुटने पर रखी ठोड़ी के चारों ओर दोनों बाहें लिपटाये नीचे देखती हुई वह खामोश बैठी थीं.पर मुझे लग रहा था, उनकी वह खामोशी ही बहुत कुछ बोल रही है. दोपहर को हम गांव में निकल पड़ते. सारे गांव में दोपहर में ही आधी रात का-सा सन्नाटा छा जाता. घर से बाहर 'ओसरी' में ही हाथ से मक्खियां उड़ाते, मिचमिची आंखें बंद कर, धीमी-धीमी सांस लेते बूढ़े दामजी बापा, खिमजी बापा,रायशी बापा या मेघजी बापा में से कोई बैठा होता. पास ही मिट्टी में कान खुजलाता कुत्ता लेटा होता. हमें देख कर आंखें मींच पहचानने की कोशिश की जाती और फिर इधर-उधर की बातें, एक औसत स्वर में शुरू हो जातीं.

—अब तो दिन-ब-दिन यहां रहना मुश्किल होता जा रहा है. खेती की तो खैर बात ही जाने दो, दो-दो, तीन-तीन साल पानी न बरसने के कारण अब तो कुंए भी सूख चले हैं. कुछ देर बाद जेठी मां ने खामोशी तोड़ी.

मुझे एकदम से लगा कि ये सारी बातें जा कर बाई से बतानी हैं. उनसे कहना है, बाई, तुम्हारी आधी बात तो सच हो गयी है. तुम्हारे समय से तो आज कच्छ कितना ही बदल गया है. नल तो नहीं लगे, पर हां लगातार अकाल के कारण 'वाय' (कुंआ) के पानी जरूर सूख गये हैं. बिजली भी नहीं लगी. उसकी जरूरत भी नहीं. यहां तो अब सिर्फ वे बूढ़े ही रह गये हैं, जिनकी आंखें देख ही नहीं पातीं. पानी के घड़े सिर पर रख कर दौड़ने वाली उस समय की पनिहारिनें तो अब बूढ़ी हो चुकी हैं और उनकी बहू-बेटियां पतियों के साथ शहरों में जा कर बस गयी हैं.

—पर यहां न रहें तो और जायें भी कहां? बड़े लाचारी भरे स्वर में जेठी मां ने कहा तो मैं भी बेबसी से उनकी ओर देखने लगी. बुढ़ापे में शायद सबके चेहरे एक जैसे हो जाते हैं. झुर्रियों भरा, टिमटिमाते दीये-सी आंखों-वाला एक ही चेहरा मुझे हर धड़ पर लगा हुआ दिखायी देता और मेरे लिए दामजी बापा, खिमजी बापा, कुंवरजी बापा या सोमजी बापा के चेहरे में फर्क करना मुश्किल हो जाता. और तब मेरी घुटन और बढ़ जाती और हम घर लौटने लगते. लौटते में गांव के टूटे-फूटे बेबस घरों को देख, बाई की कही कुछ पंक्तियां याद आती रहतीं. किसी कवि ने कहा था—

धींगा धणी हली नेकर्या, मेडियुं माढ छड़ी
डेलियुं थेयुं डोरवाणेल, अंगण ओसियारा ओआ

(घर के शक्ति-संपन्न समर्थ घर वाले तो घर छोड़ चल पड़े. अब पीछे दुःख में डूबा घर और अनाथ आंगन खड़े हैं.)

अधिकांश घरों की दशा ऐसी ही थी और घर जैसे ही टूटे-फूटे बूढ़े पीछे घरों में रह गये थे.यह कहना मुश्किल था कि पहले घर गिर पड़ेगा या बूढ़ा चल बसेगा.

चेहरों को देख प्रतीत होता था कि शायद इस प्रदेश में धरती के स्वरूप और व्यक्ति के चेहरे में बहुत अधिक साम्यता है. सूखी धरती में पड़ी हुई दरारों का प्रतिबिंब हर चेहरे पर दिखायी दे रहा था. चारों और उड़ती रेत और असीम तक फैला रेगिस्तान. हवा की सांय-सांय, डरावनी आवाज और दूर तक फैली भयावह शून्यता, सांस रोक सन्नाटा, नीचे तपती धरती और ऊपर कभी-कभी गलती से बरसता आकाश, छोटे-छोटे पड़-पड़ करते मिट्टी के घर और मानो इन सबको मुंह चिढ़ाते, चुनौती देते, जीवन को जीने के संघर्ष में रत रहे यहां के लोग, छोटे-छोटे रंग-बिरंगे खूबसूरत खिलौने जैसे लोग. पानी न बरसने पर और अधिक विनीत और कातर हो कर ईश्वर से प्रार्थना करते, लाचारी भरे न कटते दिनों में, दुःखभरी बातें कर दिन काटने वाले, किसी साल पानी के बरसते ही जिंदगी के उल्लास से चेतन हो उठते यहां के ये लोग, आज न जाने किस शाप से पुरानी जर्जर सदियों में तब्दील हो गये हैं! मैं सोचती रहती.

रात को जीतू मा के साथ-साथ और लोग भी जमा हो जाते और देर तक बातें होती रहतीं. कच्छ के सिवा अन्य किसी स्थान से शायद इन लोगों का कोई नाता ही नहीं था, इसीलिए भाई की बातों में वे काफी रुचि लेते. शहर की बातों पर अविश्वास की हद तक आश्चर्य-चकित हो उठने वाले इन लोगों को देख तीसरी या चौथी क्लास में पढ़ी एक कहानी याद आती थी जिसमें प्रियंवदा के दादाजी कई वर्षों की नींद के बाद जब जागते हैं तो एकदम बदली हुई दुनिया को देख भौंचक्के रह जाते हैं.

इसी संदर्भ में मैंने बहुत दिनों से मन में चक्कर काटती बात चलायी—जीतू भा! कच्छ तो लगता है बिल्कुल बदला ही नहीं है. दूसरी ओर देखो सब कितना आगे बढ़ रहे है.

—हां बेटे, सुना तो था कि यहां भी धूल उड़नी बंद हो जायेगी और ताजी हवा आयेगी. राह भी देखते रहे थ, पर हवा आयी नहीं. सोच में डूबे से जीतू मा कहने लगे, कुछ लोग कहते हैं, हवा आयी तो थी, पर यहां पहुंचते-पहुंचते जहरीली हो चुकी थी. अतः जो थोड़ा बहुत जिंदा था, वह भी अब मर चुका है. हमेशा जिंदादिल दिखायी देने वाले जीतू मा का दर्द भरा स्वर भीतर सुलगती आग पर से राख हटा रहा था.

—इस मुरजी को ही देखो, शायद वही जहरी...

हवा इसे लग गयी है. अच्छा-खासा सीधा-सा लड़का था. बाप के न रहने पर कम उम्र में ही घर की जिम्मेदारी समझ, बंबई जा कमाने लगा था. पर स्वतंत्रता की, गांधीग्राम और 'मुडइ' के विकास की बातें सुन इसके मन में अपनी 'भोमका' (भूमि) का मोह जाग उठा. भारत के आजाद होते ही, दुकान समेट कच्छ लौट आया था. यही सोच कर कि अब तो यहां भी 'डार-मानी' (दाल-रोटी) लायक काम तो मिल ही जायेगा और अपनी भूमि की कुछ सेवा भी कर पायेंगे पर कुछ नहीं हुआ. हालत अधिक खराब होती गयी. और जब नये सरकारी नियमों के अनुसार तीन साल तक बिना बोया उसका खेत जब्त हो गया, तब पहली बार इसकी आंखों में पागलपन झलक उठा था. और बस तब से इस पागल मुरजी के रूप में बुढ़िया के लिए जीती-जागती चिंता खड़ी हो गयी है. जीतू मा के कथन में मुरजी की स्थिति के प्रति सहानुभूति से अधिक व्यवस्था के प्रति रोष झलक रहा था.

गोमी मां ने सिर उठा कर देखा—पागल की क्या चिंता करें भाई? सयाना होता तो चिंता भी होती, शादी-ब्याह की, बढ़ते परिवार की सारी चिंताओं से मुक्ति मिल गयी. अब तो बेटे आराम है. कहते-कहते गोमी मां की बूढ़ी आंखों में आंसू छलक पड़े. उन्हें देख न जाने क्यों मुझे बड़ी जोर से बाई की याद आने लगी. गोमी मां की हालत देख भाई ने दो-एक दिन में हमारे लौटने की बात छेड़ दी.

मां ने चम्मच भर दही मुंह में डाला और गुड़ की डली मुंह में डालती हुई हिदायत देने लगी कि एक बार घर से बाहर निकलने के बाद हम पीछे मुड़ कर न देखें. चलने की सारी तैयारियां हो चुकी थीं. उसी समय जीतू मा आ गये. निकलने से पूर्व भाई ने झुक कर जीतू मा के पैर छुये तो मैं भी उनके पैरों की ओर झुकी. बिच्छू के डंक लगने के समान एकदम उछल कर वे पीछे हटे—अरे, अरे बेटा! तू त असां के पाप में वेजेंती (अरे, अरे बेटा! तू तो हमें पाप में डाल रही है.) एकदम बौखलाये हुए स्वर में उन्होंने कहा. उनके एकदम उछलने और बौखलाने से मैं इतना तो समझ गयी कि यह महज औपचारिकता नहीं है बल्कि जरूर मुझसे कोई गलती हो गयी है. मैं अपराधी-सी उनकी ओर देखने लगी. मेरी अज्ञानता शायद उन्होंने पढ़ ली थी.

—बेटी, अपने यहां लड़की सिवा पति के कभी किसी पुरुष के पैर नहीं छूती. वह सबसे पहले मां मानी जाती है. और मां कहीं बच्चों के पैर छूती है? कहते-कहते वे ही मेरे पैरों की ओर झुक गये. मैं अचकचा कर, पीछे हटी, पर तब तक वे पैर छू चुके थे..

—बेटी, तू हमारी बेटी बाद में है, पहले तो मां है, सम्मानपूर्वक स्वर में जीतू मा ने कहा, तुम लोगों को यह बात किसने पढ़ायी जीतू मा. मैं मन-ही-मन पूछ रही थी, भीतर तक भीगी हुई.

सामान पर एक नजर डाल, हम घर से बाहर निकले. आगे मोड़ पर खड़ी छोटी-सी भीड़ हमारे साथ चली, हमें बस तक छोड़ने के लिए.

—बेटा अब जल्दी-जल्दी आना.

—इतनी देरी मत लगाना.

—बाई-अचा को भेजना.

—हम तो तुम सबको देखने को तरस जाते हैं.

—जल्दी आना बेटा फिर, क्या पता अब हम कितने दिन रहें!

सिर और पीठ पर घूमते हाथों के भीगे स्पर्श और भीगे हुए कई स्वर मुझे व भाई को नहलाते रहे. रूमाल से नाक व आंखें पोंछती हुई मैं सिर्फ सिर हिला-हिलाकर उत्तर देती रही. और उस समय तो मैं अवाक रह गयी जब औरतें पांच, दस पैसे या चार आने के सिक्के मेरी मुट्ठी में बंद करने की कोशिश करने लगीं. मुझे हाथ पीछे करते देख कह उठीं—तू पहली बार यहां आयी है बेटी, देना तो और भी बहुत चाहिए, पर अभी तो इतना ही है बेटे; यह तो तेरा हक है.

मुझे लगा उन हथेलियों पर पड़े पांच और दस पैसे के वे सिक्के हमारी सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था को, हमारे सारे संस्कारों को मुंह चिढ़ा रहे हैं.

और वापस लौटती बस में बैठे-बैठे मैं सोचती रही कि '**कच्छ सेठो मेराण, असांजे कच्छ वेनधार्सी**' गुनगुनानेवाली बाई को जा कर क्या कहना है? □□□

हाथ का पानी

• माधुरी शाह

—मैं और कितने दिन जीऊंगी. पासुआ! यहीं रहने दो मुझे. तुम्हारी सेवा-करते करते बाकी दिन आसानी से कट जायेंगे. असलम और उमर जैसे दो जवान बेटों की मां आसबाई आंचल पसारे हाथ जोड़ कर पासुभाई और तेजबाई से विनती कर रही थी क्योंकि असलम तो मां और वतन को छोड़ कहां चल पड़ा था, पता ही नहीं लगा और उमर को भूख खा गयी. अब आसबाई को किसी सहारे की जरूरत थी.

पासुभाई और तेजबाई असमंजस में पड़ गये—तुम इस घर में रहो, इसमें हमें कोई एतराज या कठिनाई नहीं है. पर तुम्हारा निर्वाह यहां कैसे हो पायेगा. तुम्हारा खान-पान, रहन-सहन. . .बड़े हिचकिचाहट भरे स्वर में पासुभाई कहने लगे, तो आसबाई उनका इशारा समझ गयी.

—भाई, मुझे तो दो वक्त पेट भरने से काम है. चाहे वह मांस से भरे, चाहे रोटी से. मैं आज ही तुम्हारे सामने हाथ में पानी ले लेती हूं कि आज से मांस को हाथ भी नहीं लगाऊंगी.

उसके बाद पासुभाई और तेजबाई ने उसे उसकी मृत्यु तक अपने घर रखा और उसने मृत्यु तक हाथ का पानी नहीं छोड़ा. □

कच्छी लोककथा

क्षत्राणी का स्वाभिमान

धरण वाघेला की असाधारण रूपवती कन्या धारीणी देवी से ब्याह करके फूलकुमार धन्य हुआ. पति-पत्नी चौपड़ खेलने बैठे तो बाजी जीतते-जीतते धारीणी पांसा फेंकते हुए कहती जाती थी—चल पांसा, मेरे पिता की चाल! तो वह गुस्से से उठ खड़ा हुआ.

एक बार जब वे दुबारा खेलने बैठे तो खेल में विजयी धारीणी ने पहलेवाली बात हंस कर दुहराई. इस पर फूल क्रोध से पुनः उठ खड़ा हुआ. जिस रूप के पीछे वह पागल था, वह अब उसे जहर जैसा लगने लगा. धारीणी चाहती तो बात का बतंगड़ बनने से पहले उसे मना सकती थी. उधर फूल के मन में भी स्वाभिमान फुफकार करता गया, ठान लिया कि धरण वाघेला को मार कर ही वह धारीणी से कहेगा—देख लो, धरण का पांसा कैसा पड़ा है!

किंतु धरण को कैसे मारा जाये? एक दिन योजनानुसार फूलकुमार के साथियों ने घेरकर उसे जीवित ही पकड़ लिया. फूलकुमार ने धरण की हत्या करवा कर शरीर से चर्म हटवाकर उसके सिर को काटकर सुरक्षित रख लिया और कुछ दिन उपरांत रानी को संदेश भेजा—बहुत दिनों से चौपड़ नहीं खेला, खेलने आ रहा हूं.

धारीणी अत्यंत स्वाभिमानी थी. उदर में फूल का उत्तराधिकारी आकार ले रहा था. फूल को इस बात का पता था, फिर भी उसने उसकी खोज-खबर नहीं ली थी, इससे वह दुखी थी.

ऐसे में संदेश पाकर हर्षित हुई. उसने यह भी तय कर लिया कि आज वह जानबूझ कर बाजी हार जायेगी.

नियत समय पर फूलकुमार दलबल सहित आ पहुंचा तो धारीणी को अच्छा न लगा; फिर भी उसने उसका माला पहनाकर स्वागत किया. साथ ही उसकी आंखों में, पिछली बातें याद कर के, अश्रु छलक पड़े. फूलकुमार ने माला पहनाते उसके हाथों को झिड़कते हुए कहा—क्यों मेरा आना अच्छा नहीं लगा, रुलाई आ रही है!

यह सुनते ही धारीणी के मन से उसके प्रति अच्छी भावनाएं लुप्त हो गयीं. किंतु पहली ही बाजी वह हार गयी. दूसरी बाजी में पांसा फेंकते हुए फूल ने कहा—तुम्हें जीतना हो तो मुझसे सीखना होगा, धरण वाघेला की चाल काम नहीं आयेगी.

धारीणी सावधान थी किंतु यह सुनते ही उसका मन बेकाबू हो गया. बाजी वह जीत गयी और उठ खड़ी हुई.

—क्यों हारने का डर लग गया? जीतना हो तो शान से जीतो, फूल की तरह...

पेट में असह्य पीड़ा होने पर भी वह पुनः खेलने बैठ गयी.

फूल प्रत्येक बाजी जीतता जा रहा था और उस पर नशा चढ़ता जा रहा था—अब बंद कर दें न? तुम्हारे बस का अब नहीं न?

उसे शरणागत देखकर फूल रंग में आ गया—धरण वाघेला की बेटी बुरी तरह हार गयी!

धारीणी ने दांत पीसा और नीचे पड़ा हुआ पांसा हाथ में लेकर बोल पड़ी—इस भूल में न रहो, राजा! धरण वाघेला की बेटी आधे खेल में हार नहीं मानने की!...और उसने पांसा फेंका. आज भाग्य उसके साथ नहीं था पांसा ठीक नहीं पड़ा. फूल ने हंस कर कहा—फेंकते समय बाप का नाम नहीं लिया था न!

और वह पुनः हो-हो करके हंस पड़ा.

यह सुन कर और उसकी व्यंग्य भरी हंसी देखकर धारीणी आपा खो बैठी, पांसा फेंककर बोली—चल, धरण वाघेला की चाल!

यह सुनना था कि फूल कह उठा—धरण वाघेला की चाल देखनी हो तो जिस आसन पर बैठी हो, उसे जरा ध्यान से देखो.

बात धारीणी की समझ में नहीं आयी किंतु जब उसने वही बात दुहरायी तो वह उठ खड़ी हुई, और चादर उठा कर जो देखा तो...

उसकी रगों का रक्त मानो जम गया, फटी आंखों से वह देखती रह गयी—पिता का मृत चेहरा! तो उसका इस कदर अपमान!

उसका शरीर थरथर कांप रहा था. अपने वस्त्रों में छिपी कटार उसने निकाल ली...

बैर के नशे में फूल यहां तक बढ़ चुका था किंतु धारीणी स्वयं की हत्या कर ले, यह उसे स्वीकार्य न था. उसका कटारवाला हाथ पकड़ कर उसने कहा—नहीं, रानी...

किंतु धारीणी हाथ छुड़ा कर दूर जा खड़ी हुई. उसका कटारवाला हाथ पुनः उठ चुका था और कलेजे के आरपार होने ही वाला था कि फूलकुमार चिल्लाया—अपनी जात पर तुम जुल्म भले कर लो किंतु दूसरे जीव पर नहीं कर सकती हो! मरना ही हो तो मरो किंतु मेरी धरोहर मुझे सौंपने के बाद!

किंतु धारीणी का निश्चय कुछ और ही था. वह तत्काल बोल उठी—तुम्हें चाहिए न तुम्हारी धरोहर, तो लो!

और स्वयं के पेट को कटार से चीरकर उसमें से गर्भ को बाहर करती हुई वह बोल पड़ी—लो, सम्हालो अपनी धरोहर!

और इसके साथ ही निढाल होकर वह गिर पड़ी. □□□

(प्रस्तुतीकरण : मूलराज रूपारेल, अनुवाद : अलका सिंह)

क्या आप सिर्फ़ देखकर कपड़े की उत्कृष्टता परख सकते हैं?

जी हाँ। हम आपको बताते हैं कैसे।

सीधी-सी बात है। बस यह इत्मीनान कर लीजिये कि कपड़े पर 'टेरीन'® ट्रेडमार्क है। क्योंकि इसका अर्थ यह है कि आप ऐसा पॉलिएस्टर कपड़ा ख़रीद रहे हैं जिस की जाँच-परख पहले ही हम– पॉलिएस्टर रेशे 'टेरीन' के निर्माता केमिकल्स एण्ड फ़ाइबर्स ऑफ़ इंडिया लिमिटेड (कॅफ़ी)– कर चुके हैं। अनेक जाँचों में से एक है 'क्रीज़' अवरोध जाँच।



इस जांच से हमें २ मिनट में मालूम हो जाता है कि दिनभर की भाग-दौड़ के बाद आपके कपड़े कैसे दिखाई देंगे।

हम कपड़े का एक नमूने का टुकड़ा लेकर उसको तह करके अपनी 'शर्ली क्रीज़ रिकवरी टेस्टर' मशीन पर रखते हैं। फिर इस पर एक मिनट के लिए भारी वज़न रखा जाता है। कपड़े को अपनी पहली हालत पर आने के लिए एक मिनट का समय दिया जाता है। अगर कपड़ा हमारे मानदंड पर पूरा नहीं उतरता तो उसे 'टेरीन' ट्रेडमार्क नहीं दिया जाता।

शिव निर्माल्य

सरोज पाठक

पुष्पु वैसे तो नेपथ्य में ही रहता. पर्दा खुला तथा नाटक शुरू हुआ कि उसका काम शुरू. वैसे तो संवाद उसे मुंहजबानी याद हो जाते थे, अतः प्रोंप्टिंग वह बिना स्क्रिप्ट के भी कर देता.

कौन-सा पात्र कहां भूल कर रहा है, यह उसे तुरंत पता चल जाता. ऐसे वक्त प्रोंप्टिंग की कला के साथ उसकी सोलह कलाएं प्रस्फुटित हो उठतीं. नाटक के समय किसी भी प्रकार की कठिनाई उपस्थित हो, पुष्पु का होना अनिवार्य बन जाता. एक विंग में से दूसरी में छलांग लगा कर, मौका पड़ने पर चाहे जिस पात्र की प्रोंप्टिंग करनी हो वह चुटकियों में कर आता. कई बार तो स्टेज पर कोई सामग्री दृश्य अनुकूल छूट गयी है या फिर भूल से रह गयी है, उसे भी वह बड़ी चतुरता से रफादफा करने में गजब की सूझ-बूझ प्रदर्शित करता था.

'रामायण' के सीता-हरण वाले दृश्य की रिहर्सल में हमेशा रावण-सीता लड़ पड़ते. 'सीता' शिकायत करतीं—मैं वाक्य बोलूं या न बोलूं. इनको तो हरण करना है न? ये रास्ता किस बात का देखते रहते हैं? तुम्हारी अपेक्षा तो राम भले हैं, वे 'सीता'! 'सीता'! विलाप करते हुए तुरंत खोजने निकल पड़ते हैं!

तब से रावण दृश्य के समय तुरंत हरण कर के ले जाता, बिलकुल रास्ता न देखता कि सीता अपना वाक्य बोलती है या नहीं, पुष्पु देखता रहता, जैसे ही सीताजी अपने संवाद में कुछ अटकीं . . .वह सब संभाल लेता, और सीता का हरण कब हो, यह उसके हाथ की बात हो गयी थी और रावण उसका इशारा पाते ही . . .

'शिव निर्माल्य' नाटक की पंद्रहवीं रात तक तो पुष्पु को उस नाटक के सारे संवाद कंठस्थ हो गये थे. कई बार उसकी इच्छा होती कि कोई भी पात्र किसी भी रूप में बीमार पड़ जाये या गुस्सा हो जाये या फिर चला जाये तो . . .तो एसी आफत को भी वह सीना तान कर दूर कर सके और अपनी काबिलियत का झंडा और मजबूती से गाड़ सके!

'शिव निर्माल्य' नाटक में ज्यादा से ज्यादा संवाद स्त्री पात्रों को ही बोलने होते थे. पुरुष के हिस्से में अन्याय सहन करना, मौन वेदना की घुटन में तड़पना, हुक्म मानना और अंत में निराश हो कर इस नाटक के नायक को एकाकी, संपूर्ण वेदना को अपने चेहरे की भाव-भंगिमा द्वारा 'अभिव्यक्त कर, निश्वास छोड़ते हुए खड़े रहना था और इस प्रकार बोलना था! यह सब पुष्पु को बड़ा सहज लगता था अगर उसे यह पात्र अभिनीत करना पड़े . . . . ! . . . परंतु . . .

—मेरा भी एक नाम है जिसे मां बाप ने दिया, शिक्षा-दीक्षा ने उसे अपनाया, शादी के पश्चात् पति ने दुलराया, सरनेम बदल गया तो क्या, किंतु नाम तो है मेरा अपना ही . . . मिस्टर पार्थ सारथी!

तूफानी बरसात से और भयंकर आंधी से गिरते-पड़ते वृक्षों के धराशायी होने का प्रभाव स्टेज पर नेपथ्य से अपनी सधी आवाज से पैदा करना पुष्पु का दायें हाथ का खेल था. सब कुछ इतना स्वाभाविक बन पड़ता था जैसे सचमुच आंधी चल रही हो, भयंकर बरसात गिर रही हो और यह सब स्वर का आरोह-अवरोह संवाद बोलने के तुरंत बाद ही उत्पन्न करना पड़ता था. यह पुष्पु की सबसे बड़ी खूबी थी.

. . .बरसों की वफादारी, प्रेम के अटूट गठबंधन को जन्मजन्मांतर का संयोग मान कर हाथ में हाथ डाल कर जीने वाली स्त्री सहसा अनौपचारिक क्रूरता के साथ अपने नाम के साथ जुड़े पति के नाम 'पार्थ सारथी' को थूंक की तरह फेंक दे तो बेचारा नायक कैसे और किस तरह अपना मुंह छिपाये? इस ऐक्टिंग, . . .इस मौन वेदना को प्रकट करने के लिए लेखक को कुछ पंक्तियां जरूर लिखनी चाहिए थीं, . . .किंतु लेखक ने नायक की इस मौन वेदना को मुखरता प्रदान करने के लिए कुछ भी नहीं लिखा, इसलिए कुछ प्रोंप्टिंग भी नहीं करनी थी. पुष्पु नायक को मूक अभिनय करते देखता रहता.

नाटक की दुनिया ही कुछ और है. 'भ्रमर न्याय की तरह' अच्छा हुआ कि. . पुष्पु ने अपने मन को



सरोज पाठक (जन्म : १९२९, जखो कच्छ) ने अपनी साहित्यिक गतिविधियां १९४६ से प्रारंभ कीं. इनका पहला वार्ता-संग्रह 'प्रेम घटा घिर आयी' १९४९ में प्रकाशित हुआ और इसे महाराष्ट्र सरकार की ओर से पुरस्कृत किया गया. इनके कहानी-संग्रह 'विराट-टपकुं' को भी पुरस्कार मिल चुका है. इन्होंने जिंदगी के यथार्थ को अपने कथ्य के रूप में स्वीकारा है.

समझा लिया,. . .उसका भी दिल एक लड़की के साथ जरा लग गया था. लड़की सच्ची थी या झूठी, यह तो ईश्वर जाने पर पुष्पु के लिए तो वह अच्छी ही कहलायेगी. पुष्पु के घर में खुद की पत्नी थी. किंतु नाटक का काम ऐसा था कि इस गांव से उस गांव बस घूमना ही घूमना. पिछले डेढ़ साल से पारिवारिक जीवन तो जैसे रह ही नहीं गया था. पत्नी जहां रहती थी, उसी गांव में पुष्पु की एक प्रेमिका भी रहती थी बेचारी. यह सब होते हुए भी इस नाटक की एक लड़की ने उसके मन में अपने लिए आकर्षण पैदा कर दिया था. किंतु एक दिन इस नाटक को लड़की ने अपने मन की बात कह दी थी.

—देखो पुष्पु, इस नाटक में तुम्हारी कितनी ज्यादा आवश्यकता पड़ती है. अगर तुम्हारी मदद न होती तो यह नाटक सफल ही न होता. . .सच तो यह है कि मैं तुम्हारे मोह में पड़ गयी थी. मैं विवाहित हूं. मेरा कैरियर भविष्य में क्या होगा, क्या कह सकती हूं. . . तुम भी शादीशुदा हो, इस मोह में . . .मोह. . .अच्छा हो हम लोग प्रेम-वेम के ढकोसले में न पड़ें. यह मीठा संबंध साथ में काम करने भर तक ही समझो. आगे कुछ नहीं .

यह सब गीता-प्रवचन उसकी समझ में आ गया. यह नाटक की लड़की उसे गृहस्थ मानती थी और स्वयं. . .प्रेम कैसा था, यह उस लड़की ने ठीक से समझा दिया था. प्रेम तो पीतल और सगाई सोना है. . .नाटक के संसार में सब कुछ नाटक होता है, घर-गृहस्थी का तीरथ नहीं हो सकता —

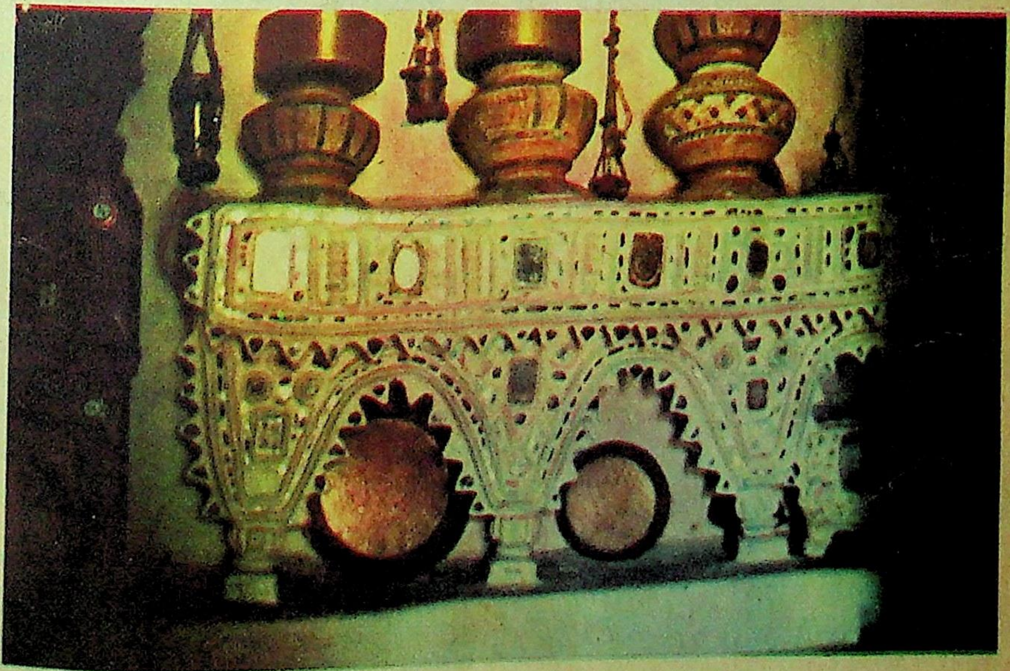
बेचारी पत्नी. डेढ़, दो साल में उसने पत्नी की खूब उपेक्षा की थी. अब पुष्पु चाहता था, एक बार छुट्टी लेकर घर हो कर आये.

अब तो गांव की वह लड़की षष्ठी भी बी. ए. पास हो गयी होगी. सबसे ज्यादा खूबसूरत, थोड़ी औरों से एडवांस भी है. एडवांस ही है नहीं तो पुष्पु को कोई खड़े होने देता और फिर पुष्पु तो बिल्कुल रमताराम है, आज यहां कल. . .

'शिव निर्माल्य' की रिहर्सल चलती रहती थी और वह यंत्रवत् प्रोम्प्टिंग करता रहता. सब कुछ बड़ा ठहरा-सा प्रतीत हो रहा था. गांव की लड़की षष्ठी अकसर याद आ जाती, पत्नी भी.

नायक की दाढ़ी कांपती है; भ्रमर की तरह वह उत्तेजित कली को मसल देने की दुबिधा में अचकचा जाता है, तभी प्रोम्प्टिंग वाक्य पुष्पु नेपथ्य से फेंकता है व नायिका उसे लोक लेती है. फिर बोलती है. . .शरण आई हुई मेरी विधवा मां को तुमने ही बिगाड़ा था, याद है न ! . . .

उसका मुंह बंद करने के लिए नायक एकदम दांत किचकिचा कर उसकी ओर दौड़ पड़ता है. और उसके कुछ कहते न कहते . . .तब पत्नी बोल उठती है—उस नाटक में तुम्हारे इस जहरीले स्पर्श से मैं ऊब गयी हूं. दूर हट जाओ मेरी नजरों से! यह नदी का एक किनारा या रेस्टोरेंट नहीं है. यह मेरा घर है. अब मैं त्यक्ता किंतु मुझे या मेरी वेदना को तुम्हारी दया भी नहीं चाहिए. न मैं किसी तरह का और अपमान सहन कर सकती हूं. अपने बच्चों के लिए मैं मां हूं और मैं ही उनके लिए बाप बन कर दिखाऊंगी. मैंने अब निर्णय कर लिया है, आप मेहरबानी करके चले जाइए.



पुष्पु ने पन्ना उलटा...

मानो लहू जम गया हो, ऐसे नायक बैठा रह गया. ...र्व से दिलरुबा की चीत्कार करती हुई स्वर लहरी ... उठी. पूर्ण-विराम की जगह एक तर्ज...दूसरी ...र्ज. नायक पुरुष पर जैसे किसी चीज का असर हो ...ा हो. स्पाट में उजाला, और जहां आवाजें कुछ ...मी होती थीं, या सुर कुछ अस्फुट, वहां नायक कुछ ...ने के लिए अपने होंठ खोलता है. हाथ ऊंचा करता ...और अंक पूरा हो जाता है...

★ ★

पर्दा खुलता है, आधुनिका दृढ़ता से होंठ भींचे हुए ...ड़ी है. अपने मन की सारी भड़ास व्यक्त कर दी, फिर ...राश जड़वत् हो गये पुरुष को एक गठरी के समान ...छोड़ते हुए क्षण भर उसे देखती रही.

पुष्पु ने स्क्रिप्ट के पन्ने पलटे. पुरुष के अहम् और ...ामित्व की ग्रंथि को पुराने वस्त्रों की तरह फाड़ ...र फेंक देने के पश्चात् आर्त नारी स्वर उठा—स्त्री के ...हम् को तुमने नहीं समझा. अपना सब कुछ अर्पण कर ...मी मुझे प्रत्येक पल अधूरा लगा. प्रेम शब्द ने मुझे ...मी साहस नहीं दिया, मैं असहाय नहीं हूं, यह एहसास ...झे कभी प्राप्त नहीं हुआ.

एक भारी निश्वास के पश्चात्—मेरी पढ़ाई-लिखाई ...मी भी मेरे साथ है, वही मेरा भविष्य है परंतु...प्रेम ...ी व्याख्या अब बदल गयी है, मैंने प्रेम को दौलत माना ...ा किंतु...तुम्हारे प्रेम में वह ताकत नहीं है. तुम ...ासना के कीड़े मात्र हो और उन कीड़ों का शरीर पर ...गना अब सहनशक्ति से परे है. जिस प्रेम को कवियों ने ...ाया है, ऐतिहासिक प्रेमियों ने खूबसूरत मकबरे बनाये ..., उन्हें मैं पत्थर मार कर तोड़ देना चाहती हूं.

...मुझे मुक्ति चाहिए. मैं अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व ...े प्यार करती हूं. मैं प्रेम के बिना जीवन जीना पसंद ...करूंगी. प्रेम की किसी भी चेष्टा, किसी भी अदा से अब ...मैं नफरत करती हूं...मैं ऐसे आदमी को पसंद करूंगी ...जो मुझे मेरा घर दे, भले प्रेम दे या न दे...

पुष्पु दर्शकों की तालियों की गड़गड़ाहट का रास्ता देख रहा है. अगर वह छुट्टी ले कर घर जाये और जिस दिन वापस आये उस रात भी 'शिव निर्माल्य' खेला जा रहा हो तो घर जाकर वह वापस आया है या अभी छुट्टी लेकर घर जाना बाकी है, उस दुबिधा में अगर वह प्रोंटिंग करना भूल जाये तो उसका क्या दोष? कभी-कभी स्टेज पर ऐसा होता है कि कलाकार अक्षरशः संवाद नहीं बोल पाते, वे विचार जान लेते हैं और उसी को फिर अपने शब्दों में व्यक्त करते हैं, तब भी नाटक हो सकता है. पुष्पु ने यह सब भोगा है. वह जहां तक हो सकता है लिंक देता है और पिछले वाक्यों से अगर लिंक न मिले तो सामने वाला पात्र बोलने में अचकचा जायेगा.

परन्तु 'शिव निर्माल्य' नाटक में पुरुष पात्र को 'लिंक' की खास जरूरत नहीं पड़ती थी. ज्यादा स्त्री पात्रों को ही बोलना था. पुष्पु को मात्र पन्ने पलटने होते थे कि कहां तक संवाद हो गये हैं? वह सोचता नाटक का नायक तीनों पात्रों के द्वारा लांछित हो कर आयेगा तभी सच्चा 'शिव निर्माल्य' हो कर रंगमंच पर हाथ हिलाता हुआ खड़ा रहेगा और करुण स्वर में दिलरुबा के तार झनझना उठेंगे.

जब वह पत्नी के पास जाकर खड़ा होता है तो पत्नी का उत्तर मिल जाता है. यह दृश्य पूरा होने के पश्चात् वह प्रेमिका के पास जाता है.

'प्रेमिका!' जन्म-जन्मान्तर तक एक साथ रहने की कसम खाने वाली प्रेमिका की मोह-निद्रा भंग होती है और उसके भी जवाब नुकीले पत्थरों की तरह उसके हृदय को छलनी कर देते हैं. वह वहां से भी भागता है.

अंत में तीसरा, सबसे आखिरी पड़ाव आता है, नायक के हृदय परिवर्तन हेतु ही वह लड़की जैसे बनी हो, उसके पास जाता है. उसकी सच्ची भावनाओं का अभिनंदन करना चाहता है, उससे सहारा पाना चाहता है किंतु...

तब उसके कानों में आखिर के ये शब्द पड़ते हैं:

'पराधीनता, समर्पण और विश्वास की भी एक सीमा होती है. मेलोड्रामा की मुझे खूब समझ है. मर्द हो कर, माथे पर हाथ रख कर रोने जैसा मुंह बना रहे हो? इससे तो अच्छा होता कि मुझे विलेन से मुहब्बत होती. तुम्हारे साथ दुश्मनी करना बेवकूफी होती और दोस्ती...अत्याचार बन गयी है, ऐसा मुझे लगता है.

ट्रेन आने का तथा आ कर चली जाने का इफेक्ट नेपथ्य में पैदा करना था तथा भक-छुक-भक-छुक के साथ उठती हुई चिंघाड़ती सीटी के माध्यम से पूरा जीवन हिल उठा है, यह इफेक्ट भी देना था. ऐसा ही इफेक्ट जब रावण सीता का हरण कर के ले जा रहा होता है, तब 'ड्रम' पर लकड़ी से पीट कर तथा राक्षसों का अट्टहास व आंधी के वेग का, आवाज द्वारा इफेक्ट पैदा किया जाता. पुष्पु किसी भी तरह का इफेक्ट पैदा करने में या प्रोंप्टिंग करने में भूल न करता और जो काम उसे नेपथ्य में मूक हो कर करना पड़ता था, वह भी वह सही रूप में करता रहता, भले उसके जीवन में भारी उथल-पुथल हो गयी हो...वह घर जा कर वापस आ 'शिव-निर्माल्य' नाटक की नेपथ्य में प्रोंटिंग करने बैठे तो उसे ऐसा ही लगता, कि—

ओहो! यह तो बिल्कुल ऐसा ही है! लेखक ने वैसा ही लिखा है जैसा उसके...! कलाकार कोई गलती न करें, वैसा ही बोलें, पुष्पु को यह ध्यान रखना है. परंतु उस दिन उसे ऐसा महसूस हुआ कि 'शिव-निर्माल्य' नाटक में अगर नायक के मुंह से कुछ कहलवाया होता तो कितना अच्छा होता. या नाटक के अंत में नायक रावण की तरह हो गया होता तो? रावण की तरह चिल्लाकर, चोटी पकड़ कर पहली नायिका का हरण कर लेता तो?

किंतु नाटक में ऐसा हो सकता है क्या? ऐसा नहीं हो सकता.

जीवन में ऐसा हो सकता है! ऐसा हुआ होता? किंतु पुष्पु तो बेचारा नाटक का आदमी है. उस पर भी नेपथ्य में रहने वाला, गौण अंश! उसका काम तो सिर्फ प्रोंप्टिंग करना था... □□□

(अनुवाद : चित्रा मुद्गल)

चरवाहे का सौदा

गांव के एक जमीनदार की तेज घोड़ी को देख कर भेड़-बकरी वाले चरवाहे को भी घोड़ी लेने का दिल हुआ. अपनी इच्छा को वह रोक न सका. वह जमीनदार के पास गया. अपनी सारी भेड़-बकरियों के बदले में उसने घोड़ी मांगी.

जमीनदार ने कहा कि तेरी भेड़-बकरियों की कीमत इतनी नहीं कि मेरी घोड़ी तू ले सके. हां, ऊपर से अगर सौ "कोरी" देगा तो सौदा मंजूर.

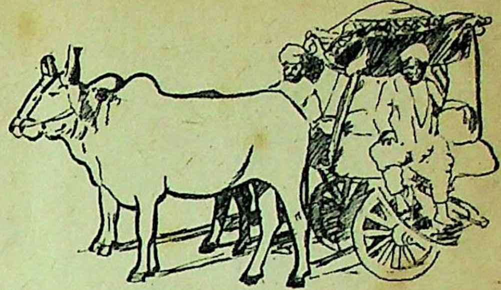
बकरी वाले की इच्छा इतनी तेज थी कि उसने शर्त मंजूर कर ली और अपनी सारी भेड़-बकरियां जमीनदार को दे कर घोड़ी ले आया. अब उसके पास कुछ न रहा. इस तरफ जमीनदार पैसों के लिए दबाव डालने लगा. घोड़ी रखने का उत्साह अब तक खतम हो गया था. जमीनदार की रोज की धमकिओं से डर कर उसने बाकी पैसों के बदले में घोड़ी वापस कर दी. इस तरह घोड़ी की कीमत में भेड़-बकरियां गयीं और बाकी पैसों में घोड़ी भी गयीं. □

सत्यानाश और रुपया

कच्छ के एक गांव में एक बेवा औरत अपनी जवान बेटी के साथ रहती थी. पैसों के लालच में आ कर उसने मांडण नामक एक दलाल की सहायता से अपनी बेटी का ब्याह एक बूढ़े के साथ कर दिया.

बेटी जब ससुराल से लौटी तब मां ने कहा—
—बेटी, आ मेरे गले लग जा. बेटी ने कड़ुआहट के साथ कहा—मैं तो बूढ़े को गले मिल के आयी हूं !

बेटी के रोने से द्रवित हो कर मां ने कहा—
हाय, ये मांडण ने तो सत्यानाश कर दिया.
—मां ! किसी को दोष देने से क्या फायदा ? सत्यानाश तो रुपयों ने कर दिया ! □



मूंठ और ऊंट

एक मियां थे. काम था तिल का तेल निकालने का. हर एक ग्राहक के टिल में से एक मुट्ठी तिल चुराने की उन्हें आदत थी. एक-एक मुट्ठी करके उसने अच्छे पैसे बनाये और एक ऊंट खरीदा. और खुश हो कर गीत गाते-गाते अपनी तेल की घानी चलाने लगा.

थोड़े दिनों के बाद अचानक ऊंट बीमार पड़ा और काफी इलाज के बावजूद मर गया. और मियां पहेले जैसे बन गये.

लोग कहने लगे—'मियां ने मारा 'मूठ', से, अल्लाह ने मारा ऊंट से. □

गरीब का खाना

गरीब मां ने बालक को सूखी रोटी परोसी.
बालक—मां मक्खन?
मां—मक्खन बिगाड़े लक्खन, बेटा !
बालक—तब खीर ?
मां—खीर जींदा पीर! वह नहीं मांगते.
बालक—मां तब दहीं?
मां—दही नहीं सही, प्यारे!
बालक—तब मां, घी?
मां—घी, बदन में घसता जी.
थक-हार कर—
बालक—तब मां. छाय ? (छाछ)
मां—छाय तो मेरा प्यारा लाल खाय!
झट से पड़ोस से मांग कर लायी पानी जैसी छाछ मां ने परोसी.

□ कवि दुलेराय काराणी

ून, १९७२ से सारिका में इस महत्वपूर्ण ेखमाला की शुरुआत हुई थी और अब क आप इसमें हरिशंकर परसाई, ानी, से. रा. यात्री, राही मासूम रजा, मोहन राकेश, भीष्म साहनी, चंद्रकांत क्षी, शैलेश मटियानी, मधुकर गंगाधर, ईश्वर वंदर, शांतनु आचार्य, कृष्णा सोबती, मधुकर सिंह, इब्राहीम शरीफ, रवींद्रनाथ त्यागी, फिक्र तौंसवी, दामोदर सदन, हृदयेश, राम-सरूप अणखी, एस. टी. वासुदेवन नायर, कृष्णप्रसाद मिश्र, श्रीलाल शुक्ल, रॉबिन शा पुष्प, राजेंद्र यादव, दीप्ति खंडेलवाल तथा श्रवण कुमार की आत्म-रचनाएं पढ़ चुके हैं. तमाम संघर्षों, व्यक्तिगत तनावों और दुख-सुख के क्षणों के बीच से गुजरते हुए कोई प्रतिभा किस तरह रचनात्मकता ग्रहण करती जाती है और सामान्य व्यक्ति के रूप में किस तरह संघर्षरत रहती है—इसी संघर्ष-शील यथार्थ का निरूपण करने वाली, प्रख्यात लेखकों की आत्म-रचनाएं, इस स्तंभ के अंतर्गत दी जा रही हैं. इस अंक में पढ़िए हिंदी कथाकार अजित पुष्कल की यह आत्मरचना.

आत्मरचना (३०)

गर्दिश के दिन

• अजित पुष्कल

महीने भर बाद जब आज फिर से कुछ लिखने की आहट अपने अंदर महसूस कर रहा हूं तो अपनी ही कविता उभरती है. मैं उसी कविता से अपनी बात की शुरुआत करना चाहता हूं.

जिस दिन मेरा जन्म हुआ
उस दिन
किसी महाकवि की मां के पेट में दर्द था
और वह मेरे जन्म के
दो दिन बाद पैदा हुआ.

सीधा-सा क्रम है. जन्म. फिर संघर्षजन्य अनुभवों की पीड़ा. तब रचनाकार का अभ्युदय. अपने होने का एहसास ही जन्म की सार्थकता का एहसास है. अपना जन्म-स्थान और जन्मतिथि तो सभी को याद रहते हैं. मुझे भी याद है. बांदा जिले के पैगंबरपुर गांव में एक खेतिहर परिवार में पैदा हुआ. खास बात यह थी कि उस दिन सिद्दत की गर्मी थी. मेरे गांव के पहाड़ का जर्रा-जर्रा सूरज के अगिन ताप को पी रहा था. आज भी जब मेरे मन में उमस पैदा होती है तो उस पहाड़ की याद आ जाती है और मैं गंभीरता से उस उमस को अपने अंदर सोखने लगता हूं. मैंने कई बार यह अनुभव किया है कि गांव के कुछ प्राकृतिक स्थल मौन साथी की तरह मेरे साथ हो लेते हैं. मेरी कविताओं में प्रतीक एवं बिंब बनकर मुखर हो उठते हैं.

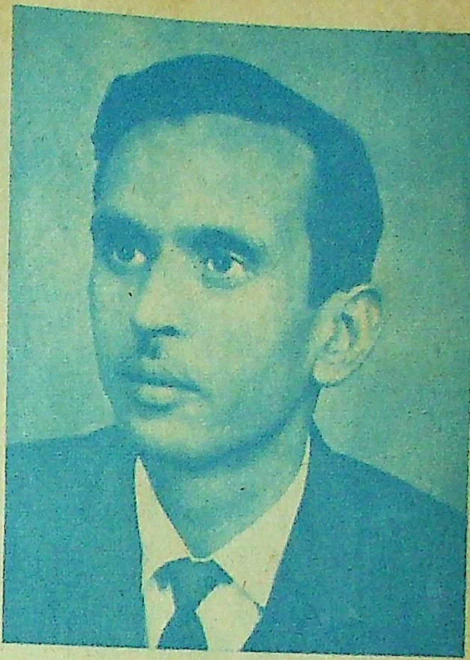
बुंदेलखंड के बड़े-बड़े पहाड़. . .फैले-फैले करौंदों की गंध से भरे जंगल. . .नदियां . . .चौड़ी काठीवाले बरधा जैसे मेहनतकश मर्द. . .और बलिष्ठ औरतें अपनी सारी अच्छाइयों और बुराइयों के साथ मेरी चेतना में अभी तक मौजूद हैं. वहां के लोगों के बीच रहकर जो संस्कार, जो भाषा तथा जो शब्द मुझे मिले थे, उन्हीं के सहारे मैं अपने कथा पात्रों के करीब पहुंच जाता हूं. अजीब-सी प्रतिक्रिया होती रही है. उन लोगों के साथ घुलते-मिलते ही बीच का अंतराल खो जाता था. मैं बचपन वाली आंखों से उन लोगों को देखता-परखता और आत्मीय बोध से भर जाता. चुपचाप उनके जीवन से बहुत कुछ खींच लाता. फिर कलम के सहारे उपन्यासों में उतरता रहता. इसीलिए मेरे सभी उपन्यास आंच-लिक हैं और जीते-जागते पात्र हैं. आज जब कि गांव का संपर्क टूटता-सा जा रहा है, मेरे अंदर एक अविश्वास भी पनप रहा है कि अब मैं उपन्यास नहीं लिख पाऊंगा.

मेरे इच्छा नहीं होती कि गर्दिश के दिनों की चर्चा करूं क्योंकि कभी-कभार ऐसे दिन देखने को मिले हों तो चर्चा करने का एक अलग सुख होता. उन्हीं में रस-बस जाने के बाद वैसी उत्तेजना ही नहीं पैदा होती. फिर भी, मन के अंदर कहीं कुछ कौंधने लगा है.

मेरे लिए गर्दिश के दिन पहचान और परख के दिन होते हैं. जूझने और जोखिम उठाने के दिन हैं. अकेलेपन और चोट खाने के दिन होते हैं. चिंतन और अनुभूतियों के दिन होते हैं. समझ और निर्णय के दिन होते हैं.

जिंदगी की समझ का पहला सबक तथा जोखिम उठाने का साहस बचपन में ही मिले. दीदी (चाची) का हार्दिक स्नेह जिन्होंने मेरा पालन-पोषण किया, चाचा-जी का वाह्य संरक्षण, पिताजी की घुड़कियां, और मां की तटस्थता, परिवार के अनुशासन के लिए जिन्होंने कभी जानबूझकर मां होने का दावा नहीं किया. तेरह साल की उम्र तक मैंने दीदी के सामने उन्हें मां नहीं माना. उनकी कमी का एहसास भी नहीं हुआ. खाने-पीने का प्रबंध दीदी ही करतीं. उन्हीं के साथ सोता. बीमार पड़ता तो वे अपनी छाती से चिपकाये रात-रात भर आंगन में टहलती रहतीं और देवी-देवताओं से मनौती करती रहतीं. चुमकारती-पुचकारती रहतीं.

इन्हीं लोगों के बीच मेरी पारिवारिक मानसिकता बनी. जहां आत्मीयता थी और अपने से अधिक दूसरे



का ख्याल रखा जाता था. घर के बाहर जो दोस्त मिले, उनके साथ नंगे पांव ढेलों में दौड़ा और तलुओं में कई तरह के कांटों की चुभन पाई. पेड़ों पर चढ़ा तो फल खाने को मिले. तैराकी की तो डूबते-डूबते बचा. घुड़सवारी की तो बुंदेलों की बहादुरी का अहं भी महसूस किया और एक दिन पत्थर पर गिरकर दोनों घुटने तुड़वा कर बहुत दिनों तक अपंग बना रहा. अतीत के झूठे गौरव को लादने की सजा भोगी. इन्हीं साथियों के साथ चाचाजी के खैराती मदरसे में पढ़ाई शुरू की. चाचाजी यह स्कूल अपने एकमात्र स्वर्गीय पुत्र की स्मृति में चलाते थे. दिन भर बच्चों के साथ माथा मारते. हिंदी, उर्दू और गणित की पढ़ाई करते. अपने इस स्कूल में उन्होंने गांव की चार पीढ़ियों को शिक्षित किया था. आज भी उनके छात्र उनके सामने खाट पर नहीं बैठते. इसके बाद गांव से डेढ़ मील दूर प्राइमरी स्कूल में मेरा नाम लिखवाया गया. मां कंडी की आंच में गकरियां सेंकती और घी में चुपड़कर कपड़े में बांध देती. कपड़ा घी में ऐसा सीझता कि दो-एक दिन बाद उसे कुत्ते घसीट ले जाते. इस तरह कई बार मुझे अपने कपड़े का टिफिन बाक्स बदलना पड़ता.

बुंदेलखंड की लाठियां तो प्रसिद्ध ही हैं. हम लोगों के पास एक-एक लाठी थी. मैं और मेरे साथी घोड़ा समझ कर उन पर सवारियां गांठते. दुलकी चाल चलते हुए समय से स्कूल हाजिर हो जाते. कुछ दिनों पूर्व जब मुझे अपने बेटे को स्कूल जाने के लिए साइकल देनी पड़ी तो मुझे अपनी लाठी के घोड़े की बहुत याद आई थी. साथ ही यह भी सोचने लगा था कि अपने दो उपन्यासों में जिस लगाव से घोड़ों का जिक्र कर गया हूं, उसके मूल में मेरी लाठी ही थी क्या? या मुझे बचपन से ही शक्ति के प्रतीक की खोज थी. देहगंध की आउटडोर शूटिंग के समय हम लोगों को सफेद बरजिया घोड़े की तलाश में कई गांव घूमने पड़े थे. कहानी में जिस तरह का घोड़ा है, वैसा मिला भी नहीं. लोगों का कहना था यदि घोड़े वाले दृश्य को हटा दिया जायेगा तो नायक के व्यक्तित्व का एक जरूरी पहलू नहीं उभर सकेगा. ऊबकर घर से भागते रहनेवाले नायक का जानवर से आत्मीयता पैदा कर लेना और फिर अपने अहं की तुष्टि के लिए कुछ दिनों के लिए घोड़ा चुराकर भाग जाने में उसकी 'इनर फीलिंग' का बोध होता है. इस टिप्पणी से भी मैं मजबूरन अपने बचपन की घटनाओं में उलझ गया था.

बहुत जल्द प्राइमरी स्कूल की पढ़ाई खतम हो गयी. घर की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि सुविधापूर्वक शहर में रहकर पढ़ सकूं. किसी तरह पिताजी हाई स्कूल तक पढ़ाकर कचहरी का पेशकार बनाना चाहते थे. कम पढ़ाई और ज्यादा कमाई के लिए नौकरी उत्तम तो थी ही. बहरहाल यह तय किया गया कि बांदा में बुआ के घर में रहकर मुझे आगे की पढ़ाई शुरू करनी है. मैंने शहर जाने की खुशी का अनुभव किया. किंतु कभी-कभी मन से उच्चाटन भी होता, क्योंकि गांव छूट रहा था, साथी छूट रहे थे. वे इतने निर्धन थे कि पढ़ने के लिए शहर जा भी नहीं सकते थे. न शहर में उनकी रिश्तेदारी ही थी. मैं अनुभव कर रहा था कि मैं बाबू बनूंगा और वे सब किसान और मजदूर ही बने रहेंगे. उस साल गांव में चेचक और हैजे का विकराल कोप हुआ. दो दिनों के अंदर मेरी दो छोटी बहनें चेचक से मर गयीं. ऐसा सदमा लगा कि वीरानगी देखने की आदत-सी पड़ गयी. मेरी आंखें बराबर उनको ढूंढ़ती रहतीं. उनकी आवाज मेरे कानों में गूंजती. व्याकुल होकर मैं अटारी में चढ़ जाता और वहां से मरघट की ओर देखता जहां मुझे भीड़ दिखलाई पड़ती. ऐसा लगता मुर्दे उठ कर टहल रहे हैं. मुझे बहनों की तलाश में वहां पहुंचना चाहिए. शायद वे वहां हों. किंतु घर से बाहर निकलने पर रोक लगी हुई थी. चारों ओर हताशा का वातावरण था. तब से खोई-खोई-सी उदासी मेरे स्वभाव में भर गयी. शहर जाने पर यह उदासी बढ़ी, घटी नहीं. खेलकूद की रुचि जाती रही. बात-बात पर अंतर्द्वंद्व उत्पन्न हो जाता और मैं परेशान हो उठता.

घर में छोटा होने के कारण मुझे और संतू भइया को घर का बहुत-सा काम करना पड़ता. साठिया कुएं से पानी भरना. . .सब्जी लाना. बाजार-हाट करना. आटा पिसाना. इतने काम की जिम्मेवारी तो बंधी हुई थी. हम उम्र होने के कारण हम दोनों अच्छे दोस्त बन गये थे. उन्हें पतंग उड़ाने का शौक था. मुझे लटाई पकड़नी पड़ती. कभी-कभी कांच पीस कर मंझा बनाते. और खेल ऐसा कि हरदम ऊंट की तरह गरदन ताने आसमान की ओर ताकते हुए झरबेरी वाली सराय में नंगे पांव घूमते रहो. एक दिन पतंगबाजी के पीछे मास्टर साहब के बेंत खाने पड़े. बस, उस दिन से कान पकड़कर उठ-बैठ लिया. पतंगें और लटाई कुएं के अंदर फेंक दी गयी थी और लटाई वाले धंधे से मुझे छुट्टी मिल गयी थी.

अपने मनोरंजन के लिए हम लोगों ने एक रास्ता निकाल लिया था. शहर में घूमते वक्त अकसर टिपिकल चेहरे तलाश लेते. उनके हाव-भाव तथा संवाद याद कर लेते. घर पहुंच कर उनकी नकल की जाती और एक ड्रामा तैयार हो जाता . हमारे ड्रामे के पात्रों में गप्पी.. . .घुम्मे. . .लड़ाके. . .कंजूस. . .दूकानदार बेवकूफ. . .चिड़चिड़े. . .पागल. . .शराबी आदि थे. कभी-कभी परिवार के मनोरंजन के लिए हमें अपने ड्रामे पेश करने पड़ते. हमारा कल्लन मियां का ड्रामा काफी पापुलर था. घर का अकेला वह बूढ़ा आदमी मिट्टी की चिड़ियां बनाकर बच्चों को ठगा करता था. मैं उसकी दूकान में जाकर अपने को ठगाया करता था क्योंकि उसकी अतिशयोक्ति भरी बातें किसी कहानी से भी ज्यादा रुचिकर होती थीं. मुझे पहली बार पता चला कि बांदा शहर से भी बड़ा एक जहाज है जो सात समुद्र पार से मिट्टी और सीप ढोकर लाता है. जहाज के अंदर एक पूरी बस्ती बसी होती है. वह मिट्टी सिर्फ कल्लन मियां को ही मिल पाती है क्योंकि सबसे पहले उसने अंग्रेजों को 'ढइया मारना' (गोली का खेल) सिखाया था. वह पात्र चेतना में जाकर रह गया था. मेरे पहले उपन्यास 'नयी धरती, नये लोग' में नव्वुल नाम का पात्र वही है. मुझे लगता है कि अपनी कहानियों में साधारण पात्रों के चुनाव के पीछे वही प्रवृत्ति मौजूद है.

* *

अब एक दूसरा पहलू. ऊंचे दर्जे तक पहुंचते-पहुंचते ऐसी उम्र आ गयी जो जीवन में केवल एक ही बार आती है, भले ही व्यंग्य में उसे गधापचीसी की उम्र कहा जाय. संयोग से इस उम्र के दुःख-सुख भोगने में मैं अपने साथियों से पहले ही बाजी मार ले गया. कक्षा में एक लड़की किसी विशेष लड़के से लगाव पैदा कर ले, तब तो बड़ी आफत हो जाती है. सारे लड़के ईर्षा करने लगते हैं. सड़क चलते व्यंग्य कसते हैं. मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ. एक बार ऐसा खीझा कि अपने सहपाठी रिश्तेदार से हाथापाई के लिए उतारू हो गया. बात बड़े लोगों के कानों तक पहुंच गयी. मैंने खुद भी सही बात स्वीकार कर ली. उन दिनों मुझे नये अस्तित्व का आभास हुआ करता था. सौंदर्यबोध भी जागृत हो गया था. अपने अंदर ज्वार-भाटे जैसा आवेग था. अब मुझे धुली चांदनी की रात याद आ रही है. इस घटना का वह अंतिम दृश्य था. छुट्टियां हो गयी थीं. पहली बार हम अकेले हुए थे. पहली बार फूल जैसे हाथों की जकड़न मिली थी. मैं घबरा गया था किंतु लड़की की उदास, प्यासी आंखों से झरते आंसुओं के बीच जो भाषा उभरी, वह सदा के लिए मेरे मन में लिख गयी. और वह भाषा मेरे गीतों में विस्तार पाने लगी थी. उन गीतों में कुछ ऐसा भी था जिनकी फरमाइश अभी तक लोग कर देते हैं. कई लोगों ने टेप भी कर रखे हैं. 'कित्ती' उपन्यास में एक घटना है. चांदनी रात में नायिका नायक के पास दूध लेकर जाती है और वह उसे समझा–बुझाकर वापस कर देता है.

कुछ दिनों बाद मेरा संपर्क श्री केदारनाथ अग्रवाल से हुआ. उन्होंने मेरी वैयक्तिक चेतना को सामाजिक चेतना से जोड़ने में मदद की. उनके द्वारा साहित्यिक आंदोलनों का ज्ञान हुआ. नयी-नयी पत्रिकाओं और पुस्तकें पढ़ने को मिलीं. नये कवियों और लेखकों के बारे में जानकारी हुई. साफ-सुथरी दृष्टि मिली. साहित्य को अन्याय के विरुद्ध खड़ा होना चाहिए.

कृष्ण मुरारी पहाड़िया मुझसे अच्छी कविताएं लिखता था. मुझमें विषय की विविधता अधिक थी. हम दोनों अभी तक अभिन्न हैं. पारिवारिक कुंठाओं ने उसके कवि की क्षति की है. उसकी इस छटपटाहट को मैं आज भी अनुभव करता हूं. इतना तो तय है कि साहित्य के संबंध में यदि पृष्टि न मिली होती तो मैं भी कुछ तुकबंदियों के बाद बुझ गया होता, समय के साथ जुड़कर आगे न बढ़ पाता.

एक शाम हम दोनों रेल की पटरियां पार करते हुए केदारजी के घर पहुंचे, अपनी नयी कविताएं सुनाने के लिए. वे उदास-से नीम के नीचे आरामकुर्सी में अकेले बैठे थे. हम दोनों ने अपनी-अपनी कविताएं सुनाईं. बातचीत हुई. गीत-विधा में लिखी उन्होंने मेरी एक कविता की प्रशंसा की थी. वही मेरी पहली छपी कविता थी.

रधिया का बेटा रोता है. दूध मलाई को रोता है.
लाल खिलौने को रोता है. रधिया का बेटा रोता है.

बैठकी के बाद जब हम लोग चलने को हुए तो उन्होंने टूटी लय में कहा—मेरी मां का देहांत हो गया है. मैं कुछ नहीं बोला. सिर्फ उनके गंभीर चेहरे की ओर ताक कर रह गया. पहली बार यह धारणा बनी कि कवि और लेखक ऐसे ही सहनशील व्यक्ति होते होंगे.

आगे चलकर यह भ्रम बुरी तरह टूटा.

इलाहाबाद आने पर कई कई ऐसे अनुभव हुए यह सोचना ही पड़ा कि मौखिक सिद्धांतों चाहे कितने ही क्रांतिकारी हों, किंतु व्यक्तिगत आचरण में कई लेखक पटेबाज भी होते हैं. व्यक्तिगत तौर से उनका व्यवहार उनके प्रति अश्रद्धा उत्पन्न करता है. नये लेखक उनसे जुड़ना पसंद नहीं करते. अप्रत्यक्ष रूप से ऐसे लेखक अपनी ही विचारधारा के प्रवाह को कुंठित करते हैं. शायद इसीलिए कि वे ही माइल स्टोन बने रहें. भले ही उनकी संवेदना कुंठित क्यों न हो गयी हो? भले ही उनका लेखन ठस क्यों न हो गया हो ? आज तक ऐसे लेखकों से मैं आत्मीय नहीं हो सका हूं. किंतु इसका यह अर्थ भी नहीं है कि मैं उनकी उपलब्धियों को नकारता हूं.

'कादंबिनी' में राव साहब ने मेरी तीन कविताएं स्वीकृति कीं. दोषीजी आये तो उन्होंने वापस कर दीं. कोई हर्ज नहीं. . .न कोई शिकायत. किंतु आफिस में ही तीन घंटे तक जो कविता के संबंध में उनका प्रवचन सुना तो पनाह मांग गया. आफिस छोड़ते ही उसकी निरर्थकता अपने आप साबित हो गयी. कुछ भी याद न रहा. केवल यह प्रतीति बची कि बड़ी पत्रिका का

अजित पुष्कल (जन्म : ८ मई, १९३५) ने कस्बे के आदमी की जिंदगी और वहां की व्यावसायिक राजनीति को अपनी कहानियों का आधार बनाया है. इनके पात्र ईमानदारी और संवेदनशीलता के बीच से सही मार्ग की तलाश करते प्रतीत होते हैं. कथ्य की सहजता और सपाट बयानी इनकी विशेषता है.

● ●

संपादक केवल पारखी होने का दावा ही कर रहा था.

वैचारिक स्तर पर अपनों से जुड़ कर कुछ सीखने की लालसा मेरे मन में भी थी. एक बार एक गोष्ठी में उपन्यास का एक अंश पढ़ा. उस गोष्ठी में नकारने की मुद्रा में भैरवजी ने मेरी बड़ी खिंचाई की. रचना को लेकर बात कहीं गयी होती तो ठीक भी था. किंतु वहां तो व्यक्तिगत संबंधों की बात थी यानी नागार्जुन और मैं ही विषय बने रहे. साथ ही यह आरोप कि नये लड़के शहर आकर गांव के बारे में कुछ नहीं जानते, वे बहुत गलत-सलत लिखते हैं. एक बार नाटक पढ़ा तो फिर वैसी ही बातें. कई लेखक ऐसी बातों का समर्थन भी कर रहे थे. मुझे लगा गांव से शहर में आकर फिर कभी गांवों न जाने वाला लेखक ही शायद गांव के बारे में सही लिख सकता है. नये लोग तो कुछ कर ही नहीं सकते. करना भी चाहें तो उन्हें कुंठित कर दिया जाय. मैं क्षोभ से भरा हुआ था. एक टिप्पणी लिख मारी. उसका असर कुछ बुरा ही हुआ. सोचा इस प्रपंच में न फंसकर अकेले संघर्ष करूंगा और लिखूंगा. बिना अपने मरे स्वर्ग नहीं मिलता. मैंने गोष्ठियों में रचनाएं पढ़नी बंद कर दीं. जाता भी तो चुपचाप ही रहता. कुछ दिनों बाद गोष्ठियां भी बंद हो गयीं. आठ-दस सालों से मैं बराबर यह सोच रहा हूं कि मुझे इतना खतरनाक आदमी क्यों समझ लिया गया? पिछले वर्ष बाहर से कुछ लेखक बंधु आये थे. सचमुच मैं उस गोष्ठी में नहीं जाना चाहता था. किंतु अमरकांतजी के आश्वासन पर वहां चला गया तो स्पष्ट शब्दों में वापस कर दिया गया. सही भी था, मैं साहित्यिक गोष्ठी की नियति से भेजा गया था, पार्टी की मीटिंग के लिए नहीं. किंतु ये ऐसी बातें हैं जो मुझे बलिष्ठ बनाती हैं. बैसाखी के सहारे कोई लेखक बनता भी नहीं.

मैं कॉफी हाउस भी नहीं जाता. वहां की चांव-चांव से मेरे मन में घुटन पैदा होती है. बहस करना मैं जानता नहीं. संवेदना को कुंठित करने के लिए लादी हुई बनावटी बौद्धिकता से क्या फायदा? इसीलिए कमी-कमार उतना समय मैं किसी फटीचर टी स्टाल में गुजारना ज्यादा पसंद करता हूं क्योंकि वहां जिन मेहनतकश, ठेठ, गंवार, बुद्धू तथा फटेहाल लोगों से मिलने का अवसर मिलता है, उससे मेरा 'गंवइयां' मन तृप्त होता है. इसीलिए मेरी कहानियों के पात्र एक ही वर्ग के नहीं होते. अपने में लीन होने की अपेक्षा मैं परिवेश से जुड़े रहने की कोशिश करता हूं. मुझे जीवंत एवं जिंदगी के प्रति आस्थावान चरित्र ही अच्छे लगते हैं. उनमें जुझारूपन होता है, कुंठा नहीं. आज जब कि सामान्य आदमी हर ओर से टूटकर हताश हो रहा है, उसे ऐसी ही कहानियां बल दे सकती हैं जिनके माध्यम से ऐतिहासिक प्रयोजन का ज्ञान हो सके, जो उन्हें उकसायें और सोचने-समझने को मजबूर करें. इस धारणा के पीछे मेरा व्यक्तिगत अनुभव है.

* *

तीन वर्ष पहले मैं बुरी तरह से बीमार पड़ गया था. पेट की अंतड़ियों में छेद हो गये थे. उन दिनों कालेज में भी दो-दो महीने तक तनख्वाह नहीं मिलती थी. पी. एफ. से रुपया लेना चाहा तो मिला नहीं. (ठीक हो गया तब मिला था) दिन भर अकेले खाट पर पड़े रहना पड़ता. पत्नी भी अधिक छुट्टी न ले सकती थी. वह अपने स्कूल चली जाती. बच्चे अपने स्कूल. अनंत चिंताओं से घिरा मैं कमरे की छत ताकता रहता. ठीक से दवादारू न हो पाई तो क्या होगा? कुछ दिनों बाद ऐसा हुआ कि एक काली बिल्ली छत से उतरकर सीढ़ियों पर बैठ जाती और रोना शुरू करती. बिल्ली का रोना तो वैसे भी अपशकुन माना जाता है. सच तो यह है कि उसकी आवाज इतनी भयावह होती कि वह मुझे अंदर से हिला जाती. मेरा रुग्ण मन अंधकार से भर जाता. किसी तरह खाट से उठकर कांपती आवाज से उसे भगाता और वह रोती हुई फिर छत पर चली जाती. मैंने यह बात पत्नी से कही तो वह भी घबड़ा गयी. बोली —मरी यह बिल्ली कहां से आ जाती है! अभी तक तो कभी देखा नहीं.

मैंने कहा—घबड़ाओ नहीं, जानवर भी अच्छे-बुरे समय को पहचानते हैं. किंतु स्थिति यह थी कि मैं उनसे ज्यादा घबड़ाया रहता था. उसकी आवाज याद करके आज तक सिहरन हो उठती है. मैंने अपनी स्थिति के बारे में बहुत कम लोगों को सूचित किया था. दूसरे-तीसरे अमरकांतजी आ जाते. शिवकुटीलाल वर्मा एवं ज्ञान प्रकाश भी आते. इन लोगों के साथ थोड़ा समय कट जाता. एक पत्रिका से अग्रिम मिल जाने के कारण थोड़ी राहत मिली थी. कुछ दिनों बाद एक मित्र का पत्र मिला जिसमें लिखा था कि यदि मैं किसी तरह बंबई पहुंच जाऊं तो दवा-दारू की पूरी व्यवस्था हो जायेगी. दुःख के समय आत्मीयता की चोट भी भारी पड़ जाती है. इस पत्र की आत्मीयता ने मुझे बेहद भावुक कर दिया था और मैं दिन भर असामान्य-सा रहा. संयोग ऐसा कि उन्हीं दिनों प्रकाशचंद गुप्त तथा रमेश वर्मा की मृत्यु का समाचार भी पढ़ा था. उस घबड़ाहट में बिल्ली का बोलना मेरे लिए अर्थवान हो गया था. सोचा, किसी तरह बंबई चला जाऊं, कम से कम इस बिल्ली से तो पिंड छूट जायेगा. कतिपय कारणों से मैं बंबई नहीं जा सका. वह बिल्ली आती रही और मैं उसे भगाता रहा. अंत में मैं ही जीता. उन दिनों मुझे ऐसा लगता जैसे मेरी जिंदगी कुछ ऐसी होती जा रही है. अपने अंदर बल समेटने के लिए मैं कुछ न कुछ पढ़ता ही रहता.

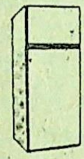
उन दिनों 'सारिका' में रेणुजी की एक कहानी पढ़ी. वे भी बीमारी से उठे थे और उसी से संबंधित

मोदी धागा कशीदाकारी प्रतियोगिता

प्रथम पुरस्कार १०,०००/-रु.

५०,००० रुपये के अन्य आकर्षक पुरस्कार

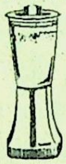
२ द्वितीय पुरस्कार
२८६ लीटर का जेम रेफ्रीजरेटर



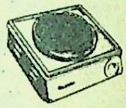
४ तृतीय पुरस्कार
फिलिप्स हाई फ्लू इन्टरनेशनल स्टीरियो सिस्टम



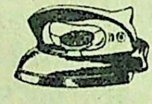
८ चतुर्थ पुरस्कार
रेकोल्ड मिक्सर और ग्राइंडर



१० पंचम पुरस्कार
रेकोल्ड की हॉट प्लेट



१०० साँत्वना पुरस्कार
रेकोल्ड की बिजली की इस्त्री



कल्पना कीजिए! १०,००० रुपये आपके हो सकते हैं! मौका न चूकिये। तुरन्त कशीदाकारी का काम शुरू कर दीजिए।

नियम सरल है

प्रतियोगिता का फैसला निष्पक्ष निर्णायकों का पैनल करेगा जो अन्तिम और मान्य होगा। आप जितने चाहें उतने प्रविष्टि भेज सकते हैं।

हर एक प्रविष्टि अलग कूपन के साथ भेजा जाना चाहिए और उस पर आपके साफ-साफ नाम पते की अलग चिट भी होनी चाहिए।

सभी पुरस्कृत प्रविष्टियों पर मोदी थ्रैड मिल्स का अधिकार होगा। बाकी प्रविष्टियां प्रतियोगिता के बाद हिस्सा लेने वालों को लौटा दिये जायेंगे। प्रविष्टि के खो जाने या खराब हो जाने की जिम्मेदारी मोदी थ्रैड मिल्स की नहीं होगी। प्रतियोगिता के नियमों के बारे में विवरण के लिए मोदी धागे के निकटतम डीलर से एक प्रविष्टि पत्र मांगिये।

जल्दी कीजिए! अंतिम तिथी: ३० अगस्त १९७६

इस कूपन को काटिए और अपनी प्रविष्टि के साथ भेज दीजिए। इस्तेमाल किए गए 'MTM' धागों के कैशमीमो और लेबल भी साथ भेज दीजिए। आपकी प्रविष्टि के साथ एक अलग चिट नत्थी होनी चाहिए जिस पर आपका नाम, पता साफ-साफ लिखा हो।

मोदी धागा कशीदाकारी प्रतियोगिता प्रविष्टि कूपन

नाम ....

पता ....

शहर .... पिनकोड ....

श्रेणी : ☐ कढ़ाई ☐ बुनाई ☐ क्रोशियाकारी ☐ टैटिंग

प्रतियोगिता के बाद :-

☐ कृपया मेरी प्रविष्टि वी०पी०पी० (डाक मूल्य) से लौटा दें।

☐ मैं मोदी नगर से अपनी प्रविष्टि खुद ले लूंगा/लूंगी।

मैं प्रमाणित करता/करती हूँ कि मोदी धागा कशीदाकारी प्रतियोगिता में मैंने जो प्रविष्टि भेजी है वह मैंने खुद तैयार की है और मुझे प्रतियोगिता के नियम मान्य हैं।

....
(हस्ताक्षर)

इस पते पर भेजें : — मोदी धागा कशीदाकारी प्रतियोगिता, मोदी थ्रैड मिल्स, मोदी नगर, उत्तर प्रदेश।

आपको क्या करना है :

मोदी धागे के 'MTM' स्ट्रैन्डिड कढ़ाई के धागे, क्रोशिया धागे या सूती धागे से अपनी पसन्द की कोई चीज़ बनाईये। आप कढ़ाई, बुनाई, टैटिंग या क्रोशियाकारी कुछ भी कर सकते हैं। इसका कोई भी आकार या डिज़ाईन हो सकता है लेकिन काम मौलिक होना चाहिए।

आपकी कशीदाकारी के बारे में फैसला करने का आधार मौलिकता, रंगों की पसंद और टाँकों की सुन्दरता होगी। आपने इस कशीदाकारी में जिन धागों को इस्तेमाल किया हो उनके कैशमीमों और लेबल संभाल कर रखिए और अपनी प्रविष्टियों के साथ रजिस्टर्ड (ए०डी०) से भेजिए।

पता है : —
मोदी धागा कशीदाकारी प्रतियोगिता
मोदी थ्रैड मिल्स, मोदी नगर, उत्तर प्रदेश।



मोदी धागे

३० से ज़्यादा देशों की पसन्द।

कहानी लिखी थी. मैं पूरी कहानी नहीं पढ़ सका. एकाएक घबड़ाहट बढ़ गयी. सोचने लगा, बीमार को बीमारी की कहानी नहीं पचेगी. यह बीमारी से उबारती नहीं, बीमारी बढ़ाती है. फिर मैंने गोर्की पढ़ा. सच कहता हूं, उस लेखन ने मेरे रुग्ण मन में जीने की इच्छा जगा दी. उस दिन मैंने लेखक की शक्ति पहचानी. सोचने की बात है कि लेखक को यह आंतरिक शक्ति कहां से मिलती है?

मैं उन लेखकों को अपनी आस्था के दायरे में पाता हूं जो व्यवस्था से उत्पन्न असंगतियों से संपर्क करते हुए परिवर्तन की भूमिका बनाने में रत हैं. ऐसे लेखकों की रचनाएं पढ़ कर मैं स्वयं के अकेलेपन की बिडंबना से बच जाता हूं. लेखक होने का मुझे तनिक भी गुमान नहीं है. लेखक की जो इमेज मेरे दिमाग में है, उस तक मैं कतई नहीं पहुंचा. साहित्य के पहाड़ के नीचे मैं ऊंट की-सी लघुता लिये खड़ा हूं. पता नहीं मेरा यह बोध मेरी हीनता है या संभावनाओं की खोज का मार्ग. रचना प्रक्रिया के बारे में कोई भी दावा व्यर्थ है. वैसे लेखक के लिए जिंदगी के अनुभवों की जानकारी पहली शर्त है. आम आदमी के अनुभवों से मेरे अनुभव भिन्न नहीं हैं.

पढ़ाई के मामले में मेरी जिद के सामने पिताजी हार गये. संयोगवश उनके मामा मुझे कानपुर ले गये. वे पुलिस विभाग में थे और कानपुर में उनके अपने दो मकान थे. वे पुत्र-शोक से पीड़ित थे. इस बात का मैं बराबर ध्यान रखता. सादगी के कायल, उन्होंने मुझे मलेसिया का पैंट बनवा दिया था. सिला भी बेढंगा था, फिर भी मैं शौक से पहनता था. खाने-पीने की पूरी सुविधा थी. परेशानी यह थी कि मुहल्ले के लोग आपस में दिन-रात लड़ते रहते थे. वह मजदूरों की बस्ती थी. वे छोटी-छोटी अंधी कोठरियों में रहते थे. उनमें से कुछ लोग झुग्गियां बनाने का काम करते थे. कुछ मिल में काम करते थे. कुछ लोग फेरियां लगाते थे. रिक्शे चलाते थे. उनके बच्चे नंग-धडंग बेगानों की तरह घूमते रहते. औरतों को फैशन पसंद था. कान-झाड़ गलियां बकने और झगड़ने में माहिर. आपस में वे कब झगड़ जायेंगी, कहा नहीं जा सकता था. दो दल आपस में लड़ते तो एक-दो ऐसी औरतें थीं जो दोनों के बीच में खड़े होकर ढोल बजाया करती थीं. एक लैला थी जो अपने सफेद चूहों को बच्चों से भी अधिक चाहती थी. एक हट्टी-कट्टी औरत थी. वह अपने बीमार आदमी को बांधकर रखती थी और मिल में काम करने वाले एक युवक से इश्क फरमाया करती थी. उसकी तनख्वाह का बहुत सारा हिस्सा अपनी गृहस्थी में खर्च किया करती थी. कुछ ऐसे लोग भी थे जो दूसरे मोहल्ले में बदमाशी के लिए बदनाम थे. उनकी तलाश में अक्सर पुलिस आया करती थी. वहां रहकर ऐसे लोगों का भी अनुभव हुआ. डायरी लिखता तो बड़ी उपलब्धि होती. अब तो बहुत-सी बातें याद भी नहीं रह गयीं. वैसे मेरे लघु उपन्यास 'सूखी रेत का समुद्र' में इस बस्ती की झलकियां उभर कर आयी हैं.

बी. ए. पास करने के बाद रीवां से निकलनेवाले एक दैनिक अखबार में साठ रुपये माहवार पर विज्ञापन मैनेजर हो गया. नाम बड़े, दर्शन छोटे. आठ घंटे की ड्यूटी में प्रूफ रीडिंग से लेकर बिल बनाने तक का काम करना पड़ता. वहां भी बहन का खाली घर रहने को मिल गया था. इतने कम पैसों में खर्च पूरा न पड़ता. खाना घर में ही बनाता. यह काम मेरे लिए बहुत दुखदायी था. अक्सर आटा गीला हो जाता, रोटी फैल कर जूते के तल्ले के आकार जैसी हो जाती. फिर भी, उसे मालपुआ समझ कर खा लेना पड़ता. एक दिन सब्जी के अभाव में लहसुन की चटनी से काम चलाया. प्रोपराइटर के पास किसी काम से गया तो डकार आ गयी. लहसुन की गंध उसकी वैष्णवी नाक के अंदर प्रवेश कर गयी तो वह तमतमा उठा. मैंने नौकरी छोड़ दी. किसी के खान-पान की बुराई करना कोई अच्छी बात तो नहीं होती. एकाएक बैठ जाने के कारण जो पैसे मिलते थे, वो भी नहीं मिले. एक मित्र के साथ आठ दिनों तक हास्टल में पड़ा रहा. छात्र जीवन बिताने की इच्छा मरी नहीं थी. दरबार कालेज के हिंदी के अध्यक्ष श्री महावीर प्रसाद अग्रवाल ने मेरी भरपूर मदद की. बस काम चलने लगा.

* *

कालेज में घनश्याम सिंह से परिचय हुआ. वे छात्र संघ के अध्यक्ष थे. उनकी कहानियां 'साहित्यकार' 'कहानी' तथा 'नई कहानियां' में प्रकाशित हो चुकी थीं. कथाकार जितेंद्र से उनके माध्यम से ही मुलाकात हुई थी. प्रगतिशील विचार के युवकों का अच्छा गुट बन गया था. वैचारिक स्तर पर गोष्ठियां होती थीं. लोग नये साहित्य से परिचित होने लगे. हम लोगों ने नागार्जुनजी को बुलवाया. बड़ी धूम रही. उनके जीवंत व्यक्तित्व से सभी लोग प्रभावित हुए थे. तभी किसी कवि की मेहरबानी से हम लोग का नाम सी. आई. डी. की डायरी में लिख लिया गया. सोचा अब तो सरकारी नौकरी से भी गया. उन्हीं दिनों नागार्जुनजी ने गद्य लिखने की सलाह दी. बोले—माना, तुम कविता में रेशम बुनते हो. मगर कविता तो है कपूर की आरती. गद्य का युग है. गद्य लिखा करो. बात ठीक थी. नयी कविता बिंबों और प्रतीकों के कारण दुरूह हो रही थी. सीधे संवाद के लिए गद्य ही उपयुक्त था. उन दिनों इलाहाबाद हम लोगों के लिए आकर्षण का केंद्र था. 'कहानी' के माध्यम से नये कथाकार उभर कर आये थे. कहानियों को नया मोड़ मिला था. साहित्यकारों की संगति का मोह मुझे इलाहाबाद की ओर खींचने लगा था. किंतु वहां तक पहुंचने के लिए कोई साधन भी नहीं था.

यह सच है कि मेरे विकास में व्यवस्था का कम, संयोग का अधिक हाथ रहा है, परीक्षा से मुक्त होकर गर्मी की छुट्टियों में गांव चला गया. वहां पता चला कि दीदी ने एक लड़की देख ली है और मेरी शादी करना चाहती हैं. इस स्थिति में मैं शादी करने को कतई

तैयार न था. उन्होंने आंखों में आंसू भर कर कहा— जब मैं मर जाऊंगी, तब करोगे? मैंने स्वीकृत दे दी. घर में बुजुर्ग होने के नाते उनकी इच्छा के विरुद्ध पिताजी भी न जा सके. तुरंत शादी हो गयी . इलाहाबाद पहुंचने का एक जरिया निकल आया.

रोजी-रोटी ढूंढ़ते समय बराबर यह अनुभव होता कि मैं दो जबरदस्त फंदों से जकड़ा हूं. एक फंदा मेरे पेट में है और एक गले में. किसी तरह इलाहाबाद से चालीस मील दूर एक कस्बे के स्कूल में अस्सी रुपये की नौकरी मिल गयी. पत्नी इलाहाबाद में अपनी मौसी के पास रहती थी. इलाहाबाद आने-जाने में ही बहुत-सा पैसा खर्च हो जाता. एक दिन एक अध्यापक ने कहा कि मैनेजर साहब की शिकायत है कि तुम उन्हें सलामी देने नहीं जाते. मैं इस शिकायत से चिढ़-सा गया था. अब तो जानबूझकर सलामी बंद कर दी. बोर्ड की परीक्षाओं के बाद मेरी छुट्टी कर दी गयी. खैर, गर्मियों भर दौड़-धूप की तो स्थानीय विद्यालय में घुस गया. फिर गर्मियों में छुट्टी का परवाना मिल गया. कारण? अपनी जाति का आदमी मिल गया है तो हम दूसरी जाति के आदमी को क्यों रखें.

ऐसी विशेष योग्यता की बातें सुनकर मैं चकरा जाता. तीसरा साल पूरे युग बोध का समय था. नौकरी कहीं मिली नहीं. पिता ऊपर से बन गया. पत्नी ऐसी बीमार पड़ी कि मरने-जीने की लग गयी. परिवार से जो भी मदद मिलती, पर्याप्त न थी. मौसी के परिवार की आय भी अधिक नहीं थी किंतु उनका दिल बहुत बड़ा था. ऐसे निःस्वार्थ लोग कम ही दिखते हैं. बच्चे का पालन-पोषण वीरेंद्र दादा ने संभाला . मैं तो अपनी उलझनों में कैद नौकरी की तलाश में इधर-उधर भागता रहता. थका-मांदा बीमार पत्नी के पास बैठता तो अरक्षित-सा महसूस करता. अक्सर उधेड़बुन में जगकर सारी रात काट देता. सोचता सारे देश के चुनाव तो जातिवाद के आधार पर होते हैं, क्यों न जीविका के लिए समझौता कर लूं? सांठ-गांठ बैठाई गयी और मुझे नौकरी मिल गयी. व्यावहारिक दुनिया सचमुच बहुत कठोर होती है.

बहरहाल एक कमरे का किराया और महीने भर के राशन की व्यवस्था तो हो ही गयी. इतने दिनों बाद अपना छोटा-सा परिवार बस गया. मर-खप कर पढ़ो और डिग्रियां हासिल करने पर क्षोभ हुआ. अच्छा था किसान ही होता तो पिताजी की सलाह क्या बुरी थी. पढ़ने-लिखने में समय और शक्ति ही तो खराब हुई. शैक्षणिक योग्यता का यहां कोई मूल्य नहीं है. विद्यालयों में तरक्की इस बात पर निर्भर करती है कि कौन आदमी कितनी जल्द चमचा बन सकता है ? अपने हित के लिए लोग पालतू और उपजीवी बन भी जाते हैं. कुछ लोग भारा कुछ बर्दाश्त करते हुए चुप रहते हैं. नौकरी का अर्थ ही होता है न 'ना' करी न 'नू' करी.

एक वर्ष शिक्षक संघ की यूनिट में रहा. शिक्षक आंदोलन में शामिल हुआ. विद्यालयों के बारे में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त की. ये प्राइवेट विद्यालय सामंती व्यवस्था पर आधारित धनार्जन के साधन मात्र हैं यहां तक कि अध्यापक के श्रम का शोषण भी किया जाता है. ग्रांट मिलने के बावजूद भी छह-छह माह की तनख्वाह नहीं दी जाती. कहीं-कहीं हस्ताक्षर ज्यादा रकम पर करवाये जाते हैं और पैसे कम दिये जाते हैं. एक गांव के अध्यापक ने बताया कि हमें तो अपने प्रधानाचार्य के चरण स्पर्श करके ही कक्षाओं में जाना पड़ता है. अगर किसी दिन चूक जाओ तो चरण स्पर्श के लिए चपरासी से बुलवाया जाता है. आतंरिक व्यवस्था के लिए उनके पास अपने गुंडे-बदमाश भी हैं. प्रिंसिपल के बाद हमें उनकी सहनी पड़ती है. पी. एफ. कटता है और हमारे खाते में नहीं जमा होता. थोड़ी हेर-फेर के साथ ऐसी अराजकता सभी विद्यालयों में होती है. अध्यापक मर जाता है तो उसका जमा पैसा परिवार वालों को वर्षों बाद और मुश्किल से मिल पाता है. इधर वेतन वितरण की व्यवस्था बैंकों के माध्यम से कर दी गयी है किंतु कहीं-कहीं अध्यापकों को अपनी 'चौथ' नकद रकम के रूप में चुकानी होती है. कालेजों में लगी जमीन की पैदावार प्रबंधकों की होती है. बहरहाल बहुत पुराना कोढ़ है. यह. . .जाहिर भी है. इधर उ. प्र. सरकार का ध्यान इस ओर गया है. संभव है अच्छे परिणाम सामने आयें. फिर भी, इस समस्या पर अब भी कई 'राग दरबारी' लिखे जा सकते हैं.

* *

स्थायित्व आ जाने के बाद फिर साहित्य में काम करने का जोश उभरा. एक प्रकार के सोच वाले नये लेखकों का एक गुट बन गया इस गुट में कुशल संपादक, चित्रकार. . .लेखक. . .कवि एवं प्रकाशक भी शामिल थे. नये सिरे से काम करने का संकल्प लिया गया. 'उत्तरशती' नाम की एक पत्रिका निकाली. सोचा शायद इस पत्रिका के माध्यम से लेखकों को संगठित कर सकेंगे. किंतु यह योजना असफल हो गयी. कुछ दिनों बाद मित्रों ने साहस किया और 'परिकथा' नामक कहानी पत्रिका निकाली. आर्थिक कारणों से छह-सात अंकों के बाद पत्रिका बंद कर देनी पड़ी. रोजी-रोटी की तलाश में सारा गुट बिखर गया. मैं फिर अकेला हो गया. 'परिकथा' से संबद्ध होने के कारण मुझे कहानी लेखन को समझने का अवसर मिला. उन दिनों मैं उक्त पत्रिका तथा 'शताब्दी' में कालम लिखा करता था. 'शताब्दी' में सामान्य लोगों के इंटरव्यू हुआ करते थे और 'परिकथा' में उनकी समस्याओं पर बातचीत. इस प्रकार के लेखन ने कहानी लिखने में नींव का काम किया. मित्रों के उकसाने पर मैंने कहानी लिखी. सन् १९६५ में मेरी पहली कहानी 'वर्जित स्वाद' भारती-जी ने 'धर्मयुग' में साज सज्जा के साथ छापी. उन दिनों 'नयी कहानियां' का सम्पादन भीष्म साहनी कर रहे थे.

उन्होंने कई कहानियां छापीं. इस प्रकार से लेखन का सिलसिला आगे बढ़ता चला गया.

विकास की यह प्रक्रिया अब भी जारी है. जिंदगी अनुभवों से खाली तो रहती नहीं. बस अनुभवों को अर्थ और मूल्य देने भर की कोताही न हो तो कहानियां तो मिल ही जाती हैं.

ये गर्दिश के दिन! कुछ न पूछिए! कभी-कभी ये दिन इतना दे जाते हैं कि पानेवाले की झोली कट जाती है. और कभी-कभी अंदर से इतना खाली कर जाते हैं कि जिंदगी परेशानियों से बंधी पक्की गांठ-सी लगने लगती है. इधर एक अप्रत्याशित घटना घटी. कई परिवारों को भावात्मक चोट लगी. मेरी सासजी को सबसे अधिक. पारिवारिक राजनीति इतनी भयावह हो सकती है, यह बहुत नजदीक से देखने को मिला. मुझे उस स्थिति में जाना पड़ गया जहां क्षुद्र मुद्राएं मुखौटे पहनकर उल्टे मुझ पर ही अट्टहास कर रही थीं. एक पक्ष का सारा यथार्थ समेटे मैं उस कृत्य में शामिल तो हुआ किंतु अनायास ही अपने अंदर पनपे विश्वास और सत्य की भी हत्या कर डाली. किसी संवेदनशील व्यक्ति के लिए एक बारगी इतनी हत्याएं...! वहां से हट कर जब निर्जन सड़क पर पहुंचा तो अपनी कमजोरी और भावुकता पर खिलखिला कर हंसने लगा था. जिन पाले-पोसे मूल्यों की हत्या की थी, उनके लिए आंखें भी डबडबा आई थीं. बाहर की चोटों का डर था. कहीं लाठी से मेरा सिर न तोड़ दिया जाय. इस चोट से तो बच गया किंतु आरोपों से नहीं बच सका. बचने का कोई उपाय भी नहीं था.

वे दिन रक्त से सने पंजों की तरह मुझे डरवाते थे. और मक्कारी ऐसी कि मैं ऊपर से बहुत गंभीर बना हुआ था. मेरे ख्याल में एक साथ ऐसी चोट बहुत कम लोगों को लगती होगी कि यदि हंसी आये तो बिडंबनाओं को फोड़ कर निकले और टीस उठे तो कलेजा मुंह तक आ जाय. उसी समय लोहे की एक कील लग गयी. बुखार चढ़ा और शरीर ऐंठने लगा. डाक्टर को टिटनिस का शक था. मैं चीखता था किंतु जो अंदर था बाहर नहीं निकल पाता था. दालान में बातें हो रही थीं. मुझे शरीर का ताप बर्दाश्त नहीं हो रहा था किंतु आरोपों की बौछार बर्दाश्त कर रहा था. प्रतिरोध करने की स्थिति में नहीं था.

मैंने जिन मूल्यों की हत्या की भी, उनकी दुर्गंध अब भी अपने कमरे में मिल जाती है और तुरंत बारजे में आकर टहलने लगता हूं. मैंने ऐसी हत्याएं क्यों कीं? किसी प्रकार के जस्टीफिकेशन के लिए नहीं, वरन निसंग होने के लिए. ऐसी निसंगता जिसके आधार पर व्यापक संदर्भों में पूरी रचनात्मकता के साथ उस भोगे हुए यथार्थ को अभिव्यक्ति दे सकूं.

धीरे-धीरे वे दिन भी गुजर ही गये हैं. सहनशक्ति भी बढ़ गयी है. अब तो ऐसे दिन आ गये हैं कि मैं ही क्यों हजारों-लाखों को गर्दिश के दिन देखने को मिल रहे हैं. □□□

लघुकथा

संस्कार

● मानसिंह 'दीप'

जब बूढ़ा चित्रकार वहां पर पहुंचा तो कस्बे का मशहूर गुंडा पन्ना, डकैत मदनी तथा उसके अन्य साथियों के बीच एक लड़का कुर्सी पर बैठा किसी कागज के टुकड़े पर कोई चित्र बना रहा था. उसके द्वारा बनाए हुए चित्र को देख कर चित्रकार को बड़ा आश्चर्य हुआ.

चित्रकार ने लड़के को बुलाया और उसका नाम पूछा.

लड़के ने अपना नाम सुल्तान सिंह बताया.

चित्रकार ने सुल्तान से कहा—बेटा, तुम इतने होनहार बालक हो कर इस गंदी जगह और गंदे लोगों के साथ! अपने जीवन का दुरुपयोग करो. तुम्हें यह शोभा नहीं देता. क्या गंदे वातावरण को त्यागकर अच्छे वातावरण में नहीं आ सकते? तुम मेरे साथ आओ, मुझे अपना गुरु स्वीकार करो. तुम्हारे संदर्भ में कुछ ऐसा करूंगा कि सारा विश्व तुम्हें सम्मान देगा.

मगर सुल्तान ने चित्रकार की बात स्वीकार नहीं की. इस बात से चित्रकार बहुत दुखित हुआ.

—यदि मेरी बात तुम्हें स्वीकार्य नहीं तो जाओ, किंतु अपना अमूल्य चित्र मुझे देते जाओ, चित्रकार ने आग्रह किया.

चित्रकार की बात सुनकर सुल्तान जोर से हंसा—इतनी छोटी मूल्यवान चीज के लिए इतना आग्रह! चित्र दे कर सुल्तान वापस दल के साथ चला गया और चित्रकार-चित्र लेकर अपने घर चल पड़ा.

एक दिन एक चित्र प्रतियोगिता में उसने उस चित्र को विचारार्थ भेज दिया, जो वह सुल्तान से मांग कर लाया था. उस चित्र पर मात्र सुल्तान का नाम लिख दिया था.

समाचारपत्रों में जब प्रकाशित हुआ कि सुल्तान के चित्र को प्रथम स्थान तो चित्रकार की खुशी का ठिकाना न रहा. उसी समाचार के नीचे यह भी प्रकाशित था कि सुल्तान नामक डकैत पकड़ा गया.

उसके दूसरे दिन लोगों को पता चला—कि हृदय की गति रुक जाने से बूढ़े चित्रकार की मृत्यु हो गयी ! □□□

धारावाहिक उपन्यास (दूसरी किस्त)

• अभिमन्यु अनत

लाल पसीना

अब तक आपने पढ़ा है :

सदियों पूर्व विस्तृत महसागर के बीच ज्वालामुखी के विस्फोट से मॉरिशस द्वीप का जन्म हुआ. सदियों तक यह द्वीप वीरान पड़ा रहा. फिर विभिन्न देशों ने इसे भारत तक पहुंचने का रास्ता बनाया. फ्रांस और इंग्लैंड ने इस पर आधिपत्य स्थापित किया. भारतीय मजदूरों के दल वहां पहुंचाये जाने लगे—इस आश्वासन पर कि अंग्रेज लोग मॉरिशस को फ्रांसीसियों से मुक्ति दिला कर भारतीयों को सौंप देंगे. इन मजदूरों में कुंदन भी था, जिसे स्वर्ण के बदले मिली उम्र-कैद. उसका कसूर भी कुछ नहीं था. एक दिन अनायास नदी-किनारे बैठा होने पर एक गोरी औरत नदी में स्नान करते उसे नजर आ गयी थी. उसके पति ने कुंदन पर बार किया और खुद ही पत्थर से चोट खा बैठा. कुंदन को मिली काल-कोठरी, पर वहां वह अकेला नहीं था. अनेक भारतीय वहां थे— निर्दोष, भोले-भाले भारतीय लोग, जो अकसर बिना बात जेल भेज दिये जाते थे. अब कुंदन को जेल से निकलने का रास्ता मिल गया था... और वह अंधकार की परत के नीचे जंगल में आगे बढ़ रहा था-- इस उम्मीद में कि वह किसी ऐसे गांव में पहुंच सकेगा, जहां भारतीय रहते होंगे .... अब आगे पढ़िए ....

इस द्वीप के चारों ओर समुद्र-ही-समुद्र था, जिसे लांघने के प्रयास में उसी में विलीन हो जाना कई लोगों ने बेहतर समझा. उन ज्वारभाटों के बीच अकुलाते हुए दम का घुटना क्षणिक था, चारदीवारी की तरह वह लंबा और स्थायी नहीं था.

चारदीवारी के भीतर कई नये लोग आ गये थे. वापसी पर कुंदन को लगा कि वह किसी यात्रा के बाद अपने घर लौट आया था. अपने पैर के दर्द के बावजूद वह खुश था. जानी-पहचानी दीवारें, अपने जैसे लगने वाले खंबे. वही तारों का परदा, लोहे की सलाखें. पहरेदारों की वही सूरतें, वही सिपाही. परिचारक भी वही. बंदी-बंधुगण. जंजीरों की वही झनझनाहट, वही खनखनाहट. जेलर का कर्कश स्वर! सभी कुछ वही था. वहां के धुंधलके में अपनेपन का वही एहसास था.

दुख अगर थोड़ा-बहुत हुआ था, तो बस इस बात का कि उसे पैंतालीस नंबर की वह कोठरी नहीं मिल सकी थी, जिसकी दीवारों पर उसने समय की छाप छोड़ी थी. सिपाही से पूछने पर पता चला कि उसमें किसी बहुत ही खतरनाक कैदी को रखा गया है. यह बात कुंदन को दूसरे कैदी से मालूम हुई कि उसकी पुरानी कोठरी में जो कैदी था, उसे बगावत के जुल्म में सात वर्ष की सजा हुई थी. कुंदन के भीतर उस व्यक्ति को जल्द से जल्द देखने की इच्छा पैदा हो गयी थी. लेकिन उसकी उस इच्छा और उस बागी के बीच एक दूसरी ऊंची दीवार थी. वह उत्तरी विभाग में था और कुंदन तो इस नये पूर्वी विभाग में आ गया था.

कैदियों के बीच बंदीगृह के सिपाहियों के अलग-अलग नाम थे. उनके सही नाम जानना कैदियों के लिए असंभव था, इसलिए एक सौ पैंतीस नंबर का कैदी मरने से पहले सभी को अपने ढंग के नाम दे गया था. किसी का नाम दुश्शासन था, किसी का जरासंध. वह जो द्वार पर खड़ा-खड़ा ऊंघने का आदी था, उसे भी कुंभकरण नाम से जाना जाता था. लंबी मूंछों वाले सिपाही को कंस मामा कह कर पुकारा जाता था. वह दुबला-पतला सिपाही, जो कुछ रहमदिल था, उसे कैदी विभीषण कह कर पुकारते थे. यह विभीषण अपने नाम की तरह जितनी डरावनी सूरत का था, भीतर से वह उतना ही कोमल था. यही एक सिपाही था, जिसे सभी कैदी आदर से देखते थे. उसे पास से गुजरते देख कर कुंदन ने कहा —विभीषण भैया, नमस्ते!

उसके पास पहुंच कर सलाखों के इसी ओर से विभीषण ने उसकी नमस्ते का उत्तर देते हुए पूछा—कां तो फिन रेतुरने?

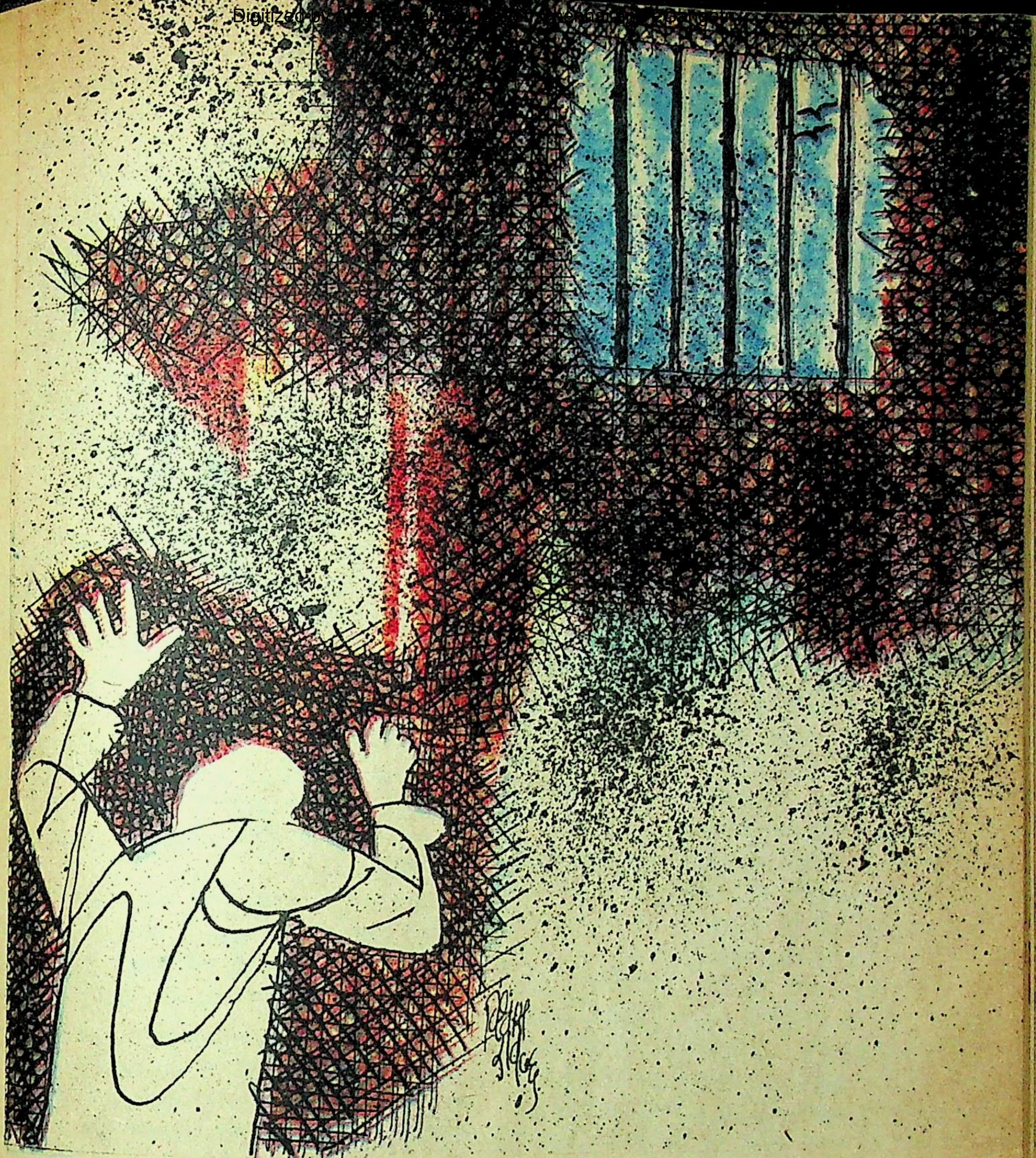
—आज ही..

—तुम्हारा पांव कैसा है!

—कुछ अच्छा है. शिष्टाचार के नाते कुंदन को झूठ बोलना पड़ा.

एक तरह से इस चारदीवारी के भीतर सारी कठोरता और बेरहमी के बावजूद कुंदन का कमी-कभार थोड़ा-बहुत आदर-सा हो ही जाता था. विभीषण के अलावा दूसरे सिपाही भी अच्छी मनःस्थिति में होने पर उससे एकाध बात कर ही लेते थे. दो कारणों से. एक तो उसके स्वयं सिपाही होने के कारण और दूसरी वजह थी उसका यहां सबसे पुराना होना.

कुछ देर पहले एक परिचारक कुंदन को उसकी पुरानी गठरी दे गया था. लकड़ी की खाट पर बैठ कर कुंदन ने गठरी खोली. उसके हाथ के कड़े छोटे के छोटे रह गये थे, और वह बढ़ कर अब ढलने को था. बीते दिनों की याद दिला जाने वाली कई चीजें थीं उस गठरी में. लेकिन ... कुंदन उन बीते दिनों को याद करके चुभन का शिकार होना नहीं चाहता था, इसलिए उन चीजों को उसने फिर से बांध दिया. बस उस फूलदार रूमाल को अपने हाथ में रह जाने



दिया जिसे मरने वाले ने अपनी मृत्यु के एक दिन पहले कुंदन को भेंट किया था. उस मरने वाले के बारे में भी कुंदन ने अधिक सोचना नहीं चाहा. बस रूमाल को अपने सिर और दीवार के बीच तकिये की तरह रख कर उठंग गया. चारदीवारी के भीतर पहली बार आ कर कुंदन ने इस छोटी-सी गठरी को बांधा था. उस क्षण वह गठरी उससे ले ली गयी थी. उस दिन वह जेलर की हिफाजत से निकल कर फिर से उसके हाथों में आ गयी थी, जब चारदीवारी के भीतर उसके तीस वर्ष पूरे होने को थे. तब से यह गठरी लगातार उसकी अपनी कोठरी में थी. जिस दिन वह अस्पताल को जाने लगा था, उससे गठरी ले ली गयी थी. आज उसे फिर से पा कर उसने अपने एक घनिष्ठ साथी को पा लिया था.

दूसरे दिन कुंदन के साथ रियायत की गयी. उसकी टोली के कैदियों के साथ उसे शहर के रास्ते बनाने को नहीं ले जाया गया. उसे कोठरी से निकाल कर ऊंची दीवारों के बीच के विस्तृत स्थान में मकई के दाने छुड़ाने का काम सौंपते हुए विभीषण ने हंस कर कहा—दो दिन के लिए तुम बड़े काम के लिए नहीं जा रहे हो.

वहां से जाने से पहले उसने कुंदन के घायल पैर को गौर से देखा. फिर यह बोलता हुआ आगे बढ़ गया—जल्द अच्छा हो जायेगा. पा त्राकासे.

कुंदन को लगा कि उसके घाव पर यह पहली मरहम-पट्टी थी.

जिस स्थान पर वह दो अन्य कैदियों के साथ मक्की के दाने छुड़ाने के लिए बैठा था, वहां से सामने

की पत्थरों की दीवार के बीच की दो खिड़कियां एकदम सामने पड़ती थीं. खिड़कियां काफी चौड़ी थीं, पर सलाखों के फासले बहुत कम थे. फिर भी बाहर के दृश्य काफी विस्तृत थे. दूर आदमी की-सी आकृति में खड़ा पहाड़. वहां के आसपास की हरियाली. दूसरी ओर शांत समुद्र का गहरा नीलापन... उड़ते हुए पक्षी—सभी कुछ कुंदन को एक दूसरी दुनिया की तरह लग रहा था. वह कोई अदृश्य गिरजाघर था, जिसके घंटे की आवाज कैद की चारदीवारियों के भीतर भी प्रतिध्वनित हो रही थी.

जिस मरने वाले की गठरी को अपनी गोद में लिये हुए भी कुंदन उसके बारे में सोचना नहीं चाहता, उसकी आवाज इस घंटे की आवाज के साथ मिल कर उसके कानों में गूंजने लगी. उन प्रतिध्वनियों के बीच कुंदन उस नौजवान के स्वर की अनुध्वनियां सुनता रहा—कुंदन भैया ...मुझसे बार-बार यही कहा जाता कि मैं अपने गले के उस तावीज को उतार फेकूं, जिसके भीतर हनुमान जी का चित्र था. मैं इनकार करता रहा. मेरी पीठ पर कोड़े बरसते रहे. मुझे गिरजाघर के आंगन में खड़ा करके घंटे को जोर से बजाया जाता ...और ...और... फिर मुझसे कहा जाता कि मैं घुटनों के बल टिक कर असली परमात्मा का नाम लूं. कुंदन भैया, मैंने सलीब वाली चेन लेने से इनकार किया—मेरे गले से मेरी मां की निशानी उस तावीज को नोच लिया गया—बस यही मेरा जुर्म रहा—इसीलिए मैं यहां हूं... जिन्होंने चेन ले ली, वे चैन से हैं. तुम पतियाओगे नहीं, भैया, उनके साथ हमारे अपने लोग भी मिले हुए थे.

कुंदन हंस कर रह जाता.

—उग्रसेन के बंस में कंस!

कुंदन की आंखों में आंसू नहीं आये. वे बहुत अधिक मात्रा में बह चुके थे. वह अपने होठों के बीच की उस विचित्र मुसकान के साथ मकई के दानों को छुड़ाता रहा. ये दाने छुड़ाने का काम कुंदन को तनिक भी पसंद नहीं था. पहले भी कई अवसरों पर वह ऐसा कर चुका था. बड़ा अजीब था यह काम! अंगुलियों की सक्रियता के साथ मस्तिष्क के तारों की सक्रियता भी बढ़ जाती थी. खयाल बरबस ही पीछे को लौट जाते और...

वह बार-बार एकाग्रता का प्रयत्न करता और एकाग्रता बार-बार खंडित होती रहती. एक याद से दूसरी याद से तीसरी...और वह यादगारों के खोखले जर्जर सोपानों के सहारे शून्य से घिर जाता.

★ ★

शाम को रोटी लेने के लिए कतार में आगे बढ़ते हुए कुंदन को मंगरू मिल गया. कड़कती धूप में पत्थर फोड़ने के बाद लौटा था वह. उसकी आंखों में अब भी थकान थी. चेहरे का रंग अधिक सांवला हो चला था. उसके समूचे शरीर से कमजोरी फूट रही थी. कुंदन को लगा जैसे यह आदमी वर्षों से बीमार हो. पहली बात कुंदन के मुंह से निकली—तुम्हारे पेट का दर्द कैसा है?

—लगता है उसके साथ ही जाना पड़ेगा.

—ऐसा क्यों कहते हो!

—छोड़ो इस बात को! तुम इसे अपने पास रख लो. यह कहते हुए मंगरू ने एक छोटी-सी पुड़िया कुंदन के हाथों पर रख दी.

—क्या है यह?

दुश्शासन के सामने आ कर खड़ा हो जाने से दोनों चुप हो गये. तार के बीच की छोटी-सी खिड़की के रास्ते बासी फ्रांसीसी रोटी के टुकड़े लिये कैदी अपने-अपने ठौर को जाते रहे. सिपाही जंजीरों का निरीक्षण कर-करके लोगों को कोठरियों की ओर भेजते रहे, जहां दूसरे सिपाही पहले ही से तैनात थे. दुश्शासन के हटते ही अपनी मुट्ठी में छिपायी वस्तु को गौर से देखते हुए कुंदन ने दोबारा पूछा—क्या है यह?

—तुम्हारे घाव में लगाने के लिए.

—कहां मिला?

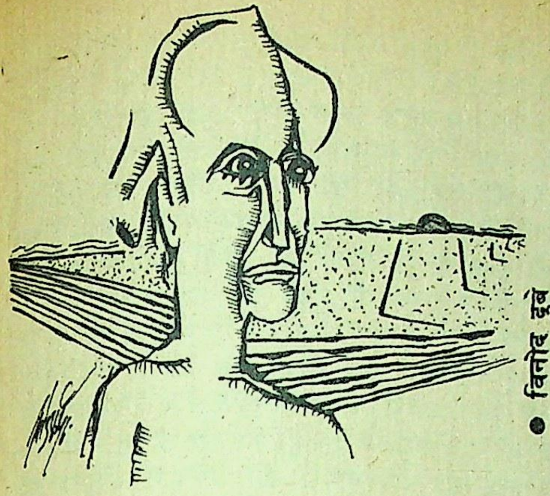
—मैंने खुद तैयार किया है, घास-पत्तों से. तीन बार लगाओगे, बस पांव एकदम चंगा हो जायेगा. मैंने अपने बाप से सीखा था. और भी कई दवाइयां मुझे आती हैं. बस अपने पेट के इस जालिम दर्द की क्या दवा है, यह नहीं आती मुझे. साला नया रोग होगा, नहीं तो इसका क्या चलता!

कुछ देर चुप रह कर उसने आगे कहा—साले, आदमी अस्पताल जाता है अच्छा होने के लिए. यहां तो रोग को और भी बढ़ाने के लिए जाना पड़ता है! जहां लग्गी से पानी पिलाया जाता है. दवाई तक के लिए छिछियाय पड़ेला!

दुश्शासन फिर सामने आ गया. बातें फिर रुक गयीं. इस बीच कुंदन के हाथ में पत्थर की-सी कठोर रोटी आ गयी. उसे लिये वह पूर्वी इलाके की ओर जाते हुए मंगरू को उत्तरी विभाग की ओर बढ़ते देखता रहा.

अपनी कोठरी में पहुंच कर सबसे पहले उसने उस पुलिंदे को खोला, जिसमें हरे रंग का लेप था. उसने तुरंत उसमें से थोड़ा-सा ले कर अपने घाव पर लगाया. लगाते ही उसे एक ठंडक-सी महसूस हुई. पुड़िया को उसी तरह बंद करके उसने उसे कोठरी के भीतर संजो कर रख दिया. यह नयी कोठरी उसकी पिछली कोठरी से थोड़ी बड़ी थी. इसमें दो-तीन कैदियों को एक साथ रखा जाता था. कुंदन को अकेले रखने का उन लोगों का न जाने क्या कारण रहा हो. यहां रोशनी भी अच्छी थी. तीन ओर पत्थर की दीवारें थीं. सामने लोहे की छड़ें थीं. दाहिनी ओर की दीवार के पत्थरों के बीच से मुट्ठी-बराबर के एक पत्थर को हटा लिया गया था, जिससे बगल की कोठरी तक कम-से-कम आवाज पहुंचायी जा सकती थी.

बाहर अंधेरा छाने में अभी कुछ देर थी, लेकिन कोठरियों के भीतर रात होने लगी थी. निरीक्षण पर निकले हुए विभीषण को रोक कर कुंदन ने पता लगा लिया कि यह कोठरी छह महीनों से खाली थी. इससे पहले इसमें एक इंजीनियर दूसरे कैदी के साथ तीन



साल की सजा भुगत कर एक पहरेदार की गोली का शिकार हो गया था. विभीषण ने बड़ी धीमी आवाज में कुंदन को बताया कि यह इंजीनियर बहुत ही साहसी था. अपने साथी को चाबुक की मार से बचाने के लिए उसने एक सिपाही की गरदन दबोच ली थी. पीछे से पहरेदार ने उस पर गोली चला दी थी.

बहुत जल्दी-जल्दी बातें बता कर विभीषण वहां से आगे बढ़ गया था. ऊंची दीवार के उस पार से कुंदन इस कहानी को उसी समय सुन चुका था, पर सच्चाई पहली बार मालूम हुई. जाते-जाते विभीषण उसके हाथ में आधी रोटी थमा गया था. हाथ से छूट कर नीचे गिर जाने पर कुंदन उसे उठाने के लिए झुका ही था कि उस धुंधलेपन में भी चारपाई के निचले भाग में उसने कागज के एक टुकड़े को लटके पाया. उसे बिना ज्यादा महत्व दिये वह खड़ा हो गया. चारपाई पर बैठते हुए फिर एकाएक न जाने क्या सोच कर वह नीचे आ गया. उकड़ूं बैठ कर उसने कागज को ध्यान से देखा और हाथ बढ़ा कर उसे वहां से निकाल लिया. कागज का अधफटा, पुराना टुकड़ा कई तहों में लिपटा हुआ था. उस पर काफी अस्पष्ट हिंदी में कुछ लिखा हुआ था. मुद्दत बाद किसी दूर देश में निहत्थेपन की स्थिति को जीते हुए अपनी भाषा के अक्षरों पर नजर पड़ जाने का मतलब होता है नवजीवन पा लेना और किसी घटाटोप अंधेरे में एकाएक प्रकाश का कौंध जाना . . .

कोठरी के भीतर गलियारे से आते हुए प्रकाश का केवल एहसास-सा होता. उस दूरी से आते-आते वह कुंदन की कोठरी में दम तोड़ता-सा लगता था. अपने हाथ के कागजों को कुंदन उलट-पलट कर देखता रहा. यह जान कर कि उस पर की लिखी हुई भाषा को वह पढ़ सकता था, उसके भीतर एक उत्सुकता जाग उठी थी. वह अपने किसी बंधु के विचार जानने को अधीर हुआ, पर उस धुंधलेपन में उसे पढ़ पाना कठिन रहा. पहली ही नजर में अक्षरों की अस्पष्टता उसे दिखायी पड़ गयी थी. दिन के उजाले में भी आसानी से वह उसे नहीं पढ़ पायेगा, यह उसे मालूम था. कागजों को टेंट के हवाले कर वह चारपाई पर जा बैठा.

उसके पांव का दर्द कम था. बगल की कोठरी से छिद्र के रास्ते दूसरे कैदी के बिरहा की धीमी आवाज रह-रह कर आती रहती. कुंदन को बहुत जल्दी नींद आ गयी. यहां की चारपाई बकाइन के तने के अलावा कुछ नहीं थी, फिर भी अस्पताल की चारपाई से अच्छी ही थी. कुंदन की पीठ की कठोरता की चारपाई की सख्ती से काफी घनिष्ठता हो चली थी. कुंदन की नींद इतनी गहरी रही कि सुबह चार बजे के घंटे की प्रलयंकर आवाज से भी वह नहीं जाग पाया. दुश्शासन ने लोहे की छड़ों को जोर से झनझना कर उसे जगाया.

कैदियों के जमा होने वाले विस्तृत स्थान पर पहुंचने पर उसने सभी कैदियों को पहले ही से कतार में खड़े पाया. हवा में शरीर को सिहरन दे जाने वाली ठंडक थी. सूरज की किरणों के ऊपर आने में अभी काफी समय था. फिर भी अंधेरा धीरे-धीरे मिट कर उजाले के लिए स्थान बना रहा था. दूर से आती हुई मुर्गों की एकाध बांगें सुनायी पड़ जाती थीं. जरासंध ने अपने भारी-भरकम स्वर में चिल्ला कर कतारों को सीधा करने का आदेश दिया. पहले शोरगुल के साथ कैदी हिल-डुल कर सीधे खड़े होने लगे. जरासंध ने दोबारा चिल्ला कर हल्लागुल्ला बंद करने का हुक्म दिया. उसने तथा कैदियों ने सभी कुछ यांत्रिकता के साथ किया.

—प्रिजोन्ये दे सां त्रुवा!

एकदम पहली कतार के उस छोर से इस छोर तक चिल्लाता हुआ कंस मामा बीच में आ खड़ा हुआ. उसकी इस आवाज की पुनरावृत्ति अन्य सिपाहियों ने भी की. अंत में विभीषण ने अपने क्रिओली उच्चारण के साथ हिंदी में आवाज दी.—कैदी दो सौ तीन!

कोई उत्तर नहीं मिला.

पंद्रह मिनट बाद कैदियों की कानाफूसी से पता चला कि कैदी दो सौ तीन अपनी कोठरी में मरा पाया गया. कुंदन उसे अच्छी तरह जानता था. रूपलाल तो सबसे तगड़ा, सबसे चंगा कैदी था! उसकी यह अकस्मात मौत? कैदियों के बीच एक बार फिर कानाफूसी हुई. कई प्रश्न उठे. कहीं रामदेव की तरह सिपाहियों ने इसे भी जहर तो नहीं दे दिया? दबी आवाज में कई लोगों ने सहमति दी.

—ऐसा ही हुआ होगा. कई दिनों से ये लोग उसे रास्ते से हटाने की सोच रहे थे. अभी परसों उसने अधपका पनछोछर भात रसोइये के मुंह पर फेंक दिया था.

पीछे से एक दूसरी आवाज आयी.

—अरे कल की बात है. उसने जरासंध के गाल पर थप्पड़ जड़ते हुए कह दिया था—एक दिन

तोर पारी, एक दिन मोर पारी, आज भैया पारी-पारी.

लोगों की कानाफूसी देर तक नहीं चल सकी. कैद के लगभग सभी कर्मचारी सामने आ गये थे. रामदेव के शव को दफनाने की बात सुन कर कुंदन से चुप नहीं रहा गया. उसने कंस मामा को संबोधित करके कहा—कंस मामा, पिछली बार भी हमने इस बात के लिए अपना विरोध प्रकट किया था, रूपलाल भी हिंदू है. उसे दफनाया नहीं जा सकता. जलाना होगा.

पल भर का सन्नाटा रहा.

कुछ देर बाद कंस मामा ने क्रोध भरे स्वर में कड़क कर कहा—ठीक है, उसे जला आने की तैयारी की जाये.

—इतनी जल्दी क्यों पड़ी है! डाक्टर को तो आने दिया जाये.

—फेर्म ता गेल! कंस मामा चिल्ला उठा.

और कुंदन को चुप रह जाना पड़ा. उसके पीछे से किसी साथी ने धीरे से कहा—डाक्टर के आइल न आइल बराबर का, कुंदन भैया.

* *

मान्योक-वितरण करते वक्त विभीषण ने कुंदन के कानों में कहा कि उसकी छुट्टी रद्द कर दी गयी. उसके साथ कोई रियायत नहीं होगी और उसे घायल पांव के साथ शहर की सड़कें बनाने जाना ही होगा. कुंदन को इस बात से जरा भी दुख नहीं हुआ. मान्योक खा कर उसने भरपेट पानी पी लिया और फिर काम पर जाने के लिए अपने को तैयार पाया.

उजाला होने लगा था, फिर भी सूरज की प्रथम किरणें धरती को छू नहीं पायी थीं, जब कैदखाने के फाटक से कैदियों की दो टोलियां निकलीं. तीन-तीन कैदियों के पैर एक लंबी जंजीर में बंधे हुए थे. हेमंत की आखिरी ठंडक को अनुभव करते हुए वे चल रहे थे. जंजीरों की खनक के साथ उनके कदम बढ़ रहे थे. कभी-कभार आदत से मजबूर सिपाही उन्हें अनुशासन में लाने के लिए अकारण ही चिल्ला पड़ते.

शहर के उस भाग में पहुंचने तक, जहां कैदियों को काम में लगना था, सूरज पूर्वी पेड़ों के ऊपर आ गया था.

चल कर आने की थकान अभी मिटी भी नहीं थी कि उन्हें काम का हुक्म मिला गया. चलने के कारण कुंदन के पैर का दर्द बढ़ गया था. उसे भीतर-ही-भीतर झेलता हुआ वह कंकड़ों को सड़क पर बिछाने में लगा रहा. कैदियों को तीन-तीन के बंधन से हटा दिया गया था. अलग-अलग होने पर भी सभी के एक-एक पांव और हाथ में जंजीर थी. इस पर भी किसी को कमर सीधी करने की इजाजत नहीं थी. मुंह पर बहते पसीने को पोंछने तक का मतलब था पीछे से बंदूक की मूठ का पीठ से लग जाना. पुल और इमारतें बनाते समय भी लोगों की यही दशा होती है.

पांच घंटों के लगातार काम के बाद सीटी बजी. जिसको जहां जगह मिली, बैठ जाना पड़ा. मैले हाथों ही सभी को सूखी रोटी और उबली हुई अरबी लेनी पड़ी. खाने के दौरान कुंदन का हाथ कोई तीन-चार बार टेंट पर पहुंचा. उस कागज को वह अब भी उसी स्थान पर महसूस रहा था. उसे एक बार पढ़ जाने की चाह अब भी उसके भीतर बनी हुई थी. अपनी उत्सुकता को उसे दबाना पड़ा, क्योंकि इस खुली जगह में सिपाहियों की आंखें एक क्षण के लिए भी उन्हें नहीं छोड़तीं. उसके ठीक सामने था जरासंध. कुछ देर के लिए अगर वह थोड़ा-सा हट जाता, तो संभवतः कुंदन उस कागज पर नजर दौड़ा सकता. कुंदन इस ताक में रोटी को धीरे-धीरे चबाता रहा. कुछ देर बाद, आखिर वह हो कर रहा जो कुंदन मन-ही-मन चाह रहा था. धूप से तंग आ कर जरासंध कुछ आगे जा बैठा, जहां थोड़ी-सी छांव की उसे उम्मीद बंधी. उसके हटते ही कुंदन ने आगे-पीछे देख कर टेंट से कागज को बाहर निकाला. सींक और किसी जंगली फूल के रस से लिखी हुई अस्त-व्यस्त पंक्तियां थीं:

'जिस दिन सिर पर बोझ लिये, दंड भुगतता हुआ मैं बड़ी दीवारों के चक्कर काट रहा था, उसी समय मेरी पैनी नजर को मेरी कोठरी के नीचे सुरंग का पता लग गया था. यह बात तो मुझे पहले ही से मालूम थी कि इस इलाके में जल-दस्यु सुरंग बना कर अपने खजाने छुपा जाते थे. दूसरी ही रात मैंने अपनी कोठरी में सूराख की खोज शुरू कर दी थी. आज पूरी सुरंग का पता चल गया है. अपनी चारपाई के नीचे के दो पत्थरों को हटा कर मैंने उनको सतही रख दिया है. सुरंग चालीस फुट की है. इसका यह मतलब है कि वह नाले के पास निकलती होगी. दीवार-पार मेरा साथी, कुछ डरपोक है, फिर भी कल रात हमें इस नर्क से बाहर हो कर रहना है, लेकिन यहां हर दूसरे क्षण कुछ से कुछ हो जाता है... कल की रात हम दोनों के लिए कैसी रहेगी, मालूम नहीं. इसलिए सुरंग का पता इस कागज पर लिखे जा रहा हूं. . .भाग्य हमारे पक्ष में रहा, तो यह कागज भी हमारे साथ इस चारदीवारी से पार हो जायेगा. और अगर ऐसा नहीं हुआ तो. . .जिसके हाथ यह कागज लगे, उसे आजादी मुबारक . . .'

कुंदन ने जल्दी से कागज को मरोड़ कर टेंट के हवाले कर दिया. उसकी हैरानी कम होने पर पहला प्रश्न उसके मस्तिष्क में पैदा हुआ:

लिखने वाला है कौन?

* *

सीटी बज चुकी थी. काम शुरू हो चुका था. हाथों की सक्रियता के साथ-साथ कुंदन का दिमाग भी सक्रिय रहा. वह सोचता रहा . . .

गोली खा कर मर जाने वाला इंजीनियर. . .?

एक दूसरी उत्सुकता से कुंदन का खयाल बोझिल होता गया. अपनी कोठरी में पहुंच कर सच्चाई जानने की उसकी अधीरता बढ़ती गयी. कैदी जीवन की इस लंबी अवधि ने कुंदन को जीवन की अलग परिभाषा दे दी थी. यही मान कर सांसें लेने में उसे

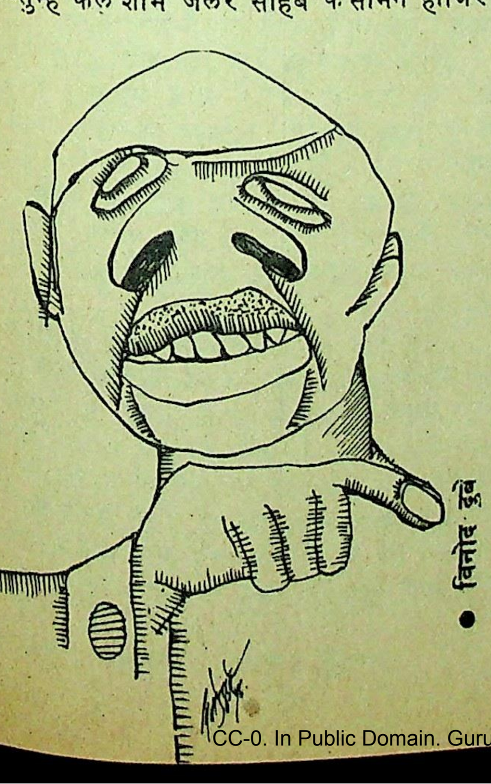
सुविधा होती कि उसका तो जन्म ही इस चारदीवारी के भीतर हुआ था और मरना भी उसे इसी के भीतर था. इस दायरे से बाहर हो कर सोचने से कोई लाभ नहीं था. चारदीवारी के बाहर की कल्पनाओं को अगर कभी-कभार सोच लेता तो न जाने किस भावना के वश हो कर. अपने शरीर को दीवारों के भीतर कैद रख कर वह अपने खयालों को भी अपने ही भीतर बंद किये हुए था. लेकिन ... आज अचानक ही उसके खयालों ने मुक्ति के लिए संघर्ष किया. उसने अपने आगे के चंद बचे हुए दिनों की कल्पना की. कैसी हो सकती है वह? अब तक उसका यह खयाल असंभव की सलाखों के भीतर बेबस था. वे सलाखें एकाएक गल गयी थीं. दीवारें ढह गयी थीं. और सामने पहाड़ थे, नदियां थीं, खेत थे, हरियाली थी— सांसों की स्वतंत्रता थी. . .विस्तृत क्षितिज था . . और क्या था?. . .उसने अपने खयाल को एक बार फिर असंभव की सलाखों . . .बेबसी की ऊंची दीवारों के बीच बंद हो जाने दिया.

* *

शाम को अपनी कोठरी के भीतर पहुंचने के लिए वह सामने खड़ा विभीषण का इंतजार कर रहा था. विभीषण बाकी कैदियों को भीतर पहुंचा कर कुंदन की कोठरी के पास आया. उसकी बगल में मंगरू था. कुंदन से उसने धीरे से कहा —कुंदन, मुझे लगता है कि मेरा दिन एकदम पास आ गया है. शायद तीन-चार दिन और. . .खैर, तुम्हारी बगल में मरना लिखा है, इसलिए मेरी कोठरी बदली जा रही है. ठीक तुम्हारी बगल वाली में आ रहा हूं.

कुंदन कुछ कह पाता कि तब तक विभीषण ने सलाखों वाला दरवाजा खोल कर कुंदन को धीरे से भीतर ढकेल दिया.

—तुम्हें कल शाम जेलर साहब के सामने हाजिर



होना है. यह कहते हुए विभीषण मंगरू के साथ दूसरी कोठरी की ओर बढ़ गया. जाते-जाते कुंदन ने मंगरू की आंखों में देख लिया था. उनमें मृत्यु की निर्धारित आभा थी.

अपनी कोठरी के भीतर कुंदन ने विभीषण के वाक्य को दोहराते हुए मन ही मन कहा, कल शाम जेलर साहब के सामने? वही धूप में नंगी पीठ पर सौ कोड़े और पंद्रह दिनों तक उस बड़ी चक्की को अकेले चलाना? या इससे भी अधिक?

चारपाई पर बैठ कर वह अंधेरा छाने की प्रतीक्षा करता रहा. बार-बार उसकी आंखें चारपाई के नीचे पहुंच कर कुछ ढूंढ़ निकालना चाहती थीं. वहां अंधेरा था. यह अंधेरा कुछ ही समय में पूरी कोठरी को अपने में कस लेगा. बगल की कोठरी से बिरहा की आवाज आती रही. अंधेरे को टटोलती हुई कुंदन की अंगुलियां आगे बढ़ीं.

धीरे-धीरे उसने चारपाई हटायी. दीवार को टटोलता रहा. उसकी अंगुलियां एक अडिग पत्थर से दूसरे अडिग पत्थर की ओर जाती रहीं. एकाएक उसकी धड़कनें तेज हो गयीं. एक पत्थर डगमगाया, फिर दूसरा. अपनी सांसों को थामे उसने एक पत्थर को धीरे-धीरे खिसका कर पीछे की ओर हटाया. दूसरा पत्थर आसानी से पीछे आ गया. कुंदन ने हाथों से सुरंग का अंदाज लगाया. तीन फुट. वह आसानी से उसके भीतर रेंग सकता था. मंगरू की कोठरी में मौत-सा सन्नाटा था. बगल की दूसरी कोठरी से बिरहा की कंपन भरी आवाज आती रही. गठरी उठा कर कुंदन ने अंधेरे की आंखों से एक बार कोठरी के चारों ओर के अंधेरे को देखा. पहली बार उसे अंधेरा प्यारा लगा. उसमें आत्मीयता थी, शीतलता थी. उस अंधेरे में शांति की भीनी-भीनी-सी गंध थी.

गन्ने का रस उबलते समय हवा सोंधी गंध से लद जाती है. कारखाने के काले धुएं से वातावरण धूमिल और बोझिल प्रतीत होने लगता है. धुएं से मुक्त स्थानों में आकाश जितना स्पष्ट दीखता है, कारखाने के इर्द-गिर्द वह उतना ही मैला-मैला सा लगता है. इसीलिए काम समाप्त होते ही किसन पहाड़ी की गोद में चला जाता और वहां की साफ नदी में साफ आकाश को देखा करता. ऐसा करने का अवसर उसे बहुत कम मिलता, क्योंकि उसका काम कभी न खतम होने वाला काम था. यही कारण था कि वह उस पहाड़ी और शीतल नदी-तट के लिए हमेशा लालायित रहता. नदी के पानी में तैरती हुई पेड़ों की हरियाली. परेन और कच्चू के पत्ते. उन पर चमकती हुई पानी की बूंदें. वह सभी कुछ उसके भीतर के तार-तार को झंकृत कर जाता. चट्टानों से टकराती फेनिल तरंगों की थपकियां उसे उस रोज के नीरस और ऊब भरे जीवन से काट कर क्षणिक स्वतंत्रता और आनंद का आभास देती थीं. कल ही रात की निर्मल चांदनी को वह नदी

के पानी में देख रहा था. स्वच्छ आकाश के तारे इतने पास लग रहे थे कि किसन सोच उठा था—बस थोड़े ही ऊपर जाने पर उन्हें छुआ जा सकता था. ये ही तारे उसकी अपनी धुएंदार बस्ती में कितनी दूर प्रतीत होते थे!

कल काम से छूट कर वह सीधे नदी-किनारे पहुंच गया था. वहां से नहा कर घर लौटा था और फिर चांदनी रात का खयाल आ जाने पर वह अपनी मां द्वारा लाख रोके जाने पर भी फिर से नदी को दौड़ गया था. किसन अपना उन्नीसवां वर्ष पार कर चुका था. अठारह की उम्र तक वह इतना अधिक डरपोक था कि रात का एक कदम भी अकेले चलने में डरता था. अठारह के बाद एकाएक उसमें भारी परिवर्तन आ गया था. पहली बार जब रात के वक्त वह नदी की ओर निकला था, उस समय उसके बाप के साथ-साथ पूरी बस्ती हैरान रह गयी थी. नदी एकदम दूर न हो कर भी एकदम पास नहीं थी. एक बार किसन ने गिन कर देखा, पूरे बारह सौ कदम पर थी.

आज जब फिर काम पर से लौटते ही किसन ने नदी की ओर पहला कदम उठाया, तो रघुसिंह ने उसे रोकने का प्रयत्न किया.

—अभी कल रात ही दस बजे रात के ऊपर लौटल रहले. तोर मां हियां रात भर परेशान रहल!

—आज रात होने के पहले लौट आऊंगा.

—ई अपन साथ का लिये जात रहे हो?

—नहा कर बदलने के लिए फतूही.

झूठ बोल कर किसन दौड़ गया. लंबी, चक्कर-दार पगडंडी से होता हुआ वह जब नदी-किनारे पहुंचा तो वहां के पेड़ों के झुरमुट के कारण शाम का सांवलापन घना था. काली चट्टान पर खड़े हो कर उसने चारों ओर देखा. जोर से सीटी बजायी. फिर अपने हाथ की मारकीन की फतुही को चट्टान पर रख कर वहीं बैठ गया. उसकी आंखें रह-रह कर अगल-बगल को देख जातीं. चट्टान से टकराती फेनिल लहरें उसके पांवों से भी आंखमिचौनी-सी खेल जातीं. कुछ दूरी पर के किसी घने पेड़ पर गांव भर के पक्षी इकट्ठे हो कर अजीब कोलाहल पैदा कर रहे थे. इस स्थान से किसन को बहुत अधिक प्यार था.

जब वे लोग कुएं-सी संकुचित उस दूसरी कोठी से इस इलाके में आये थे, उस समय किसन दस-ग्यारह का रहा होगा. इस जगह का पता उसे तीन-चार वर्ष बाद ही लगा था, जब पहली बार कंधे पर कुदाली लिये वह नौकरी के लिए निकला था. इससे पहले अपने घर के आसपास के पेड़ों के झुरमुट को वह बस देखा करता था और सुनता रहता था कि वहां नदी है. उसके पार्श्व की पहाड़ी तो उसी समय से उसे मोहे हुए थी. नदी और पहाड़ी की सुंदरता को निरखते हुए वह मन-ही-मन पूछा करता कि जब लोगों को गांव ही बसाना था, तो फिर इस सुंदर स्थान पर क्यों नहीं बसाया? अगर उसकी बस्ती नदी के करीब और पहाड़ी के एकदम नीचे होती, तो कितना अच्छा होता! इसके साथ ही उसे यह भी खयाल आ जाता कि यहां अपनी पसंद से कौन कुछ कर पाता है! कोठी वाले चाहें तो पहाड़ पर बिठा दें, चाहें तो बाड़े में बिस्तर लगवा दें.

★ ★

किसन के पास केवल प्रश्न ही प्रश्न थे, उत्तर नहीं थे उसके पास. जब भी वह प्रश्न करता, रघु उसके मुंह पर हाथ धर देता. उसका हर वक्त यही कहना होता कि दास प्रश्न नहीं करते, आज्ञा का पालन करते हैं. इतने पर भी किसन के प्रश्न नहीं रुकते. वह उसी स्वर में अपने बाप से पूछ बैठता—आखिर हम दास क्यों?

किसन अपने हर प्रश्न को गंभीर प्रश्न मानता, जबकि रघुसिंह उन्हें बच्चों की जिज्ञासा मान कर इधर-उधर के उत्तरों से टाल जाता. अपने आप के किसी भी उत्तर से किसन संतुष्ट नहीं था. उसने तय कर लिया था, उसके प्रश्नों के उत्तर मिलें, न मिलें, वह प्रश्न करता ही रहेगा. अपने इर्द-गिर्द के लोगों की हालत को देखते हुए उसे लगता कि इन सारे लोगों ने प्रश्न करने की अपनी ताकत को भुला दिया है. उनके अभाव-ग्रस्त जीवन का यही कारण था. अपनी जीभ को भीतर चिपका कर वे चुपचाप दारुण दंडों को झेलते आ रहे थे. किसन बार-बार पूछता, यह चुप्पी क्यों?

एक बात वह समझ नहीं पाता. तीन वर्षों से वह इधर काम कर रहा था. अपने बड़ों का अनुकरण करते हुए वह भी देह-तोड़ परिश्रम करता. उसकी अपनी किस्मत में भी गालियां थीं, बांसों की बौछार थी. वह क्यों चुपचाप सह लेता था? क्या केवल इसलिए कि शुरू से अब तक सभी लोग सहते आ रहे थे, इसलिए उसका भी वैसा ही करना अनिवार्य था? या वह भी उतना ही बेबस था, उतना ही डरपोक था, जितना कि सभी लोग थे? उसके अपने पास केवल प्रश्न होते तो फिर क्या कारण था कि इन प्रश्नों को जिनके सामने करना चाहिए, न करके वह अपने लोगों से किया करता? यह उसका अपने आप से प्रश्न होता.

पिछले सप्ताह खेतों में काम करते हुए वह मुंडेर से नीचे आ गया था. पैर में मोच आ जाने के कारण दो दिन काम पर नहीं जा सका था और उसके लिए उसके चार दिन के पैसे जब्त कर लिये गये थे. कुली बीमार हो कर भी घर पर नहीं रह सकता. ऐसा क्यों? जिस गोरे से वह यह प्रश्न करना चाहता था, उसके सामने पहुंचते ही उसकी हिचकियां बंध जाती थीं. क्यों?

जिस दिन अपनी आंखों से उसने अपने बाप को बैल की जगह ईख के बोझ को खींचते पाया था, उस दिन उसके भीतर के सभी प्रश्नों ने पिघल कर आक्रोश का रूप ले लिया था. वह आक्रोश भी सीला निकला. वह कुछ नहीं कर सकता था, क्योंकि औरों की तरह उसके अपने खयालों में भी उसके अपने हाथ-पांव बंधे हुए थे. उस दिन वह और कुछ न कर सका था. उसके मन और हृदय से कुछ आंसू बह कर रह

गये थे. वे आंसू भी इतने भारी थे कि वे उसके तमाम सवालों को बहा न सके. लेकिन क्या प्रश्नों से मुक्ति पा कर वह जी लेगा? उसने तो प्रश्न करते रहने को जीवन मान लिया था. एक बार अपने बाप से यहां तक कह गया था कि उसके प्रश्न करने की शक्ति को बने रहने दिया जाये.

..अगर शुरू से ही प्रश्न किया गया होता तो स्थिति यह नहीं रहती, उसे लगता.

..प्रश्न तो आज भी नहीं किया जा रहा. जो आवाज हस्तियों के कानों के लिए हो, उसके अपनी चारदीवारी के भीतर गूंजते रहने से क्या होता है?

वह यह मानने को विवश हो जाता कि वह आज भी डरपोक था, कायर था, भीरु था. एक वर्ष पहले की उसकी वह कायरता, वह भीरुता आज भी उसकी अपनी धमनियों में सजीव थी. उसका इस तरह अपने को बहुत अधिक साहसी बताते हुए रात में जंगलों की ओर आ जाना उसकी निर्भयता का द्योतक नहीं था. वह उसके अपने ढंग का भय था. उसकी यह ऊपरी निर्भयता उसके भीतर के भीषण भय को छिपाने का तरीका थी, और कुछ नहीं.

इस एकांत स्थान में पहुंच कर किसन अपने आप से संघर्ष करता रहता. जब थक जाता, तो प्राकृतिक सुषमा में अपने अंतर्द्वंद्व को डुबो देता. आज भी लहरों को चट्टानों से टकरा कर उन्हें चूर-चूर करने के उस प्रण पर वह गंभीरता से सोचते रहने के बाद अपने से प्रश्न कर बैठा—इस तरह अपनी सतही निर्भयता का प्रदर्शन करके क्या मैं भी लहरों की तरह सीले आक्रोश को ही व्यक्त तो नहीं कर रहा? क्या मेरा यह साहस भी इसी तरह फेनिल नहीं? अगर यही साहस है तो फिर?

वह उस व्यक्ति के बारे में सोचने लगा जो सचमुच ही साहसी था. जो कल रात को उसे यहां मिला था. जिसे देखते ही उसकी सारी निर्भयता काफूर हो गयी थी. वह डर गया था. भीतर-ही-भीतर कांप गया था.

इस समय उसे उसी व्यक्ति की प्रतीक्षा थी. उसी साहसी व्यक्ति की. उस ढलती उम्र में भी उस आदमी के भीतर के साहस की कल्पना मात्र से किसन प्रभावित था. वह सचमुच ही हिम्मत वाला था. निर्भीकता थी उसमें, तभी तो.

सूरज ढलने के बाद उसके पहुंचने की बात हुई थी. क्षितिज की लालिमा भी धीरे-धीरे मिट रही थी. थके-मांदे दिन को विदाई दे कर शाम रात की अगवानी करती हुई सूरज की दिशा को बढ़ी जा रही थी. कल किसन उससे बहुत अधिक बातें नहीं कर सका था. अगर वह ठीक समय पर पहुंच जाता तो काफी बातें हो सकती थीं. किसन उसके लिए फतुही ले आया था. कुल मिला कर किसन के पास दो ही कमीजें थीं. एक उसके शरीर पर थी, दूसरी को वह घर से उठा लाया था. कल रात उसे यह खयाल जरूर आया था कि अगर वह एक फतुही उस व्यक्ति को दे बैठता है, तो फिर एक ही से वह कैसे पार पायेगा? एक क्षण चिंतित हो कर दूसरे ही क्षण उसने अपने आपसे कहा था कि आगे की बात आगे देखी जायेगी.

अंधियारे को बढ़ते पा कर उसे इस बात की चिंता हो चली कि कहीं वह नहीं पहुंचा तो! उसने इस चिंता को अपने भीतर घर करने नहीं दिया. उसे झकझोर कर वह अगल-बगल को देखता रहा. एक बार फिर से जोर की सीटी बजायी. उधर का कलरव धीरे-धीरे कम होने लगा था. नदी की कलकल की आवाज बढ़ गयी थी. अंधेरा अभी उस गहनता को नहीं पहुंचा था, कि सामने की चीज दिखायी न पड़े. किसन ने अपने से पूछा—और अगर वह नहीं आया तो? पर क्यों नहीं आयेगा? कई कारण हो सकते हैं. यह भी हो सकता है कि वह गिरफ्तार कर लिया गया हो.

पर नहीं, किसन इतनी आसानी से यह मानने को तैयार नहीं था. उस आदमी के आने का विश्वास उसे अब भी था. शायद अपने छिपे हुए स्थान से बाहर आने के लिए वह कुछ और अंधेरा चाह रहा हो. हालांकि कैद की पतलून को बदल कर उसने अधफटी पुरानी धोती पहन रखी थी, फिर भी कैद की कमीज तो उसी पर थी. किसन इस तरह सोच ही रहा था कि झाड़ियों के बीच खरखराहट हुई. उसने उधर देखा. दूसरे ही क्षण आकृति दिखायी पड़ी और धुंधलके में भी किसन ने कुंदन को पहचान लिया. सामने आते ही कुंदन ने पूछा— क्यों बेटे, तुम अकेले हो न?

—मैंने कहा था न, अकेले ही आऊंगा.

—गांव में तुमने किसी से मेरी चर्चा तो नहीं की है न?

—मैंने आपको न करने का वचन दिया था.

कुंदन ठीक किसन के पास चट्टान पर बैठ गया.

—दिन भर आप भूखे रहे क्या?

—नहीं. .कुछ पपीते मिल गये थे.

—मैं आपके लिए फतुही ले आया हूं. आप इसे तुरंत पहन लीजिए. .कुछ छोटी होगी. पर कोई बात नहीं.

कुंदन ने जल्दी से अपने ऊपर से कैद की कमीज उतारी. आत्मशांति की गहरी सांस ली. अपने शरीर को बिल्कुल स्वच्छंद और बोझ से निवृत पाया. वर्षों बाद की स्वतंत्र मुसकान के साथ किसन की ओर देखा. उसके हाथ से फतुही ली और उसे पहन लिया.

वह क्षण था वह, जब आदमी के भीतर दर्द पहुंचाने वाले कीड़े कुतरना भूल जाते हैं और चोट-सी नहीं लगती.

अगले अंक में

कुंदन के लिए नयी जिंदगी की शुरुआत . . .किसन तथा रघुसिंह की मदद से मिला काम. . .काम की कसक. . .एक और तरह की यंत्रणा. . .और नये गांव के नये लोग. . .उनकी अपनी यातनाएं. . .

फिल्में

श्याम बेनेगल की आगामी फिल्म--'मंथन'

'अंकुर' के गूंगे-बहरे साधु मेहर की पीठ पर उभरते निशान, जमींदार के घर की खिड़की का टूटा हुआ शीशा, 'निशांत' की उजड़ी हवेली. . . चौपाल में घूमता हुआ शीशा तोड़ने वाला वह लड़का—लगता है वह श्याम की तीसरी फिल्म 'मंथन' का वयस्क भोला बन गया.

आजादी के बाद पनपी शोषणवादी ताकतों के नये मुखौटे—सरपंच (कुल भूषण), दूधवाला मिश्रा (अमरीश पुरी); विरासत में मिली मानसिक और आर्थिक गुलामी में जकड़े हरिजन और इस व्यवस्था के विरुद्ध आक्रोश से भरा विद्रोही भोला (नसीरुद्दीन). सरपंच और मिश्रा जैसी ताकतों के हथकंडे, कानूनी दावपेंच, बही-खातों का जंगल, मीठी बातें और उसके पीछे लगातार शोषण करते चले जाने की अंतहीन प्रक्रिया से लड़ने के लिए अनगढ़ भोला के पास कोई हथियार नहीं. उसका साथी हरिजनों का प्रतिनिधि मोती (हृदय लानी) उसकी बात की सच्चाई को समझते हुए भी, सब कुछ चुपचाप सहते रहने को मजबूर है. भोला और मोती जानते हैं कि सब गलत हो रहा है, लेकिन इस व्यवस्था की जड़ें उखाड़ फेंकने की उनमें समझ नहीं है.

लेकिन जब निस्वार्थ डॉक्टर बाबू पर भोला और मोती को विश्वास हो जाता है, तब उन्हें डॉक्टर बाबू की दूध वालों की कोआपरेटिव सोसायटी की योजना में अपने लोगों की भलाई की बात समझ में आने लगती है. सोसायटी की बात मिश्रा और सरपंच को बौखला देती है. गांव वालों को अपने प्रभाव से बाहर निकलते देख पाना उनके लिए सह्य नहीं. अवसरवादी सरपंच सोसायटी की आड़ में अनपढ़ हरिजनों को पहले की तरह अपने आधिपत्य में रखने के उद्देश्य से कोआपरेटिव प्रमुख का पद भी हथियाना चाहता है. भोला प्रमुख-पद के लिए हरिजनों की तरफ से मोती का नाम रखता है. जात-पात, ऊंच-नीच और गरीबी-अमीरी के अंतर को बखूबी समझने वाला मोती इतने प्रभावशाली व्यक्ति के सामने अदना-सा महसूस करता है. आखिर में भोला की सच्चाई और जिद, डाक्टर बाबू की निस्वार्थता और समझ तथा अपने साथियों का सहयोग और भलाई की भावना मोती को चुनाव लड़ने को मजबूर कर देती है. मोती प्रमुख पद का चुनाव जीत लेता है. भोला और हरिजनों का उत्साह दुगना हो जाता है और उन्हें अपनी ताकत का एहसास होने लगता है.

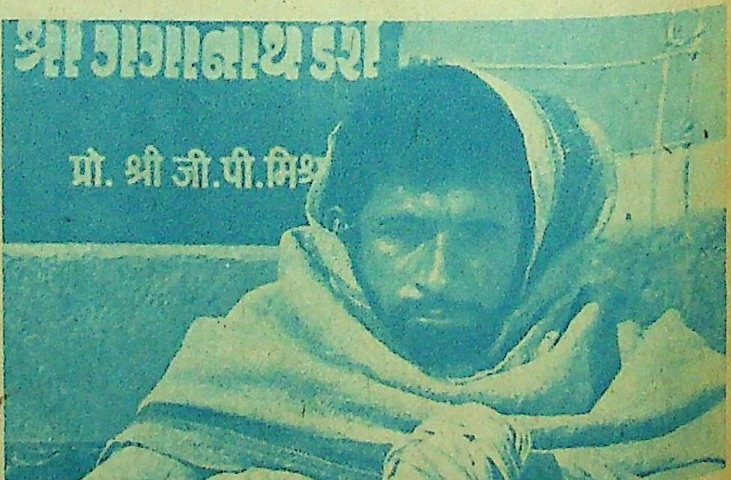
ईर्ष्या की आग से झुलसे हुए सरपंच और मिश्रा हरिजनों के आत्माभिमान और आत्मविश्वास की कोंपल को कच्ची समझ कर उखाड़ फेंकने के लिए ओछे हथकंडों का एक जाल बुनते हैं.

मिश्रा की दूकान के सामने गांव वालों की लंबी लाइन, शोषणवादी ताकतों के जबड़े में जाते मजबूर चेहरे भोला को हिला कर रख देते हैं. वह हरिजनों को आर्थिक और सामाजिक गुलामी के गर्त में गिरने से बचा कर उनका रुख सोसायटी की ओर मोड़ देता है. इस बार बनी सोसायटी उनके संघर्ष और सुदृढ़ आत्मविश्वास की नींव पर खड़ी है.

□ ओम



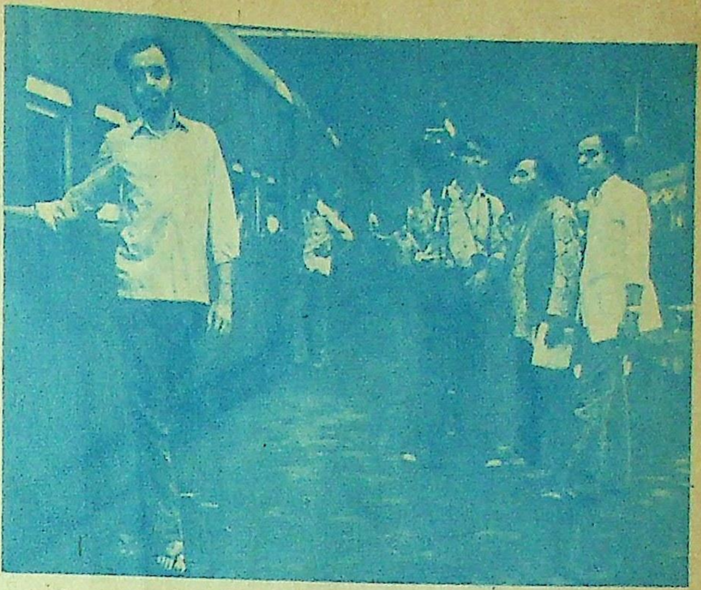
'मंथन' के दो दृश्य



बंबई टेलीविजन पर 'समांतर' फिल्में

बंबई टेलीविजन ने पिछले दिनों एक नया और अपने ढंग का पहला कार्यक्रम शुरू किया, जिसका नाम है **'समांतर'**. इस कार्यक्रम के अंतर्गत भारतीय भाषाओं की समय-संगत समांतर कहानियों पर बनी फिल्में दिखायी जाती हैं. साथ ही महत्वपूर्ण समांतर रचनाकारों की रचना एवं जीवन-दृष्टि से भी दर्शकों का परिचय कराया जाता है. टेलीविजन का यह प्रयास सराहनीय है, क्योंकि इसमें एक ओर चालू हिंदी फिल्मों तथा 'मनोरंजक' पलायनवादी कार्यक्रमों के अभ्यस्त दर्शकों को अपने समय की जरूरी सच्चाइयों से अवगत कराया जा सकेगा और दूसरी ओर इसके माध्यम से 'कहानी' और 'फिल्म' जैसी भिन्न विधाओं के समन्वय की संभावनाएं भी खोजी जा सकेंगी. इस कार्यक्रम की परिकल्पना पूना फिल्म इंस्टीट्यूट के उत्साही स्नातक तुंगेशनाथ मोहन ने की. **'समांतर'** की शुरुआत के बारे में उनका कहना है कि इस समय हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में समांतर साहित्य के माध्यम से जिस सम्यक चेतना की बात की जा रही है, टेलीविजन का कार्यक्रम उसी का सहभागी और पक्षधर है.

'समांतर' के पहले कार्यक्रम में इस नये आयोजन का स्वागत करते हुए कमलेश्वर ने इसे एक सार्थक कदम बताया और **'समांतर'** की वैचारिकता को स्पष्ट और सरल शब्दों में दर्शकों के लिए प्रस्तुत किया. इसके साथ ही सुधा अरोड़ा की हिंदी कहानी **'युद्धविराम'** पर आधारित आधे घंटे की फिल्म **'विशांतर'** भी दिखायी गयी. इस फिल्म में प्रमुख भूमिकाएं नाना पलसीकर, दुलारी, जगजीत उप्पल, अमर स्नेह आदि की थीं. **'समांतर'** के दूसरे कार्यक्रम में जितेंद्र भाटिया ने लेखक की राजनीतिक पक्षधरता पर बातचीत करते हुए प्रतिक्रियावादी एवं उग्र वामपंथी खतरों का सवाल उठाया. इसके साथ ही कमलेश्वर की **'जोखिम'** तथा हृदय लानी की **'सजा'** कहानियों पर आधारित एक फिल्म दिखायी गयी जिसका नाम था— **'सच, सिर्फ सच और सच के सिवा कुछ नहीं. . .'** इसमें पांच मिलते-जुलते आततायी चेहरों की भूमिका निभायी नमित कपूर ने और 'मरती हुई मां' के लिए लड़ने वाले युवक का काम किया स्वयं हृदय लानी ने.



'रक्तजीवी' की शूटिंग के दौरान (बायें से): नायक नमित कपूर, कैमरामैन बी. पी. सिंह, निर्देशक तुंगेशनाथ मोहन तथा कहानी और पटकथा-लेखक जितेंद्र भाटिया

'समांतर' की एक विशेषता यह भी है कि इन फिल्मों में मूल कहानी को पूरी अहमियत देते हुए इस बात की कोशिश की जाती है कि फिल्म का स्वर मूल कहानी से भिन्न न हो. यही नहीं, मूल कहानियां पढ़ने के इच्छुक दर्शकों को उन कहानियों की प्रतियां भिजवाने की व्यवस्था भी की गयी है. इस प्रकार इस कार्यक्रम के माध्यम से पाठकों और दर्शकों के उस बहुत बड़े वर्ग तक पहुंचने की कोशिश की जा रही है, जो समकालीन साहित्य से लगभग अपरिचित है. इस कार्यक्रम ने बहुत कम समय में ही अपनी विशिष्टता का परिचय दिया है और इसकी आगामी फिल्में भी ध्यान आकर्षित करने वाली हैं. भीष्म साहनी की **'चीफ की दावत'** पर बन रही फिल्म में सुपरिचित कलाकार सुधा शिवपुरी, इफ्तेखार, नंदिता ठाकुर, नमित कपूर आदि काम कर रहे हैं. इस फिल्म के अतिरिक्त बाबूराव बागूल, कामतानाथ, इब्राहीम शरीफ, मधुकर सिंह, और बहुत सारे अन्य सुपरिचित कथाकारों की श्रेष्ठ कहानियों पर भी फिल्में बनाने की योजना हैं. जितेंद्र भाटिया की **'रक्तजीवी'** पर **'समांतर'** के अंतर्गत ही दो घंटे की एक फीचर फिल्म भी बन रही है, जिसमें रीता भादुड़ी, नाना पलसीकर, लीला मिश्रा, देवेन वर्मा, अरूप गांगुली, नमित कपूर आदि भूमिकाएं निभा रहे हैं.

बंबई टी. वी. का यह नया प्रयास काफी समय-संगत है और इसके माध्यम से पहली बार सभी प्रतिबद्ध सांस्कृतिक विधाओं को एक-दूसरे का पूरक बनाने की बात सोची जा सकती है.

☐ **दर्शक**

भारत सरकार के प्रकाशन

उपयोगी पुस्तकें

	रु०
भारत सरकार के औद्योगिक और वाणिज्यक उपक्रमों के कार्य की रिपोर्ट भाग-I 1973-74	135.00
भारत के समाचारपत्र 1974 प्रथम भाग	37.00
बंगाल से आने वाले चक्रवात तूफानों की पुस्तिका	16.00
मंत्रालयों में संसदीय कार्य करने की नियम पुस्तिका	5.25
केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की वार्षिक रिपोर्ट 1974	5.00
पेटेन्ट अधिनियम 1970 (1970 का 39) की धारा 155 के अधीन पेटेन्ट डिजाइन और ट्रेडमार्क के महानियंत्रक का तृतीय वार्षिक प्रतिवेदन 1974-75	4.00
केन्द्रीय चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों की भर्ती, पदोन्नति, वरिष्ठता आदि के सम्बन्ध में नियम पुस्तक	2.00
गोंद और राब्त	2.00
स्व नियोजन की ओर	1.60
मैट्रिक से कम शिक्षित व्यक्तियों के लिए व्यवसाय	1.40
हिन्दी टाइपराइटिंग प्रशिक्षक	1.20
विक्रय एक व्यवसाय	1.20
मुद्रण व्यवसाय	1,05
महिलाओं के लिए व्यवसाय	1.00
राज्य सभा सदस्यों की सूची जिसमें स्थायी पते तथा दिल्ली के पते और टेलीफोन नम्बर दिये गये हैं 2 फरवरी—1976	1.00
छोटे बल्व	0.80
इस्पात प्रबलित अल्युमीनियम कोर के विद्युत चालक	0.80
लेखाकारिता के क्षेत्र में रोजगार के अवसर	0.80
संविदा के संदाय से आयकर की कटौती	0.75
फुटकर काम की छापे की मशीन	0.25

सभी अधिकृत विक्रेताओं से प्राप्त

नकद बिक्री के लिए

किताब महल

यूनिट नम्बर 21, एम्पोरिया बिल्डिंग,
बाबा खड़ग सिंह रोड, नई दिल्ली (फोन: 44783)

भारत सरकार बुक डिपो

8, के.एस. राय रोड, कलकत्ता-1 (फोन : 23-3813)

भारत सरकार बुक डिपो

ग्राउंड फ्लोर, न्यू सी.जी.ओ. बिल्डिंग,
न्यू मैरीन लाइन्स, बम्बई- 20

दिल्ली में प्रकाशन विभाग के बिक्री केन्द्र :

- उद्योग भवन (फोन : 372082)
- प्रकाशन विभाग, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054
- सी.बी.आर. बिल्डिंग, बहादुरशाह जफर मार्ग

मिलने का पता :

नियंत्रक, प्रकाशन विभाग
सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054

डाक बिक्री के लिये :
प्रकाशन नियंत्रक
सिविल लाइन,
दिल्ली-110054

टिप्पणी :

भारत में डाक से प्राप्त 5 रु. से कम के आर्डरों पर डाक खर्च अलग, मूल्य के 20% की दर से। डाक से 2 रु. से कम के आर्डरों पर रजिस्ट्री खर्च अलग।

davp76/113

विविधा

नाट्य समारोह

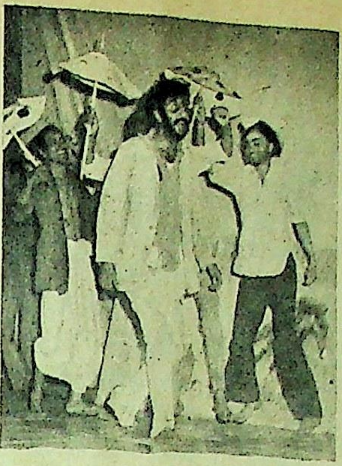
जयपुर में मोहन राकेश की स्मृति में एक चार-दिवसीय नाट्य समारोह का आयोजन 'त्रिमूर्ति' द्वारा किया गया.

पहली शाम को दो आंग्ल नाटिकाओं का मंचन 'अभिसारिका' के तत्वावधान में हुआ. एक थी डेविड कांपटन की हास्य-व्यंग्य नाटिका **'लिटल ब्रदर, लिटल सिस्टर'** तथा दूसरी, हेरल्ड पिंटर की स्त्री-पुरुष के एकांत-संबंधों की मर्मांतक कहानी **'ए स्लाइट एक'.** निर्देशक थे श्री अजय प्रकाश.

दूसरी शाम शंभु मित्र का नाटक **'कंचन रंग'** (अनुवाद : श्री नेमिचंद जैन) श्री एस. वासुदेव के निर्देशन में प्रस्तुत किया गया.

तीसरी शाम विजय तेंडुलकर के बहुश्रुत मराठी नाटक **'घासीराम कोतवाल'** का हिंदी अनुवाद श्री एस. वासुदेव के निर्देशन में प्रदर्शित हुआ.

अंतिम शाम मोहन राकेश के **'आधे-अधूरे'** का मंचन हुआ जो इस समारोह का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन था. निर्देशक श्री एस. वासुदेव ने महेंद्रनाथ, बॉस, जगमोहन और जुनेजा की चारों मुख्य भूमिकाओं में, इन पात्रों की प्रवृत्तियों के अनुकूल तथा भिन्न-भिन्न अभिनय तकनीक के द्वारा, दर्शकों को



'छतरियां' : दीपक सूथा, अशोक गोस्वामी, तथा मनजीत

प्रभावित किया. श्रीमती एस. वासुदेव ने सावित्री की भूमिका में मानसिक द्वंद्वों को सफलतापूर्वक अभिव्यक्ति दी और बिन्नी के रूप में माधवी प्रकाश ने.

त्रिमूर्ति का यह महत्वपूर्ण और सफल आयोजन था, जिसके लिए प्रमोद मसीन विशेषतः साधुवाद के पात्र हैं.

☐ **भानुस्वरूप 'विवश'**



'आधे अधूरे' : माधवी प्रकाश (बिन्नी), श्रीमती वासुदेव (सावित्री) एस. वासुदेव (बॉस)

प्रतिध्वनि

कानपुर में उत्तर प्रदेश की प्रमुख नाट्य संस्था 'प्रतिध्वनि' ने पिछले दिनों मोहन राकेश के एकांकी **'छतरियां'** का अत्यंत मनोहारी मंचन किया. सफलता का श्रेय है पं. विजय दीक्षित (निर्देशन), ओम प्रकाश अवस्थी (ध्वनि संयोजन), भोलानाथ शर्मा (प्रकाश), नवरतन (मंच-सज्जा) और अशोक गोस्वामी, तपन डे, के. कुमार, दीपक सूथा, जीवन शर्मा तथा मनजीत (अभिनय) को.

'गिनी पिग' : अलख नंदन (तीसरा) तथा मधुभासचंद्र (पहला)



विवेचना

जबलपुर की प्रसिद्ध रंग-संस्था 'प्रतिध्वनि' ने म. प्र. प्रगतिशील लेखक संघ के प्रांतीय सम्मेलन के अवसर पर **'गिनी पिग'** का प्रदर्शन किया, जिसे दर्शकों की प्रचुर प्रशंसा प्राप्त हुई. मधुमास चंद्र, रीना भारत, कुमार किशोर तथा निर्देशक अलख नंदन का अभिनय श्रेष्ठ था. प्रमोद सोलंकी की प्रकाश-व्यवस्था और अजय घोष का ध्वनि-संयोजन भी सराहनीय था.

☐ **विद्याभूषण दुबे**



अध्यक्ष-पद से बोलते हुए श्री करुणापति त्रिपाठी

प्रचारक बुक क्लब

वाराणसी में हिंदी प्रचारक संस्थान की प्रचारक बुक क्लब योजना के अंतर्गत प्रकाशित पुस्तकों के प्रथम सेट का विमोचन २५ अप्रैल को आयोजित समारोह में 'नारदन' इंडिया पत्रिका' के संपादक तुषार कांति घोष ने किया और प्रथम सेट समारोह के अध्यक्ष, संस्कृत विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री करुणापति त्रिपाठी को भेंट किया.

संस्थान के संचालक कृष्णचंद बेरी ने योजना पर प्रकाश डालते हुए बताया कि इसके अंतर्गत पाठकों को सर्जनात्मक और सुरुचिपूर्ण साहित्य अत्यल्प मूल्य पर उपलब्ध कराया जायेगा. ☐☐☐

कृतियां

उपन्यास-संकलन

'मेरा अपना संसार'

लेखक : नरेंद्र कोहली ; प्रकाशक : पराग प्रकाशन, दिल्ली–३२ ; पृ. सं.–१३१ ; मूल्य–दस रुपये.

'मेरा अपना संसार' में नरेंद्र कोहली के दो छोटे उपन्यास संकलित हैं, यद्यपि तकनीक और कथा-क्रम की दृष्टि से ये दोनों ही लंबी कहानियों की श्रेणी में आते हैं न कि उपन्यासों की.

'मेरा अपना संसार' का पहला 'उपन्यास' **'मेरा अपना संसार'** शीर्षक से ही है, जिसमें एक निम्न-मध्यम परिवार की एक लड़की किसी छोटे शहर से दिल्ली में नौकरी करने आती है. वह अविवाहित लड़की और उसकी विधवा मां, एक अपेक्षाकृत संपन्न परिवार की शरण में आ कर उसके मकान का पिछला भाग किराये पर ले लेती हैं. लड़की धीरे-धीरे संपन्न परिवार के एक नवयुवक के संपर्क में आती है तथा उसके प्रति आकर्षण महसूस करने लगती है. परस्पर संपर्क से वह युवक भी, जो लड़की से अवस्था में कुछ छोटा है, उसके निकट आने लगता है, और तब सहसा लड़की को लगता है कि यह ठीक नहीं हो रहा. अंत में लड़की अपनी नैसर्गिक इच्छाओं का दमन करके अपने आपको उस युवक से काट लेती है.

इस प्रकार 'उपन्यास' का कथ्य सीधा-सादा ही है, पर चूंकि वह जीवन के यथार्थ से उद्भूत है, अतः उसमें मार्मिकता है. आर्थिक रूप से हीन स्तर के परिवार और व्यक्ति, किस प्रकार एक विशेष प्रकार के हीन भाव से पीड़ित हो जाते हैं, यह भी इस कथ्य में सुस्पष्ट है. पर इस 'उपन्यास' का दुर्बल पक्ष यह है कि लेखक ने इस पर अपेक्षित श्रम नहीं किया है और कई स्थल बड़े ही सतही और चलताऊ ढंग से लिख डाले हैं.

दूसरा संकलित 'उपन्यास' **'एक ही विकल्प?'** है, जिसमें एक ऐसी निम्नमध्य वर्गीय लड़की की कहानी है, जिसे अपने परिवार में हर समय प्रताड़ना मिलती है और लड़की को अपना परिवार एक जेलखाना-सा लगता है जिससे वह किसी भी कीमत पर मुक्ति चाहती है. यह दूसरा 'उपन्यास' अपेक्षाकृत छोटा है और कथ्य की दृष्टि से सुगठित भी है. इसमें वातावरण और विभिन्न पात्रों के कार्य-कलापों और परस्पर व्यवहार का चित्रण भी अपेक्षाकृत अनारोपित ढंग से और स्थितियों के अनुकूल हुआ है. आर्थिक रूप से विपन्न परिवारों के सदस्य जब जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं से भी वंचित रह कर छोटे-छोटे कमरों में कीड़ों-मकोड़ों के समान जिंदगी जीते हैं, तो इसका दुष्प्रभाव उनके पूरे व्यक्तित्व को ग्रस डालता है. नरेंद्र कोहली के साहस की यहां सराहना की जा सकती है कि उन्होंने **'एक ही विकल्प?'** में कुछ ऐसी ही कष्टप्रद स्थितियों को भीतर से देखने की कोशिश की है और उसमें वह काफी सीमा तक सफल भी हुए हैं.

□ **डॉ. वीरेंद्र सक्सेना**

नरेंद्र कोहली



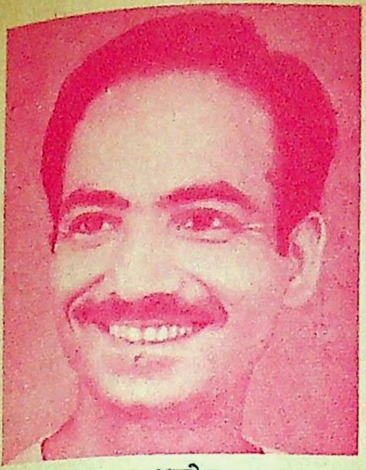
उपन्यास

'सीपी भर प्यास'

लेखक : पाल भसीन; प्रकाशक : लोकवाणी प्रकाशन, दिल्ली; पृष्ठसंख्या—८०, मूल्य – पांच रुपये.

'सीपी भर प्यास' पाल भसीन का प्रथम उपन्यास है. इस अति क्षीण-कलेवर उपन्यास का उपजीव्य कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है. सामंती संस्कृति की गलित प्रवृत्तियों का पोषण हमारे समाज तथा देश में आज भी भयावह विकटता के साथ हो रहा है —केवल अंतर यह है कि उसका बाहरी मुखौटा बदल गया है. आजादी के बाद अमरबेल की तरह पनपती नियोरिच क्लास रूप, संस्कृति, कला तथा ज्ञान पर अपना एकाधिकार स्थापित कर चुकी है—श्रम से घृणा करने वाला नव धनाढ्य वर्ग जोंक बन कर श्रमशिथिल जन का न केवल आर्थिक स्तर पर शोषण कर रहा है, वरन् उसके आंतरिक संसार को भी विषाक्त बना रहा है.

द्वारका प्रसाद चमड़े का एक कुटिल, व्यापारी ऐसे परिवार में प्रवेश करता है, जिसका मुखिया आजादी के संघर्ष में अपनी समस्त सांसारिक उपलब्धियों का उत्सर्ग कर चुका है. परिवार में तीन लड़कियां, एक पुत्र तथा उनकी माता है. लोलुपता से आक्रांत द्वारका प्रसाद विकट हत्यारा भी है. वह इस साधनहीन परिवार के मुखिया को जहर दे कर मार डालता है और परिवार की दो वयस्क लड़कियों का शीलभंग करता है. यह अर्थ-पिशाच परिवार के एकमात्र पुत्र नंदू को भी कुटेवों में धकेल कर निर्लज्ज, लबार और अमानवीय बना देता है. सबसे छोटी पुत्री शकुन को भी विविध हथकंडों का इस्तेमाल करके अपनी दुर्दम वासना का शिकार बनाने को हरदम उद्यत



पाल भसीन

रहता है. किंतु शकुन भाव-प्रवण और जहीन होने के साथ-साथ इस्पाती जिजीविषा से संयुक्त है. शकुन अपनी बहनों तथा भाई की परोपजीवी वृत्ति से भीतर-ही-भीतर उत्कट घृणा करती है और अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त करती है. वह अथक श्रम और अध्यवसाय से शिक्षा ग्रहण करते हुए धनलोलुप वर्ग से दृढ़ता पूर्वक जूझती रहती है. अंततः वह अपनी राह चुनने में समर्थ हो जाती है और जीवन के उज्ज्वल पक्ष को ही तरजीह देती है.

शकुन के मानसिक घात-प्रतिघात का पाल ने अनुभूतिपरक स्तर पर प्रामाणिक विश्लेषण किया है और अकेले पड़ जाने वाले पात्र की आंतरिक छटपटाहट को तीव्रता से व्यक्त किया है. उपन्यास का वैचारिक पक्ष भी लेखक की अंतर्दृष्टि का परिचय देता है.

निम्न-मध्य वर्ग की समस्त रुग्ण मानसिकता पाल भसीन की इन पंक्तियों में उजागर हो उठती है : 'वे जन-जातियां जिनमें औरत की खरीद-फरोख्त का प्रचलन है, उन्हें हम असभ्य कहते हैं. इसके विपरीत मैं समझती हूं उनमें भी औरत की आजादी कायम है और फिर वे (मध्य वर्ग की तरह) अपने सभ्य और सुसंस्कृत होने के फतवे भी तो नहीं देते. इस. . .सफेदपोश, सभ्य (तथाकथित) वर्ग की भीतरी पर्तों को मुझसे ज्यादा कौन जानता है.' (पृष्ठ ६५).

पाल भसीन के इस छोटे-से उपन्यास में ज्वलंत समस्याओं को वैचारिक स्तर पर भी गहराई से जांचा-परखा गया है.

☐ से. रा. यात्री

आलोचना

'कहानी और कहानी समीक्षा का मूल्यांकन'

संपादक : इंद्रनाथ मदान, राकेश वत्स; प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली. मूल्य : २५ रुपये

साहित्य में जो रचना आलोचना को जन्म नहीं दे सकती, वह रचना नहीं है. रचनात्मकता होगी, तो उसकी आलोचना होगी ही. सिर्फ कहानी की ही आलोचना होती हो, ऐसी बात नहीं. आलोचक आलोचना की भी आलोचना करता है, कि जो हुआ, वह ठीक है?

अनुभव क्या कहता है? अनुभव अवधारणा के मुकाबले बेहतर रहता है. हम अनुभव-आवृत वैचारिकता के पक्षधर हैं. साहित्यिक तो खैर क्या, जिसे हम और आप 'आम आदमी' के नाम से पुकारते हैं, वह 'जब' तक इतनी-सी बात समझता है, चाहे व्यक्त करने के लिए वह कैसी भी भाषा का उपयोग करता हो, बहस के लिए बहस का कोई अर्थ नहीं. हम अपनी और अपने परिवेश की जिंदगी को, पश्चिम की तरह, एक फ्रॉड नहीं मान सकते. जीवन में आस्था ही आदमी का संबल है.

कहानी के भीतर गुजर कर कहानी तक पहुंचा जा सकता है.

'नयी कहानी' हो या छठे दशक की कहानी या फिर, आज की, समांतर कहानी, रचना के गुणदोष को विवेच्य माना जा सकता है, लेकिन रचनात्मकता की केवल सराहना करना आवश्यक है. सही आलोचना हमेशा रचना की सराहना करती है, उसे समझने की कोशिश करती है. चिंतन के क्षेत्र में केवल विवेक-सम्मत ही स्थान पा सकता है.

स्वतंत्रता के समानांतर 'नयी कहानी' का जन्म हुआ. 'नयी कहानी' मूलतः सामाजिक संबंधों को लेकर आम आदमी के जीवन में उभरे अंतर्विरोधों की कहानी थी. आर्थिकता और संवेदना-ह्रास की कहानी भी वह थी लेकिन उतनी ही नहीं, जितनी कि आदमी की गरिमा और पीढ़ीगत अंतर की. सातवें दशक की कहानी केवल सेक्सगत नहीं थी. इस दशक के दौरान धर्मवीर भारती, कमलेश्वर, सुधा अरोड़ा, श्रवणकुमार, मधुकर सिंह, प्रभृति लेखकों ने उल्लेखनीय रचनाएं दी हैं. इन लेखकों ने स्थिति की आर्थिकता को रेखांकित किया. ये लोग अन्य लोगों की तरह 'एब्सर्ड' नहीं हुए. एब्सर्ड होना अपने आप में कोई गलत बात नहीं है, लेकिन उसका उपयोग बिरले ही कर पाते हैं. इन रचनाकारों की रचनात्मकता के संदर्भ में ही हम समांतर कहानी को बेहतर समझने की स्थिति में हो सकते हैं. श्रवणकुमार, कामतानाथ, मधुकर सिंह, भारती, कमलेश्वर —और कौन नहीं? —सभी कहानी में सहयोग कर रहे हैं.

एक मूक समर्पित व्यक्तित्व लिये आम आदमी जी रहा है. वह अपनी तकलीफ किसी से कह भी तो नहीं सकता. आज की कहानी ऐसे आदमी की, सही आदमी की, भाषा है.

गद्य युग-संगति का साहित्यिक रूप है. अन्याय है, तो क्या उसका प्रतिकार नहीं है? आज की कहानी सही मायने में मामूली आदमी की कहानी है. यथार्थ की संवेदना से चल कर बात अब संवेदना के यथार्थ तक पहुंच गयी है.

☐ श्याम गोविंद

राजगीर में

अखिल भारतीय समांतर लेखक सम्मेलन (५)

गत १, २, ३ दिसंबर, १९७५ को समांतर लेखकों का पांचवां अखिल भारतीय सम्मेलन राजगीर, बिहार, में संपन्न हुआ. इस सम्मेलन में हिंदी के अलावा मराठी, गुजराती, सिंधी, उर्दू, पंजाबी, कच्छी तथा तमिल के प्रतिनिधि लेखकों ने भाग लिया. पिछले चार अंकों में आपने उद्घाटन-समारोह, पहली दो गोष्ठियों तथा तीसरी गोष्ठी में पढ़े गये दो लेखों की रिपोर्ट पढ़ी. यहां प्रस्तुत है तीसरी गोष्ठी में ही इन लेखों पर हुई बहस का विवरण.

राम अरोड़ा और अजित पुष्कल के विचारोत्तेजक लेखों ने ग्राम्य-जीवन पर चर्चा के लिए सही जमीन तैयार कर दी थी. सभा में बिहार एवं अन्य प्रांतों के आंचलिक जीवन से बहुत अंतरंगता से जुड़े हुए अनेक लेखक मित्र उपस्थित भी थे. लिहाजा एक बहुत सार्थक विश्लेषण के आसार सभी को दिखायी देने लगे थे.

बहस की शुरुआत करते हुए धूमकेतु ने कहा कि पिछले दस-पंद्रह सालों में गांव की स्थितियों में काफी परिवर्तन आया है. निम्न-मध्य वर्ग का एक टुकड़ा तरक्की करके मध्यवर्ग में शामिल हो गया है और दूसरी तरफ एक निम्नतर वर्ग भी बनता जा रहा है, जो हर दृष्टि से बहुत पस्त और टूटा हुआ है.

कमलेश्वर ने कहा कि प्रजातांत्रिक व्यवस्था होने के बावजूद आर्थिक कारणों से सामान्य ग्रामीण जन की मताधिकार की मूल शक्ति भी दूसरों के हाथों में रही है और गांव का प्रभुताशाली तबका इन बदली हुई स्थितियों में भी निम्न वर्ग का शोषण करता रहा है.

जयराम प्रसाद सिंह ने कहा कि गांव में बसे हुए भूमिहीन मजदूर जब जमीन पाने के लिए संघर्ष करते हैं तो कई बार उन्हें नक्सलवादी या उग्रपंथी घोषित करके दबाने की कोशिश की जाती है. इस तरह का दमन गांव का वह संपन्न तबका करता है जो वास्तव में अपना प्रभाव-क्षेत्र दूर-दूर तक फैला सकता है. निम्न वर्ग के किसानों के बच्चों को पढ़ने का प्रोत्साहन नहीं दिया जाता, क्योंकि संपन्न तबके को लगता है कि ये बच्चे पढ़-लिख कर उनका विरोध करना भी सीख सकते हैं. शायद इसलिए आज भी गांव का गरीब लड़का अकसर स्कूल जाने की जगह बकरियां चराता हुआ पाया जाता है. संपन्न वर्ग गांव में धर्मांधता फैलाता है और उपवर्गों के बीच आपसी भेदभाव भी पैदा करता है. गांव में होने वाले सामूहिक आयोजनों में निम्न - मध्य वर्ग और निम्न वर्ग के व्यक्तियों को अलग-अलग स्तर का खाना दिया जाता है. बल्कि सबसे नीचे का तबका तो बड़े आदमी के श्राद्ध के समय भी भूखा रह जाता है. इस वर्ग के लिए जीवन-स्थितियां इतनी दारुण बन चुकी हैं कि वह नियमित भोजन पा कर जिंदा रहने की चिंताओं से आगे कुछ सोच ही नहीं पाता. उसका वंचित रहना असल में संपन्न वर्ग की सुरक्षा का द्योतक बन गया है.

अवधेश अमन ने गांव में शोषण की स्थितियों का जिक्र करते हुए कहा कि इन कठिनाइयों से घबरा कर ही अकसर गांव का नौजवान शहर की ओर भागता है. इस तरह के पढ़े-लिखे वर्ग का कोई इक्का-दुक्का नौजवान जब शहर के मजदूर संगठनों की जानकारी हासिल करके गांव लौटता है, तो संघर्ष की सही शुरुआत होती है, परंतु ऐसा शायद ही कभी होता है. क्योंकि 'गांव का पढ़ा-लिखा युवक वर्ग गांव की अपेक्षा शहर में बसना ही पसंद करता है. इस तरह गांव में सिर्फ 'अंगूठा छाप' अनपढ़ लोग ही बचे रह जाते हैं जो अकसर आर्थिक दबावों के कारण संपन्न वर्ग के कहने पर चुनावों में अपनी इच्छा के विरुद्ध ठप्पा लगाते हैं. इस प्रकार प्रभुताशाली वर्ग इस निम्न वर्ग की ओर से सभी निर्णय लेता है और एक दूसरी तरह की सत्ता जन्म लेने लगती है.

मिथिलेश्वर ने कहा कि अकसर गांव का आदमी सामंती साजिश में गुम होता हुआ दिखायी देता है. आज के कथाकार का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह गांव के इस शोषित व्यक्ति को इस साजिश से बचने का रास्ता दिखाये.

कमलेश्वर ने कहा कि सारी रचनात्मक ईमानदारी के बावजूद आज का अधिकांश साहित्य एक अत्यंत सीमित जिंदगी की तस्वीर प्रस्तुत करता है और गांव की सही अनुभूतियों का तो उसमें सर्वथा अभाव है. कथाकार को अब पूरे देश की जिंदगी की धड़कनों को समझने की कोशिश करनी होगी, क्योंकि जिस सीमित जिंदगी को वह अपनी रचना में उतार रहा है, उससे ग्रामीण जन सामान्य का सीधा संपर्क नहीं है.

दया पवार ने कहा कि गांवों में नयी चेतना फैलाने के लिए यह जरूरी है कि प्रचार-प्रसार के उन साधनों पर प्रतिबंध लगाया जाये जो मनोरंजन की आड़ में रूढ़िवाद और अंधविश्वास फैलाते हैं. कुछ फिल्में

का हवाला देते हुए उन्होंने बताया कि गांवों तक पहुंचने वाले अधिकांश चित्र एक गलत और यथास्थितिवादी समझ मोले दर्शक को देते हैं. इस तरह के गलत प्रचार पर रोक लगाने की जरूरत है.

ए. जे. उत्तम ने कहा कि इस तरह का सांस्कृतिक शोषण सिर्फ गांवों में ही हो रहा हो, ऐसा नहीं है. संतों और बाबाओं का प्रभाव-क्षेत्र शहरों में भी फैला हुआ है और इनमें से अधिकांश को शहरों के धनी व्यक्तियों का प्रश्रय उपलब्ध है. गलत चेतना देने वाली धर्म-प्रधान फिल्में आज भी हिट होती हैं और इनके जरिये निर्माता करोड़ों रुपये पैदा कर लेते हैं. धार्मिक सहिष्णुता का यह मतलब नहीं है कि इन सबको खुले-आम छोड़ दिया जाये. यहां यह भी देखने में आता है कि समाचारपत्र और प्रेस के उपकरण अपनी स्वतंत्रता की बात तो पूरी बुलंदी से करते हैं, परंतु इस तरह की गलत प्रवृत्तियों के विरुद्ध अपनी आवाज उठाने से साफ कतरा जाते हैं.

कमलेश्वर ने कहा कि यहां सबसे अहम सवाल यह नहीं है कि फिल्म का प्रोड्यूसर कितने रुपये खर्च करके कितने बनाता है, सवाल यह है कि जो चीज वह दर्शकों के लिए प्रस्तुत करता है, उससे साठ करोड़ लोगों की मानसिकता भ्रष्ट होती है.

दलितों के संदर्भ में स्थिति का विश्लेषण करते हुए बाबूराव बागूल ने कहा कि गांव में दलित वर्ग को आर्थिक, सांस्कृतिक शोषण के अतिरिक्त लगातार अपमान और जलालत का भी सामना करना पड़ता है. परंतु शहरों में स्थिति कुछ अच्छी है. दलित वर्ग का आदमी शहर में आ कर कुछ हद तक राहत महसूस करता है, क्योंकि वहां उसे जाति और वर्ग को ले कर उसी सीमा तक प्रताड़ित नहीं किया जाता.

प्रह्लाद चेंदवणकर ने कहा



राजगीर : एक गोष्ठी के दौरान विचार-विमर्श में संलग्न लेखक

कि गांवों और शहरों में जो जातीयतावादी संगठन निम्न वर्ग के लोग बनाते हैं, उन्हें समझने का प्रयास करना चाहिए. ये सभी संगठन निम्न वर्ग की असुरक्षा की भावना को प्रतिबिंबित करते हैं.

प्र. श्री. नेरूरकर ने बात को विस्तार देते हुए कहा कि जातीय संगठन साधन मात्र होते हैं, साध्य नहीं. जब उन्हें साध्य बना दिया जाता है तो उनकी रही-सही सार्थकता भी समाप्त हो जाती है.

अर्जुन डांगले ने महाराष्ट्र के गांवों पर चर्चा करते हुए बताया कि वहां 'शूगर सिंडिकेट' की नयी ताकत भी मराठा यानी उच्चवर्गीय जाति के हाथ में आ गयी है. इस प्रकार आर्थिक संगठन भी अकसर जातीय संगठनों में बदल कर निम्न वर्ग के शोषण का हथियार बन जाते हैं.

बिहार के गांवों पर चर्चा करते हुए शंकर ने कहा कि शोषण की दारुण स्थितियों और सांस्कृतिक चेतना के अभाव के कारण वहां कहीं-कहीं उग्रवादी प्रवृत्तियां भी विकसित हो रही हैं. हर तरह से पिछड़े हुए इन तबकों की मानसिकता को समझने की जरूरत है.

ओंकार ठाकुर ने कहा कि इसी के साथ आदिवासी जातियों का प्रश्न भी जुड़ा हुआ है. अधूरी चेतना के कारण ये लोग गलत रास्ते अपनाने लगते हैं.

कमलेश्वर ने कहा कि गांव के लोगों को जब बाहर से अधूरी सुविधाएं मिलती हैं तो वे उन्हें अपनी पुरानी स्थितियों से भी अधिक कष्ट देती हैं. इसी तरह उनकी परंपरावादी दृष्टि जब बाहरी दबावों के कारण कुछ हद तक परिवर्तित होती है तो इस अधूरी प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप गलत प्रवृत्तियां पैदा होती हैं.

बाबूराव बागूल ने कहा कि पूंजीवादी शोषण ने गांव के निम्न वर्ग को संघर्ष के लिए प्रेरित अवश्य किया है, परंतु इस संघर्ष को सार्थक दिशा नहीं मिल पायी है. दिशा-भ्रम के कारण इस वर्ग के कुछ लोग अकसर भटक



जाते हैं.

राम सुरेश ने कहा कि कभी-कभी शहर का आदमी भी गांव के बारे में भ्रांतियां फैलाता है और उसका शोषण भी करता है.

अवधेश अमन ने कहा कि आज ग्रामीण सामान्य जन के सामने वर्ग-संघर्ष, वर्ण-संघर्ष और व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष, ये ही तीन स्थितियां हैं. ये तीनों परस्पर जुड़ी हुई हैं.

नर्मदेश्वर ने यहां बताया कि गांवों की दारुण स्थितियों को देखते हुए यदि कतिपय वर्ग दिशा के अभाव में उग्र पंथ की ओर बढ़ जाता है, तो कोई आश्चर्य नहीं.

शंकर ने इन स्थितियों के कुछ उदाहरण देते हुए कहा कि बंधक मजदूरी की प्रथा आदमी के संपूर्ण आर्थिक, सांस्कृतिक शोषण का ज्वलंत उदाहरण है. इसके अंतर्गत न सिर्फ गांव की वर्तमान पीढ़ी, बल्कि आने वाली पीढ़ियां भी मालिक के साथ अनाम अनुबंध में कैद हो जाती हैं. इतनी कठिन जिंदगी जीने वालों के लिए सही रास्ता ढूंढ़ सकना लगभग असंभव है.

रामसरूप अणखी ने यहां पंजाब के गांवों की स्थिति से अवगत कराया. उनका कहना था कि पंजाब में स्थितियां कुछ भिन्न हैं. वहां जन साधारण में जागरण अथवा वर्ग-चेतना का सर्वथा अभाव है और लोग बगैर सोचे-समझे आपस में लड़ रहे हैं. पंजाब में भी दलित वर्ग है, परंतु उस वर्ग के लोग आपस में ही एक-दूसरे को काटने में व्यस्त रहते हैं. राजनीतिक चेतना के स्तर पर भी वहां लोगों में असंबद्धता दिखायी देती है. लोग वोट उसी पार्टी को देते हैं, जिसकी सरकार बनने के आसार दिखायी देते हैं. ऐसी स्थिति में लेखक के सामने सबसे बड़ा सवाल यही खड़ा होता है कि क्या यथास्थिति का वर्णन करके ही उसका दायित्व समाप्त हो जाता है? क्या दिशा का बोध कराने का काम लेखक को किसी दूसरे व्यक्ति के लिए छोड़ देना होगा?

तमिलनाडु के गांवों का ब्योरा शौरिराजन ने प्रस्तुत किया. उन्होंने बताया कि तमिलनाडु में वर्ण-व्यवस्था दो हजार वर्ष पहले ही टूटने लगी थी. वहां अब सिर्फ दो ही वर्ण दिखायी देते हैं—ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर. ब्राह्मणों में भी ब्राह्मण धनाढ्यों की तर्ज पर नये ब्राह्मण खड़े हो गये हैं जो अपने स्वार्थों के तहत निम्न ब्राह्मणों और दूसरे व्यक्तियों का शोषण करते हैं. पहले वहां लोग जातिवाद को अपने हित में इस्तेमाल करते थे, अब कुछ हद तक जाति-विरोध की भावना वहां जागृत हो रही है. परंतु ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर वहां शोषण और शोषित की विभाजन रेखा द्वारा बांटे नहीं जा सकते, क्योंकि दोनों ही वर्गों में शोषक और शोषित उपस्थित हैं.

ग्रामीण अंचलों पर इतनी सार्थक बातचीत को अधिक विस्तृत रूप देने की दृष्टि से इस गोष्ठी में यह तय किया गया कि विभिन्न अंचलों की स्थितियों को ले कर कुछ रिपोर्टें तैयार की जायें, जिन्हें व्यापक पाठक वर्ग की जानकारी के लिए प्रकाशित भी किया जाये. इस तरह की दस रिपोर्टों को तैयार करने का कार्यक्रम इस गोष्ठी में बनाया गया.

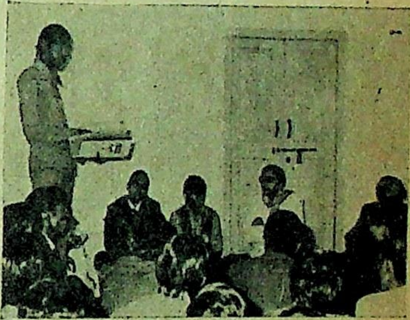
गोष्ठी का समापन करते हुए कमलेश्वर ने कहा कि ग्रामीण स्थितियों का पूरा खुलासा आज के रचनाकार को चेतना देने के लिए अनिवार्य है. यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि लेखक आज भी इन स्थितियों के प्रति अनजान बना हुआ है. हम समांतर के लेखक संकल्प करते हैं कि इन तमाम स्थितियों और इन संदर्भों को पूरी अंतरंगता से समझेंगे, क्योंकि अंततः हमें इन स्थितियों में से ही ग्रामीण संदर्भों की रचनाएं ढूंढ़नी होंगी और ग्रामांचलों में रहने वाले नये लेखकों को खोजना और सामने लाना होगा.

(क्रमशः)

गोष्ठी-रपट

चूरू में युवा लेखक सम्मेलन

युवा रचनाकार समुदाय राजस्थान के तत्वावधान में चूरू में संपन्न राजस्थान राज्य युवा लेखक सम्मेलन राजस्थान में अपने प्रकार का प्रथम आयोजन था, जिसमें २० से ५० वर्ष की आयु के स्वतंत्र और साहित्यिक गुटबंदी से परे लगभग ५० रचनाकार एक मंच पर एकत्र हुए. सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए **'नवभारत टाइम्स'** दिल्ली के समाचार-संपादक हरिदत्त शर्मा ने युवा लेखक-लेखिकाओं का आह्वान किया कि उन्हें देश-काल के अनुरूप सोद्देश्य एवं स्वस्थ उपयोगी साहित्य का सृजन करना चाहिए.



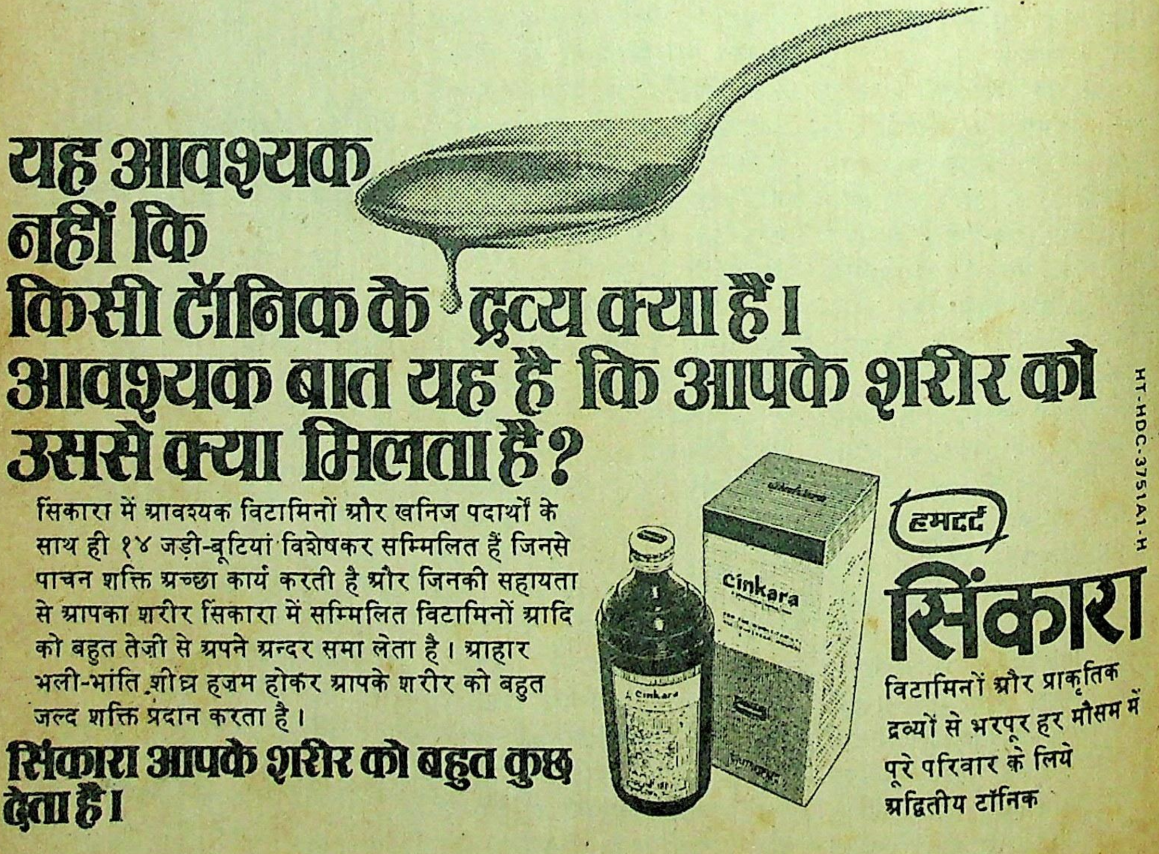
इस दो-दिवसीय सम्मेलन में चार विचार-गोष्ठियां हुईं, जिनमें प्रमुख विषय थे : युवा रचनाकार वैचारिक क्रांति के लिए कैसा साहित्य दें, प्रकाशन क्षेत्र में युवा रचनाकार की समस्या तथा समाधान, २० सूत्री आर्थिक कार्यक्रम और युवा रचनाकार का दायित्व, ग्रामीण समाज और युवा रचनाकार, आदि.

सम्मेलन की अध्यक्षता जामिया मिलिया के प्रोफेसर श्यामस्वरूप शर्मा ने की. संयोजक थे युवा पत्रकार बालमुकुंद ओझा. युवा रचनाकार समुदाय के अध्यक्ष चूरू के युवा साहित्यकार दुर्गादत्त दुर्गेश चुने गये.

□ **बालमुकुंद ओझा**



ऐटेक्स
सौंदर्य प्रसाधन
EYETEX BINDI
EYETEX BINDI DELUXE MATT FINISH
EYETEX BINDI DELUXE
EYETEX REGD.
EYETEX KUMKUM PASTE
EYETEX DELUXE KUMKUM
EYETEX DELUXE BINDI PENCIL
ARAVIND LABORATORIES MADRAS-600 033



यह आवश्यक नहीं कि किसी टॉनिक के द्रव्य क्या हैं। आवश्यक बात यह है कि आपके शरीर को उससे क्या मिलता है?
सिंकारा में आवश्यक विटामिनों और खनिज पदार्थों के साथ ही १४ जड़ी-बूटियां विशेषकर सम्मिलित हैं जिनसे पाचन शक्ति अच्छा कार्य करती है और जिनकी सहायता से आपका शरीर सिंकारा में सम्मिलित विटामिनों आदि को बहुत तेज़ी से अपने अन्दर समा लेता है। आहार भली-भांति शीघ्र हज़म होकर आपके शरीर को बहुत जल्द शक्ति प्रदान करता है।
सिंकारा आपके शरीर को बहुत कुछ देता है।
cinkara
हमदर्द
सिंकारा
विटामिनों और प्राकृतिक द्रव्यों से भरपूर हर मौसम में पूरे परिवार के लिये अद्वितीय टॉनिक
HT-HDC-3751A1-H



अब नयी 'पहले से भी बढ़िया' डेट टिकिया बाज़ार में मिलने वाली सबसे उत्तम डिटर्जेण्ट टिकिया है.
इसकी ज़्यादा सफ़ाई की शक्ति, भरपूर झाग और महक कुछ ऐसी ख़ूबियाँ हैं जो किसी अन्य धुलाई की टिकिया में नहीं पायी जातीं.
आज ही इस्तेमाल कीजिए और ख़ुद देखिए!
सुप्रीम डेट टिकिया से 'चमचमाती' सफ़ेदी!

शानदार सफ़ेदी,
डेट की सफ़ेदी

Shilpi-DM 7/76 Hin


जोड़ों में दर्द ?
आयोडेक्स
मलिए, जो
पीड़ा हरे, अच्छा करे
दूसरे बाम पीड़ा से आराम भले पहुंचाएं, आयोडेक्स आराम पहुंचाने के साथ साथ अच्छा भी करती है. क्योंकि इसमें आयोडीन मिली है.
जोड़ों और मांसपेशियों की पीड़ा के लिए एकमात्र बाम—आयोडेक्स.
IODEX
IODEX
cum Methyl Salicylate
3273
आयोडेक्स मलिए-अपने काम पर चलिए
लिंटास-IODEX-4-1 40 HI
davp 76/82

सर्दी-ज़ुकाम और फ़्लू का हमला और उसका मुकाबला

आपके लिए कुछ ज़रूरी बातें

"मैंने एनासिन को बहुत गुणकारी पाया है," नर्स एंजेला फ़र्नान्डेस का बयान है।



इन्होंने यही देखा है कि एनासिन सर्दी-ज़ुकाम और फ़्लू की पीड़ा से जल्द आराम दिलाने के लिए काफ़ी तेज़ असर है।

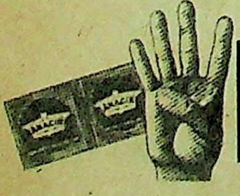
सर्दी-ज़ुकाम और फ़्लू कैसे होते हैं?
ये छूत से फैलने वाले उस विष से होते हैं, जो इन रोगों में ग्रस्त लोगों से हवा में फैलता है। आम तौर से शरीर में उसके मुकाबले की शक्ति होती है। परन्तु ज़्यादा मेहनत या कम ख़ूराक के कारण शरीर में कमज़ोरी आ जाती है और रोग के मुकाबले की शक्ति कम हो जाती है।

रोग लक्षण क्या हैं?
बदन का दर्द, सर का भारीपन, छींकें आना और नाक बहना, जिसके साथ अक्सर कँपकँपी छूटती है, बेचैनी महसूस होती है और पसीना आता है। उसके बाद खाँसी, गले की ख़राबी, भूख की कमी और थकावट की शिकायत हो सकती है।

क्या इस से और तकलीफ़ें भी हो सकती हैं?
यदि लापरवाही बरती जाय तो निमोनिया और साँस की ऊपरी नाली में छूत का असर हो सकता है।

एनासिन कैसे सहायक होती है?
एनासिन सर्दी-ज़ुकाम और फ़्लू की पीड़ा से आराम दिलाती है। एनासिन तेज असर है—क्योंकि इस में वह दर्द-निवारक दवा ज़्यादा है जिसकी दुनिया-भर के डॉक्टर सब से ज़्यादा सिफ़ारिश करते हैं। एनासिन पर लाखों लोगों को विश्वास है—क्योंकि यह आपके डॉक्टर की दवा की तरह दवाओं का नपा-तुला सम्मिश्रण है। सर्दी-ज़ुकाम या फ़्लू के पहले लक्षण देखते ही दिन में चार बार एनासिन लीजिए।

आपको और क्या करना चाहिए?
- उबाला हुआ पानी, सन्तरे या मौसंबी का रस और पीने के दूसरे पदार्थ काफ़ी पीजिए।
- पौष्टिक आहार खाइए।
- पूरा आराम कीजिए।
- पानी में ऐंटिसेप्टिक दवा या नमक डालकर ग़रारे कीजिए।
- कमरों को हवादार रखिए।



तेज़ असर और विश्वसनीय
एनासिन

भारत की सब से लोकप्रिय दर्द-निवारक दवा

A 14-6/76 Regd. User of TM: Geoffrey Manners & Co. Ltd.

बिनाका टॉप टूथपेस्ट मुँह की पूरी रक्षा के लिये



ताज़गी महसूस कीजिये सुबूत अपनी आँखों से देखिये

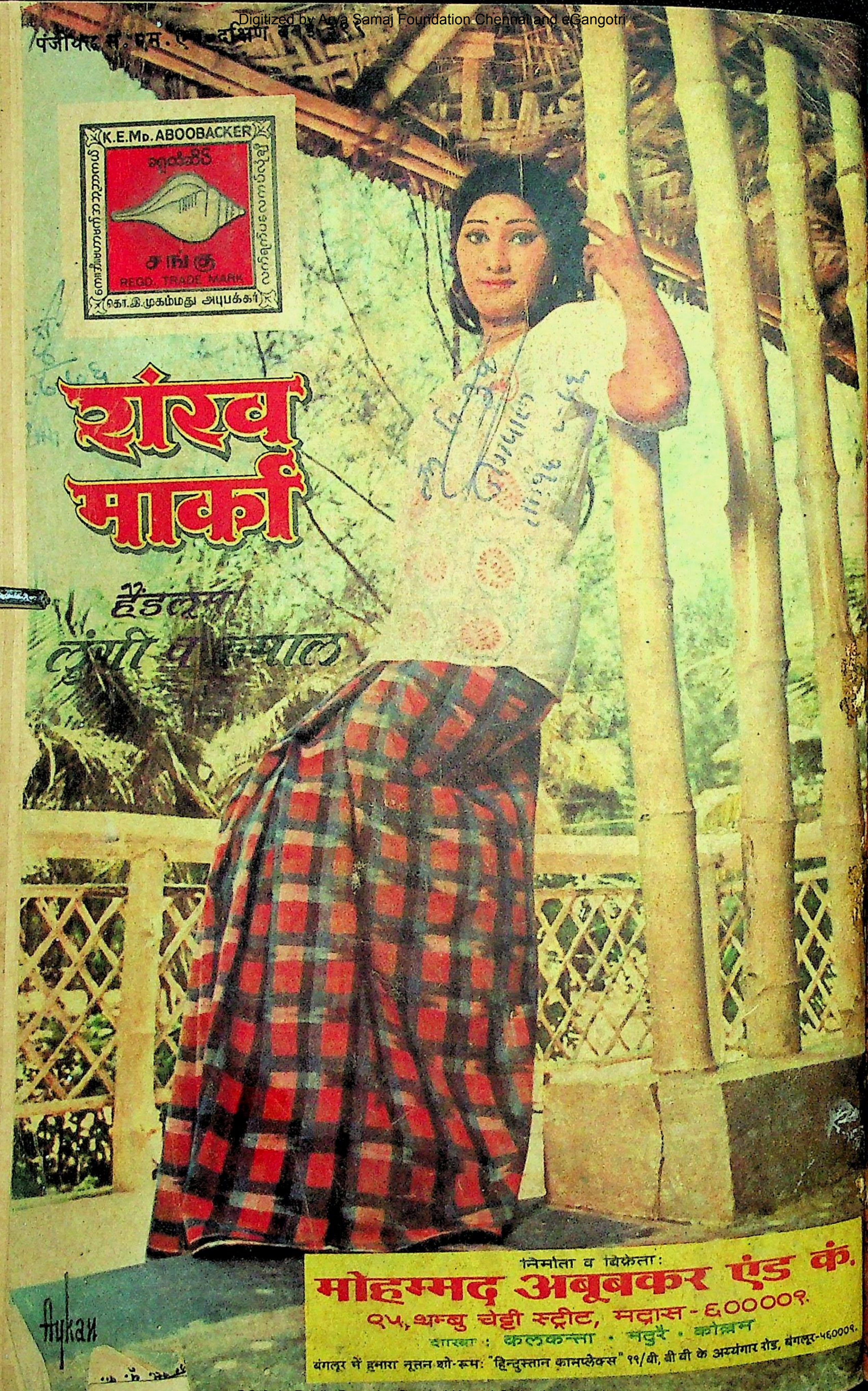
बिनाका टॉप का विशेष फैलने वाला तत्त्व आपके मुँह की पूरी रक्षा करते हुए उसे ताज़गी से भर देता है।
क्योंकि यह तत्त्व तुरंत आपके मुँह के हर कोने में फैल कर दांतों में सड़न पैदा करने वाले कीटाणुओं का नाश करता है और साँस की दुर्गंध को रोकता है; यूं कहिये आपको ताज़गी भरे आत्म विश्वास से प्रफुल्लित रखता है।

<u>यह टेस्ट स्वयं कर के देखिये</u>, पानी में थोड़ा सा लकड़ी के कोयले का चूरा डालिये और इसमें थोड़ी सी बिनाका टॉप टूथपेस्ट घोलिये। अब देखिये बिनाका टॉप कितनी तेज़ी से चारों तरफ़ फैलता है... मैल को दूर करता है और पानी की सतह को बिल्कुल साफ़ कर देता है। आपके मुँह में भी बिनाका टॉप बिल्कुल इसी तरह काम करता है।

सीबा गायगी



बेनेट कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए श्रीकृष्ण गोविंद जोशी द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई में मुद्रित व प्रकाशित. पो. बाक्स २१३, बंबई–४०० ००१; दिल्ली आफिस : ७ बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली–११० ००२; कलकत्ता आफिस : १३/१ और १३/२ गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट. लंदन आफिस : ३०–ए, डिस्ट्रिक्ट रोड, सडबरी, वेम्बले, मिडि[illegible]


K.E.Md. ABOOBACKER
REGD. TRADE MARK
கொ.இ.முகம்மது அபுபக்கர்
शंख मार्का
निर्माता व विक्रेता:
मोहम्मद अबूबकर एंड कं.
२५, थम्बु चेट्टी स्ट्रीट, मद्रास - ६००००१.
शाखा : कलकत्ता · मदुरै · कोल्लम
बंगलूर में हमारा नूतन शो-रूम: "हिन्दुस्तान कामप्लैक्स" ११/बी, बी वी के अय्यंगार रोड, बंगलूर-५६०००९.
Aykan